

रजवाड़ा

हमारा उपयोगी साहित्य

| | | |
|-------------------------------|--------------------------|-------------------------------|
| प्रेमचन्द | (जीवन और कृतित्व) | हमराज 'रहवर' ६॥) |
| सुमित्रानन्दन पन्त | (काव्यकला और जीवन-दर्शन) | गच्चीरानी गुट्टे ६) |
| महादेवी वर्मा | " " | शर्चीरानी गुट्टे ६) |
| महाकवि सूरदास | | नन्ददुलारे वाजपेयी ४) |
| आलोचक रामचन्द्र शक्ल | | गुलाबराय तथा स्नातक ६) |
| हिन्दी कविता में युगान्तर | | डा. सुधीन्द्र ८) |
| साहित्य, शिक्षा और संस्कृति | | डा. राजेन्द्रप्रसाद ५) |
| रोमाण्टिक साहित्य-शास्त्र | | देवराज उपाध्याय ३॥॥) |
| काव्य के रूप | | गुलाबराय ४॥॥) |
| सिद्धान्त और अध्ययन | | गुलाबराय ६) |
| हिन्दी-काव्य-विमर्श | | गुलाबराय ३॥॥) |
| हिन्दी के नाटककार | | जयनाथ 'नलिन' ५) |
| कहानी और कहानीकार | | मोहनलाल 'जिज्ञासु' ३) |
| हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति | | स्नातक तथा सुमन ३) |
| समीक्षण | | कन्हैयालाल सहल ३) |
| साहित्य-विवेचन | | सुमन तथा मल्लिक ७) |
| प्रबन्ध-सागर | | यज्ञदत्त शर्मा ५॥) |
| आदर्श पत्र-लेखन | | यज्ञदत्त शर्मा ७॥) |
| जीवन-स्मृतियाँ | | क्षेमचन्द्र 'सुमन' ३) |
| कला और सौन्दर्य | | रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' ३॥॥) |
| मैंने कहा | | गोपालप्रसाद व्यास ३) |
| प्रगतिवाद की रूपरेखा | | मन्मथनाथ गुप्त ७) |

किस्त १, २॥); किस्त २, ३॥)
शुक्ल ३)

रजवाड़ा

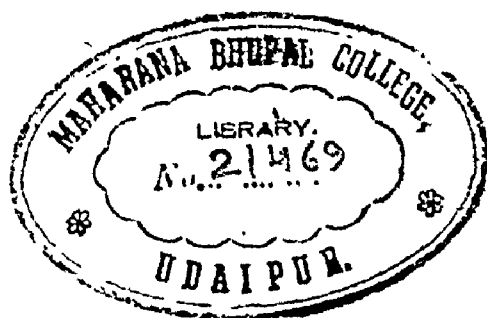
(मचित्र)

लेखक

देवेश दास

आई. सी. एस.

सकटरा, यूनयन पब्लिक सर्विस कमीशन
नई दिल्ली



प्रकाशक

गमलाल पुरी

आत्माराम एंड सन

काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

मूल्य पाँच रुपये

भूमिका

जब मैं बिलकुल छोटा था उसी समय से राजस्थान से मेरा परिचय बंगला की प्रसिद्ध शतवर्षीय प्राचीन पंक्तियों के साथ हुआ—

“स्वाधीनता हीनताय के वांचिते चाय हे ।

के वांचिते चाय ?”

जब भी मैंने राजस्थान की गाथाओं का अध्ययन किया, मेरे मन में प्रज्वलित मन की भाँति उपर्युक्त प्रश्न उपस्थित हुआ । किशोरावस्था और यौवनावस्था में राजस्थानी गाथाओं का स्वप्न देखा है । स्वतन्त्रता-आन्दोलन की यज्ञवेदी के क्ष मैंने यह महसूस किया कि रजवाड़े का बंगाल तथा भारत से जो सम्बन्ध है वह ल प्रेम-प्रतीक ही नहीं अपितु प्रेरणा का प्रतीक है ।

अतः मैंने जो राजस्थान-भ्रमण किया वह मुझे एक तीर्थयात्रा सिद्ध हुआ ।

एक युग-संधि के समय में मैंने उस राजस्थान को प्रथम देखा । जिस समय ओर ब्रिटिश-सत्ता का सूर्य अस्त हो रहा था और दूसरी ओर भारत की लोकतान्त्रिक कार ने भारत की सारी रियासतों का एकीकरण किया था, उस समय रजवाड़े का पूर्ण विलय हुआ । इस युगान्तरकारी रूपान्तर को देखते-देखते मैंने राजस्थान की 17 घटनाओं का निरीक्षण किया । चिरकाल के रजवाड़े के लिए मेरी जो श्रद्धा और ति जड़ित है उसके प्रति यह मेरा प्रणाम है ।

६ पूर्णिमा, सं० २०१०

नई दिल्ली

—देवेश दास

विषय-सूची

| | पृष्ठ |
|--|-------|
| १. अभिसार की झलक | १ |
| २. हवाई यात्रा | १३ |
| ३. जयपुर की नूरजहाँ | २६ |
| ४. कृष्णाकुमारी की कहानी | ३६ |
| ५. राजअतिथि | ४५ |
| ६. शिकारी और स्वप्नदर्शी | ५५ |
| ७. विवाह और प्रथम प्रणय | ६२ |
| ८. सवाई राजा जयसिंह की कहानी | ७१ |
| ९. राजपूत का युद्ध-वर्णन | ७६ |
| १०. रसिक जीवन | ८६ |
| ११. दरवारी नृत्य | ९३ |
| १२. नयी पीढ़ी का विकास | ९६ |
| १३. कथक नृत्य की कहानी | १०४ |
| १४. रूपसी रानी पद्मिनी | ११३ |
| १५. रक्षाबन्धन | १२१ |
| १६. प्रेम योगिनी मीरा | १३० |
| १७. महाराणा प्रताप और चारण | १३८ |

रजवाड़ा

१

अभिसार की भलक

एक सुन्दर सुडौल चरण एक बड़ी हडसन गाड़ी से बाहर आया ।

नई दिल्ली के इण्डिया गेट के पास के मैदान में मुलायम घास की शैया पर मैं अंधेरे में अकेला आराम से लेटा हुआ था । इस जलवायु में इन घासों को उगाने और हरी-भरी रखने में जितना खर्च होता है उसे देखते हुए उस घास की शैया का मूल्य मेरे घर की शैया से किसी प्रकार कम न होगा बल्कि उससे कुछ अधिक ही होगा ।

प्रतिदिन काम-काज से छुट्टी मिलने के बाद संध्या समय यहाँ इस एकान्त कोने में कुछ देर बैठे या लेटे रहना मुझे बहुत पसन्द है । दिन भर सरकारी दफ्तर (सचिवालय) से छुट्टी नहीं मिलती । सुना है कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद पण्डितों ने इन दो विशाल पाषाण-दुर्गों का नाम महाधिकरण रखा है । रखे, कुछ हर्ज नहीं; परन्तु इस सुधार के बावजूद काम में किसी तरह की उसास मिलती नहीं दिखाई पड़ती । ये दोनों पाषाण-दुर्ग अंग्रेजी में नार्थ ब्लाक और साउथ ब्लाक नाम रखे पहले की ही तरह छाती पर पर्वत जैसे रखे हुए हैं ।

लड़ाई के समय काम की अधिकता और उसके बाद नेताओं तथा राजनीतिज्ञों के आवागमन और बातचीत ने सरकारी दफ्तर को कुछ भटका-सा दिया था । इसके बाद ही स्वतन्त्रता के साथ-साथ शरणार्थियों की विकट समस्या सामने आई । सभी सरकारी दफ्तरों को उसने बुरी तरह भकभोर दिया । काम का बोझ इतना बढ़ गया जिसका लोग अनुमान नहीं कर सकते ।

काम इतना बढ़ा कि किसी को बैठकर काम करने का अवकाश ही नहीं मिलता था । एक दिन पूर्वी बंगाल के एक शरणार्थी महाशय को एक व्यक्ति ने यही बात इस प्रकार समझायी—साहब ! खैरियत है कि पैरों के बल खड़े-खड़े काम करना पड़ता है, सिर के बल खड़े होकर नहीं । सिर के बल खड़े होने पर जिस तरह सारा खून सिर में इकट्ठा हो जाता है, पैरों के बल खड़े होने पर ऐसा नहीं होता ।

पर नये आये महाशय अपनी परेशानी से व्याकुल थे। तड़ाक से बोल उठे—
डरने की कोई बात नहीं साहब ! आपके पैर आखिर झधर में तो नहीं हैं।

इतना कहकर उन्होंने उनके सिर की ओर कुछ भेदभरी दृष्टि से तिरछे
निहारा।

दफ़तर में किसी से भेंट होने पर आँखों में उलझन और चेहरे पर बेचनी का
भाव व्यक्त करते हुए कह दीजिये—ठहरिये साहब ! इस समय तो मुझे मरने की भी
फ़र्सत नहीं।

जब उन्हें कुशासन पर लेटने को फ़ुर्सत नहीं तो यही क्यों ठहरें, इसका उचित
उत्तर नहीं दिया जा सकता।

यह सज्जन तब इसका प्रमाण देने के लिए कि इन पर उनके समान ही या
उनसे भी अधिक काम का बोझ है, पिछले महासमर की दिन बिना आस्तीनों की
बुश शर्ट अर्थात् केप कमीज या शर्ट और कोट की मिली-जुली पोशाक के कालर को
दो अँगुल मरोड़ते हुए कह उठेंगे—अरे, कुछ न कहिये साहब ! जन्तु (जॉयण्ट) सैफ़्टरी
कुछ ऐसे विगडेमिजाज हैं कि रोज़ सुबह-शाम फाँसी पर चढ़ाते-चढ़ाते रह जाते हैं।

परन्तु इतना समय कहाँ कि इनसे पूछा जाय कि सवेरे अगर यह काम पूरा
कर डाला जाय, तो शाम को फिर से करने की नौबत ही कहाँ से आयेगी ?

वातावरण तो ऐसा है, फिर भी तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़ते हुए लोग कुछ हँसी-
मजाक का मौका निकाल ही लेते हैं। यह हँसी-मजाक नहीं, संजीवनी रस है।

—भाई, मैंने एक बड़ा अच्छा आविष्कार किया है।

—कैसा है वह आविष्कार ? जल्दी पेटेन्ट करा लो। अभी बाज़ार गर्म है।
राहचलते कुछ पैसे बन जायेंगे। बुरा क्या है ?

—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। अविवाहित और विवाहित का फ़र्क तो
जानते हैं न ?

श्रोता ने कान खड़े कर लिये, और कहा—जरा बताइये तो सही, क्या बात
है, पहली न बुझाइये।

वे हँसे, बोले—बात बहुत ही मामूली है, अविवाहित के कोट में बटन नहीं
होते, और विवाहित के कोट ही नहीं होता।

अपने घर के बाल-गोपालों की पलटन को याद करते हुए उन्होंने कहा—अब मैं
समझ गया कि मेरी कमीजें क्यों घटती जा रही हैं; लेकिन भैया ! कोई बात नहीं,
जुग जुग जियो हमारी बुश शर्ट।

दूसरे साहब ने समर्थन में सिर हिलाते हुए कहा—यही तो कहना चाहता हूँ।
शर्ट भी नहीं है, कोट भी नहीं है, फिर भी फाइलो के जंगल में घुसने के लिए तन

पर कुछ तो चाहिए। इसीलिए इसका नाम पड़ा बुश शर्ट। जिसने इसका आविष्कार और नामकरण संस्कार किया है, इसमें सन्देह नहीं कि वह कोई पहुँचा हुआ महा-पुरुष था। उसमें दया-ममता तो थी ही, साथ ही मञ्चाकिया तवियत का भी था।

ऐसा सभी दिखाते हैं कि इस घने जंगल में अभी-अभी स्वतन्त्र हुए इस देश के लिए सब प्राण दे रहे हैं, अर्थात् प्राण देने को तैयार है, अर्थात् जब प्राण-देने का कोई अवसर नहीं, तो उसके बदले काम कर रहे हैं। काम जितना नहीं है, उसका सौ गुना अधिक काम का अभिनय है, सिद्धान्त से हजार गुनी अधिक पैतरेबाजी है। परिणाम यह है कि सब की जान साँसत में है। देश के लिए यदि प्राण देना ही पड़े, तो निकम्मे जीवन को यह एक नया रास्ता मिल गया है। इस दृष्टि से मैं भी देश के लिए बिना हिचक प्राण दे रहा हूँ। एक दिन नहीं, प्रतिदिन, यहाँ तक कि छुट्टी के दिनों में भी। बात यह है कि उस दिन भी कुछ लोग आफ्रिस में हाज़िरी देने आ धमकते हैं।

क्यों ? हमारे प्रतिदिन के साधारण जीवन में तलवार नहीं चलती, तो क्या इसी से हम देशभक्त नहीं ? दिन भर में हम कलम कितनी चला लेते हैं, इसका आपके पास कोई लेखा-जोखा है ?

अतएव परिस्थिति यह है कि सब लोग कमर कसकर कलम उठाये हुए देश के लिए काम किये जा रहे हैं। दुःख की बात है कि कुछ लोगो ने विदेशी पेट छोड़ कर चूड़ीदार पायजामा अपनाया है, जिससे वे कमर कसने अर्थात् कमर में वेल्ट बाँधने के सुयोग से वंचित हो गये हैं। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि 'टाइटन योर वेल्ट' (वेल्ट कसो याने पेट घटाओ) कितना महत्त्वपूर्ण कथन है।

हाँ, उसकी कमी पूरी करने के लिए उन्होंने नवीन भारत की पोशाक अचकन को अपनाया है, जिससे पेट भले ही बढ़ता हो, गला बँधता है।

आफ्रिस में तो इस तरह काम की भीड़भाड़ और आफ्रिस से निकलते ही पंजाब और सिन्ध से आये उजड़े शरणार्थियों की भीड़। दिल्ली में तिल धरने को जगह नहीं; नई दिल्ली को बड़े यत्न से भीड़भाड़ से बचाकर सजी-बजी रखा जाता था, उसका वह बड़प्पन अब न रह गया। काम से भले ही शाम तक उसास मिल जाय, परन्तु शहर में सारे दिन और सारी रात कभी भी उसास या शान्ति नहीं।

इसलिए शाम होने पर अँधेरे में लुक-छिपकर यहाँ आता हूँ और दम लेने के लिए घास की इस एकान्त सेज पर बैठ जाता हूँ। कुर्ता उँतारकर बगल में रखते हुए ब्रिटेन के पहले प्रधान मंत्री वाल्पोल की तरह मन ही मन कहता हूँ—यह है सरकारी मुलाजिम साहब।

पर कहावत है कि कोली के लड़के को सरग में भी बेगार। सचिवालय के

भीमकाय यंत्र ने मेरी तरह की एक मामूली कील या पुर्जे तक को इस तरह पकड़ रखा है कि इस अंधेरे सन्नाटे में पड़े रहने पर भी सचिवालय के साउथ ब्लॉक की छाया आँखों के सामने से नहीं हटती।

इस प्राण देने के लिए तैयार पंत्रिक देह रूपी पिंजड़े से एकदम जैसे सटकर मैदान में एक बड़ी हडसन गाड़ी आकर रुकी। उसकी एक भी वत्ती नहीं जल रही थी। दूर पर रोशनी के दो बिन्दु अचानक बुझ गये थे, मानो अंधेरे आकाश में दा अज्ञात तारे एकाएक विलीन हो गये हो। उसके बाद क्या हुआ, कौन जाने ?

इसी बीच अनजान में यह कार चुपचाप आकर मेरी वगल में रुक गई। यह कहिये कि किसी तरह दबते-दबते बचा। और जब बच ही गये, तो अपने राम को किसी से भगड़ा करने से क्या मतलब ? और यह भी तो हो सकता था कि दूसरा पक्ष मेरी चुनौती को स्वीकार कर आगे आता और कहता कि जो लोग इस प्रकार छिपकर मैदान में लेटे रहते हैं, वे यदि हडसन के नीचे आ जायें तो इसमें दाष उनको दवाने वाले का है, या स्वयं उन दबने वालों का ?

परन्तु कुछ सोचने का समय नहीं मिला, क्योंकि गाड़ी से एक सुन्दर-सुडौल चरण निकल आया। बाकी देह लता भी बाहर आने को उत्सुक जान पड़ी। मैं भी कौतूहल से उन्मुख होकर प्रतीक्षा करने लगा कि देखूँ क्या होता है ?

चुपचाप किसी अज्ञात दिशा से साइकिल हाथ में लिये एक युवक आ गया। कार के पास साइकिल को लिटाकर दोनों घास की शैया में कार से पीठ लगाकर बैठे।

जिस तृण-शैया पर मैं पड़ा था, उसी तृण-शैया पर वे भी थे। मैं कार के इस पार था और वे उस पार। और चारों ओर छाई हुई थी नई दिल्ली की निर्जन सन्ध्या।

पहले इच्छा हुई कि मैं युवक-युवती के इस एकान्त और निर्भय मिलन की राह से हट जाऊँ। पर तब तक यवनिका उठ चुकी थी, नायक और नायिका मंच के बीच में पहुँच चुके थे, प्रेक्षागृह में अभिनय आरम्भ हो चुका था। इस बीच यदि मैं यवनिका गिराकर चल दूँ और वे आहत पा जायें, तो शरमा जायेंगे, और उनकी दुर्लभ सन्ध्या के छन्द में यति-भंग आ जायगा। क्या पता, उसकी पूर्ति फिर कभी हो या न हो ? व्याध ने क्रीच के जोड़े में से एक का वध किया था, इसलिए जीवन में उसको प्रतिष्ठा नहीं मिली, उधर भावनाओं के आवेग ने दस्यु रत्नाकर को वाल्मीकि बना दिया।

इसलिए यह क्रीच का जोड़ा बिना व्याघात के, निःशंक होकर अपने स्वप्न-राज्य में विचरण करे। रहा छिपकर दूसरो की बातें सुनने का पाप, सो मनुष्य से न मालूम कितने पाप हर समय होते रहते हैं। आज इनकी सुविधा के लिए मुझसे थोड़ा पाप हो

भी जायगा, तो क्या ? इससे कोई महाभारत अशुद्ध नहीं हुआ जाता ।

हडसन कार और साइकिल ।

कार की साधारण नम्बर प्लेट की जगह सुर्ख लाल प्लेट शोभायमान हो रही थी । यह समझना मुश्किल न था कि यह किसी देशी रियासत के राजा की निजी गाड़ी थी । अँधेरे में नाम पढ़ा न जा सका, पर कौतूहल बना रहा ।

और साइकिल ? बहुत हुआ तो इसमें दिल्ली म्युनिसिपैलिटी का गोल टिकट लगा होगा । हो सकता है कि साइकिल वाले युवक ने वह खर्च बचाने के लिए लाइसेन्स ही न लिया हो । कौन जाने ?

दोनों ही जैसे खामोश-से थे ।

इसलिए मैं भी हिला-डुला नहीं ।

धीरे-धीरे युवक ने ही पहले बात छोड़ी । ऐसा लगा जैसे सारी रात के घने अँधेरे के बाद प्रथम ऊषा की हलकी-सी रोशनी महासागर की लहरों पर चमक गई ।

—तो तुम सचमुच दिल्ली छोड़ रही हो ?

एक क्षण चुप रहने के बाद युवती बोली—इसीलिए मैंने तुम्हें आज यहाँ बुलाया था ।

यह तो पूरा नाटक हो रहा था ।

और अब एकवारगी पाँचवें अंक का पर्दा उठा है ।

मैंने सोचा, अब चल देना चाहिए । इन अपरिचित युवक-युवतियों की एकान्त बातचीत को मुनने से क्या लाभ ? 'वाँय मीट्स गर्ल'—यह तो रोज की बात है । इसमें नयापन क्या होगा ?

पर बेचारे जान जायेंगे । यह उनके लिए बड़ी लज्जा की बात होगी । रात कुछ और बीत जाय, अँधेरा और घना हो, तो चुपचाप खिसक जाऊँगा । परन्तु उधर मामले पर भी घना अँधेरा-सा छा रहा था ।

—तुम अब मुझसे सम्पर्क रखने की चेष्टा न करना । जानते तो हो, कितनी बाधाएँ हैं ।

—क्यों ? क्या चिट्ठी भी नहीं लिख सकता ? अब तक तो जरूरत नहीं पड़ी, परन्तु अब से अगर चिट्ठी न लिखूँ, तो तुम्हारी खबर कैसे मिलेगी ? मान लो एक वनावटी नाम से 'पोस्ट रेस्टांट' में पत्रों का आदान-प्रदान हो । डाकखाने में चिट्ठियाँ पड़ी रहेंगी । मैं वहाँ से उन्हें ले जाया करूँगा ।

—नहीं, वह कोई दिल्ली शहर नहीं है । वहाँ अपना परिचय दिये बिना कौन चिट्ठी ला सकता है ? हम लोग कौसी परदानशील हैं, क्या नहीं जानते ?

—तो फिर जीऊँगा किसके सहारे ?

—नां, आई न फिर घड़ी बात । नुम मेंटीमेंटन हो रहे हो, और नुम जानते हो कि मुझे भावुकता दिनभर पगन्द नहीं ।

—जानता हूँ, पर मानता नहीं । यह भी तुम्हारा एक पोज है और कुछ नहीं ।

—पोज ? यह मूल रहे हो कि हम लोगो के जीवन में नगरे को जगह नहीं । चारो तरफ सभी लटकियों को देवती हूँ कि यम उम्र में उनकी शादी हो जानी है, और वे परदे के अन्दर चली जाती हैं । मानो उन दुनिया ने उनका निशान भिट गया हो । पति के आदेश के बिना वे भाई से भी नहीं मिल सकतीं । न शिक्षा ही मिनी और न मनुष्यत्व का दर्जा ही मिला । एक जीव की तरह पैदा हुई, उमने ऊपर उठने का समय इस जीवन में न मिला । यदि चेहरे पर हानीबुट के आधुनिक फैशन 'पेन्केक' का सिगार देखो, तो जानना कि यह पति देवता की आधुनिकता और उनकी बहादुरी का जय-पताका है । ठीक उसी प्रकार, जैसे गरीब पर लदे हीरे-जवाहरान उनके धन के परिचायक हैं । वह सिर्फ चेहरे का मेकअप है, उसमें मन की झलक नहीं । सोफिस्टिकेशन सभ्यता का बनावटी रूप है । उस मजेदार बनावट का स्वाद उसे कभी नहीं मिलता । यहाँ तक की रावाला (राज अन्तःपुर) के आँगुओं में भी कोई बनावट नहीं रहती ।

युवक ने आत्मविश्वास प्रदर्शित करते हुए कहा—मे तुम्हारी आँखों में दूसरी ही तरह के आँसू ला दूंगा ।

युवती के कण्ठ में दृढ़ व्यंग्य की भावना प्रकाशित हुई । बोली—मे तुम्हारी दृढ़ता पर चकित हूँ । आशा करती हूँ कि यह दृढ़ता तुम्हें अंत तक भावुकता से बचावेगी ।

—ओह ! तुम कितनी निष्ठुर हो सकती हो ! लाओ, तुम्हारे हाथों को जरा अपने हाथों पर रखूँ । उससे कुछ तसल्ली होगी, पद्मा, मेरी पद्मा !

वास्तविक रूप से हाथों का सम्पर्क स्थापित हुआ या नहीं, यह अंधेरे में जाना न जा सका । परन्तु कवि रविन्द्र यों ही नहीं कह गये कि उँगलियों के जरिये बातचीत सबसे श्रेष्ठ है । उसका अर्थ अब अच्छी तरह समझ में आया । मुनने में आया, वह तरुणी परिहास के स्वर में कह रही है—क्या अब तुम अपने को धन्य समझ रहे हो ?

—थोड़ा-थोड़ा समझने लग रहा हूँ ।

—अद्भुत क्रेविम रोपभरे स्वर में वह बोली—समझने लग रहे हो ? तुम्हारी यह गुस्ताखी... यह गुस्ताखी मुझे अच्छी लग रही है ।

युवक जयसूचक हँसी के साथ बोला—मुझे मालूम है ।

पर यह जय नहीं थी, पराजय थी । प्रमाण हाथोहाथ मिल गया ।

—तो मैं तुम्हें पत्र लिखूँगा, पर याद तो रखोगी न, पद्मा ?

—कहाँ, किस पते पर पत्र लिखोगे ? तुम मेरे सम्बन्ध में कितना जानते

हो ? नदी-नाव संयोग को कहाँ तक घसीटना चाहते हो ?

—सुनो, ये दो बातें अलग-अलग हैं। यों तो मैं तुम्हें सम्पूर्ण रूप से जानता हूँ, पर तुम्हारा पता नहीं जानता, लेकिन वह गौण है। तुमको जानना ही असली जानना है।

—हाऊ इम्पौसीवली रोमाण्टिक ! जय, तुमसे किसी बात की आशा नहीं।

—तुम्हें विश्वास नहीं पड़ा ! लेकिन, तुम्हें ढूँढ़ ही लूँगा कहीं न कहीं। मैं इस रहस्य के आधरण को फाड़ डालूँगा। देखूँगा, तुम राजस्थान, सेन्ट्रल इण्डिया या और कहाँ की राजकुमारी हो ? तुमने तो मुझे कुछ ठीक-ठीक जानने ही नहीं दिया। रहस्य पर रहस्य बढ़ाती गई। पर मैं सब खोज निकालूँगा। तुम्हारी कार के नम्बर प्लेट से ही मेरी खोज आरम्भ होगी।

—रहने भी दो जय ! शेखी न बघारो, और मुझे जलाओ मत। कालेज में मेरा नाम सुविधा के लिए पढ़ा लिखाया गया था। मेरा असली नाम और पता होस्टल में पिता जी ने ही नहीं लिखाया। कारण क्या हो सकता है, अनुमान कर लो। और यह कार हमारी रियासत की नहीं है, इसे मैं अपने स्थानीय अभिभावक से ले आई हूँ, जैसा कि मैं अक्सर सन्ध्या समय अकेले ड्राइव करने के लिए लाती हूँ। यह तुम्हें शायद बताने की जरूरत नहीं है कि वहाँ से तुम्हें मेरा पता नहीं मिलेगा। 'सारी जय, बैरी सारी !' लेकिन यह भी तो देखो कि 'आई कान्ट हेल्प'।

ऐसा लगा जैसे तरुणी कुछ भुक्त रही है। तो क्या पढ़ा का हृदय-पद्म विकसित होने जा रहा है ?

नहीं ऐसा होने का नहीं। पढ़ा ने उसे समझा दिया कि प्रेम-श्रेम पुराने जमाने की धारणाएँ हैं। उसने यह भी कहा कि जब उसकी परदादी की दादियाँ जोह-व्रत ग्रहण कर आग में जल जाती थी उस युग में भी उस आग से प्रेम की शिक्षा लहलहा कर जल उठती थी, उसे ऐसा विश्वास नहीं। शायद किसी मसय पर कही भूल से प्रेम पनप उठता हो, जिस तरह इस दिल्ली में वर्षा के समय कही भूल से घास उग आती है, पर दिल्ली का असली रूप उसके ऊसरपने में है। जिस लड़की की शादी दूल्हे के घर की दासियों के सर्टिफिकेटों और इन्स्पेक्शन-रिपोर्टों पर तय होती थी, और वंश-गौरव के साथ-साथ सोना-चाँदी का वजन देखा जाता था, वहाँ वाई जोव (By Jove) प्रेम करने-कराने का भ्रमेला कहाँ ? रजवाड़े के रावालोंने (अन्तःपुर) में स्त्रियों के लिए दो ही काम हैं—पति के कुल की रक्षा के लिए सन्तान-धारण और पति के सम्मान या स्वेच्छाचार के लिए आत्मत्याग, चाहे यह आत्महत्या के द्वारा किया जाय, या आत्मसम्मान को बालाए ताक रखकर।

भला ऐसे वातावरण में कहीं प्रेम का पौधा पनप सकता है ? परदे की कैद

में पुरुषों की दृष्टि में दूर जो स्त्री चाँदियों से घिरी रहती है, उसके गतिहीन, जुगाली करते पशु-सं जीवन में जहाँ भूलकर भी मन को मत करने वाली हवा या पराये कटाक्ष नहीं आ सकते, वहाँ भला प्रेम कंसा ? जायद इसीलिए रजवाड़ों की मरुभूमि में कटीली भाड़ियों के सिवा और कुछ उगता ही नहीं । राजपूत ललना के हृदय में भी ऊसर और बजर का ही राज्य है, इसके अलावा वहाँ कुछ हो ही नहीं सकता, होना भी नहीं चाहिए ।

अन्धकारमय आकाश जैसे कुछ गूट लाल-आभा-युक्त हो गया । मैं भी जल्द ही राजस्थान की सैर के लिए जाने वाला था । जीवन में पहली बार उस देश को देखने का मौका मिलेगा, जिसका कोना-कोना पुस्तकों के जरिये बहुत पहले ही मैं छान चका था । आज की यह अभिज्ञता उम यात्रा के लिए बड़ी सुन्दर भूमिका रही । सैकड़ों अज्ञात और अनिर्दिष्ट आविष्कारों की आशा मन में जाग पड़ी ।

—पर यह तो बताओ कि तुम मुझे प्यार करती हो या नहीं ?—उस जय नामक अज्ञात और साधारण कुल के युवक ने पूछा । जयकुमार या जयचन्द या रामजय, ऐसा ही कोई नाम माँ या दादी ने छठी की रात रेंड़ी के तेल के दीये के धुंधले प्रकाश में उसकी आँखों में काजल लगाते समय रखा होगा । तारों की टिमटिमाती रोशनी के मायालोक में वही जय हो गया है । जैसे परियों की कहानी में मेंढ़की की दुम झड़कर गिर पड़ी हो और उससे सुन्दर राजकुमार निकल आया हो, और अब उसके पास आ गई है बड़े राजपूत घराने की तरुणी, जिसका छद्म नाम है पद्मा । अज्ञात कुल-देश की सारी बाधाएँ नीले आकाश के चँदोवे के नीचे लुप्त हो गई हैं ।

केवल जय और पद्मा । मानवता के रंगमंच पर मानो इतना ही यथेष्ट था ।

पर कमबुद्धि जय के लिए इतना यथेष्ट नहीं मालूम हो रहा था । वह चाहता था परिचय और प्रणय, और वाद को शायद परिणय भी ।

फिर उसने विमुग्ध स्वर में कहा—पर तुम तो मुझसे सचमुच प्यार करती थी । अब अपने घर जा रही हो, इसलिए परिचय दिये बिना ही चली जाना चाहती हो । कहीं इसीलिए तो प्रेम की बात अस्वीकार नहीं कर रही हो ?

—It was a great fun Jay darling (वह खासा मजाक था, जय प्यारे) !

—Don't try to kid me now (अब तुम मुझे वनाओ मत)—चोट खाये हुए स्वर में जय ने अपने साथ इस तरह खिलवाड़ करने से मना किया और फिर कहा—तुम मुझसे प्रेम करती थी, और अब भी करती हो ।

—तुम बड़े अच्छे हो जय—वह बोली । यह अनुमान करना कठिन नहीं था कि कौतुक और व्यंग्य से पद्मा के पथ-लोचन खिल गये ।

वेचारा अबोध जय ! सहज सरल जय !

वह फिर कह उठा—तुमने तो कुछ भी नहीं कहा । क्या तुम मुझसे प्रेम नहीं करती थी ?

थोड़ी देर सन्नाटा रहा । फिर मन ही मन शायद बातचीत हुई । साँसें कुछ देर जैसे रुकी रही ।

—प्रेम ! वह तो बहुत बड़ी बात हुई, जय ! देखो, तुम सिर नीचा किये हो और तुम्हारे बाल सामने लटक गये हैं, लगता है जैसे कवि-प्रतिभा की अग्नि-शिखा लपलपकर जलती नीचे की चली आ रही हो । हाऊ फनी !

अग्नि-शिखाएँ शायद मन की आग से गरम होकर फिर अपनी जगह पर लौट आयी, पर जय गुमसुम बना रहा ।

पद्मा ने निरासक्त कण्ठ से कहा—समझ गई, समझ गई कि अब मुझे कवीन्द्र रवीन्द्र के उस बंगला गान को गुनगुनाकर अपनी बात कहनी पड़ेगी । तुम्हारे किसी मित्र ने उसका हिन्दी अनुवाद किया था न ? धूजंदीराम शायद उसका नाम है । उसे कहना कि वह उस गाने को अपने घराने के लिए रख लोड़े । आजकल की किमी आधुनिका को मुनाने से कुछ लाभ न होगा ।

ना भुलाऊँ रूप से
जीतूँ तुम्हें मैं प्रेम से;
हृदय-भट, ना हाथ से
पर खोलूँ संगीत से ।

गोश ! हाऊ इम्पोसिबल ! क्या उस गीत को किसी के कान में गुनगुनाकर सुनाना पड़ता है ?

जय चुप रहा । शायद उसके अभिमान को ठेस लगी थी, या उसने शिकायत करना फ़जूल समझा । वह जो चुप हो गया, सो चुप ही बना रहा ।

नीरवता को भंग करती हुई पद्मा ही फिर बोली—जानती हूँ कि मुझसे भेंट न होने के कारण तुम्हारे मन को कष्ट होगा, पर वह तो ऐसी बात है जैसे छिन्नी ने एक हीरे की अँगूठी गिर पड़े । इसका पता अनामिका को भी नहीं लगेगा ।

—चुप भी रहो पद्मा ! तुम बड़ी बूढ़न हो । जिम बात की घनभूति तुम्हें नहीं है, उसके प्रति इस प्रकार व्यंग्य करना उचित नहीं । जिमका तुम्हें ज्ञान नहीं, उसे तुम निन्दा करने लगाया नहीं कर सकती ।

शायद पद्मा तब भी चेहरे पर व्यंग्य का भाव बनाये बैठी रही । भारी बात शायद उसे अपनी मुखा जैसी कि उत्तर देने को ज़रूरत ही नहीं जान पड़ी ।

जय ने ही फिर कहा—ओ मुनी, यह भी मुझाए एक पौड़ा है । शायदशायद न,

विलास और होस्टल की पॉलिश ने तुम्हारे मन पर भी पॉलिश कर दी है। इसीलिए तुम अपने मन की व्यथा को ढँकने के लिए यह बात कहती हो। इसीलिए तुम अपने प्रेम-स्वप्न को तमाशा या फन कहकर हँसी में उड़ा देना चाहती हो।

—मुझमें न तो कभी प्रेम ही था, और न कभी स्वप्न ही था। अच्छा लगता था, मजा आता था, वस। जैसे केवड़े का श्रवत अच्छा लगता है। कुछ गुदगुदी आती है, कुछ देर के लिए सखर छा जाता है। इसमें अधिक कुछ नहीं। जिन मिला हुआ गिमलेट पीऊँ, जिससे घर जाने पर नशे में सिर भन्नाये और मैं त्रेमुध पड़ी रहूँ, ऐसी मैं नहीं।

—तो फिर क्यों तुमने मेरे साथ खिलवाड़ किया? क्यों मुझे इस नशे की आदत डाली? जय के स्वर में डाँट बताने वाला चेचनी का लहजा था।

—यदि यह पूछते हो कि क्यों, तो मैं इसका कारण बताती हूँ। कारण यह है कि मुझे मजा आता था। और सुनोगे? इच्छा हुई थी। इससे बड़ा और क्या कारण चाहते हो? मैंने यह चाहा था कि अपने देश की कुल-रीति के विरुद्ध विद्रोह करूँ। इससे भी अधिक कहूँ?

जय शायद कान में उँगली डालकर या अपने मुँह पर निपेधात्मक उँगली लगाकर बैठ था, उसका नीतिवान मन सकुचा गया था, इसमें सन्देह नहीं। उसने बहुत धीरे से कहा, यह सब तुमने बिना प्रेम किये ही किया?

असहिष्णु होकर पश्चाद्वोल उठी—ओ हो! तुम ख्वामख्वाह इसमें प्रेम को क्यों ला रहे हो, सम्भव नहीं पा रही।

—बात यह है कि मैं वेकफू हूँ, अहमक हूँ। कहकर वह चुप हो गया।

चारों तरफ इतना सन्नाटा छा गया था कि कार की घड़ी का टिक-टिक सुनाई पड़ रहा था। मेरी अपनी साँस भी सुनाई पड़ रही थी। लगता था कि यदि युवक के भीतर क्रन्दन हिलोरे लेने लगे, तो वह भी सुनाई पड़ जायगा और शायद युवती के मन को स्पर्श करेगा।

पश्चा ने मृदु सहानुभूति के स्वर में पूछा—क्या अभी तक प्रेम को लेकर सिर खपा रहे हो?

थोड़ी देर में युवक ने कहा—नहीं, मैं सिर्फ सोच रहा हूँ कि तुम चली जा रही हो, तुमने तो फिर से भेट होने का रास्ता भी नहीं रखा।

—इसके लिए तुम अफसोस कर सकते हो, पर मैं कहती हूँ कि ऐसा करना ठीक न होगा। गत कुछ महीनों के दौरान मैं हम विलकुल रहस्यमय रूप में एक दूसरे से मिले, क्या यह यथेष्ट नहीं है? तुम रोमाण्टिक टाइप के आदमी हो। जितना परिचय अब तक हुआ है उससे अधिक परिचय होने पर तुम्हें कुछ लाभ न होगा।

कहते-कहते पद्मा के कंठ में फिर व्यंग्य ध्वनित हो उठा, बोली—एक सुनहला सपना था न ? सन्ध्या का अस्त राग भी कह सकते हो । अब तो यह अच्छा-खासा काव्य हो गया, क्यों ? लेकिन बलिहारी जाऊँ, तुम अभी यह न कह बैठना कि अरावली पर्वतमाला के पीछे तुम्हारे जीवन का सूर्य अस्त हो रहा है । गुड बाई कह दो, पर सनसेट न कहो । दुनिया में ऐसी भावुकता के लिए स्थान नहीं ।

जय ने बहुत धीरे से प्रश्न किया—ओ रिवोआ (फिर मिलना) भी नहीं ?

पद्मा असहिष्णु हो उठी, बोली—फिर वही लिबलिव प्रेम की बात शुरू कर दी !

—मैं महज़ एक आदमी हूँ । मैं तुमको भी यह याद दिलाना चाहता हूँ कि तुम भी एक स्त्री हो—कहकर उसने अन्तिम प्रतिवाद किया ।

—तो रवीन्द्र का अनुवाद एक बार फिर सुनाओ । तुम्हारे पास कविताओं की कापी तो है । उसमें तुमने अवश्य लिखा होगा—‘मनुष्य ने अपने अन्तस्तल के सौन्दर्य से तुम्हारा निर्माण किया है ।’ यदि तुम्हें इस प्रकार की कविताएँ दुहराने से आनन्द मिलता है, तो वेशक तुम उसकी चुस्कियाँ लो । पर मैं बिना कहे नहीं रह सकती कि कुछ आधुनिक होने की चेष्टा करो । अगर बेवकूफी करनी है, तो आधुनिक ढंग से करो ।

—याने ?

—याने यह कि जो बात हो, वह युग के अनुसार हो । पहले के युग में हमारे ही कुल में परदादी के विवाह के समय दूल्हा वीर के वाने में हाथी या घोड़े पर चढ़कर तलवार लटकाकर फ़ौज-फाटा लेकर गया होगा । दहेज में मिले हीरे-जवाहरात, सोने-चाँदी के गहने रास्ते में लूटे जा सकते थे । यहाँ तक कि दुल्हन के साथ मे जो कनीजें होती थी, वे भी लुट सकती थीं । पर युग बदला, और हमारी माँ के साथ व्याह करने के लिए जब पिता जी गये, तो ट्रेन में चढ़कर बिना किसी भय के गये । स्टेशन पर कार तैयार थी । हाँ, जब वह शादी करने के लिए पहुँचे, तो घोड़े से उतरे । और यदि मैं शादी करूँ, तो अदालत में नोटिस टेंगी होगी । यही राजपूतों के विवाह में सुपारी या नारियल भेजने के स्थान पर होगा । वहाँ मैं हवाई जहाज़ से पहुँचूँगी, और सम्भव है कि मैं तुम्हें ही बेस्ट मैन होने के लिए बुलाऊँ । तुम यह काम कर सकोगे ?

भीने परिहास के कारण कण्ठ जलतरंग बाजे की तरह भँकृत हो उठा । लगा जैसे उसकी प्रतिध्वनि तारे-तारे में हो रही है । आकाश मानो आशा टूट जाने से नीले रंग का बना रहा, पर इससे चाँद का क्या बनता-बिगड़ता था ?

नहीं, अब और बैठा नहीं जा सकता । नवम्बर के प्रारम्भ की दिल्ली की ठंडक धीरे-धीरे रात में उतर रही थी, अब अधिक रुका नहीं जा सकता । नये राजस्थान की

एक नवीना आधुनिका के मन को मैं भलीभाँति जान चुका था। मानो मैं उसके नर्म दिल में पैठकर उसकी गहराई की थाह ले चुका था। कुछ सप्ताहों के बाद ही उस अनुभूति को कसौटी पर कसने वाला था।

जिस समय मैं बड़ी सावधानी से उठकर चल रहा था, उस समय ये वाक्य सुनाई पड़े—पर यह भी मैं कहे देती हूँ कि मेरे उम मोनोप्लेन में मुश्किल में शायद एक की जगह हो, उसमें तुम्हारी भावुकता की कथड़ियो या काटेज पियानो- के लिए जगह हर्गिज न होगी।

हवाई यात्रा

तड़के के धुंधलके में धरती की समता छोड़ उड़ा जा रहा हूँ । आँखों में नींद भरे अलसाये एक-एक कर डक्कीस यात्री ओवरकोट ओढ़े या हाथ में बैग लटकाये टाटा कम्पनी के हवाई जहाज में दाखिल हुए । दरवाजे के सामने नाम पुकारे जा रहे थे, और उसका जवाब देते हुए यात्री भीतर आते-जाते थे । सब की आँखें कड़वा रही थीं ।

पर मैंने अपने कान खड़े रखे ।

—हिज़ हाइनेस दि महाराजा आँव.....

—रावत साहब आँव.....

—हर हाइनेस आँव

—राजा आकारनाथ जा.....

इत्यादि । जिनके नाम अखबारों में देखे थे, उनके नाम मैं नहीं ल रहा हूँ ।

इन बड़े-बड़े नामों के बीच अचानक पुकारे जाने पर अपने अति परिचित साधारण मध्यवित्त नाम को पहचानने में कुछ दुविधा हुई । मैंने जैसे अपने आपसे पूछा—क्या यह मैं ही हूँ ?

इतने सब हिज़ हाइनेस और हर हाइनेसों की हीरा, मोती, पन्ना-खचित उपस्थिति के बीच मेरी हालत ऐसी हो रही थी, जैसे हंसों में बगुला ।

धुंधलके में मैंने चारों तरफ नजर दौड़ाई । नहीं, उनमें से कोई हीरा-जवाहरात और जरी की दरवारी पोशाक में नहीं आये थे । मेरी ही तरह साधारण पोशाक में 'लम्बशाट पटावृत्त' थे । मैंने प्राचीन संस्कृत श्लोक को मन ही मन शुद्ध करते हुए कहा—लम्बसूट पटावृत्त ।

चाहे वह सूट लन्दन के वाण्ड स्ट्रीट या दिल्ली की फेल्ट्स कम्पनी का बना हुआ क्यों न हो । उक्त श्लोक का दूसरा चरण भी मुझे याद आया, पर सुधीजनों को उसे याद दिलाने की जरूरत नहीं ।

अरावली पर्वतमाला की एक अन्तिम रेखा दिल्ली के हवाई अड्डे तक टेढ़े-मेढ़े ढंग से फैली हुई है । चारों तरफ पहाड़ी ऊसर का राज्य है । जीवन में यह पहली बार हवाई जहाज में चढ़ने का मौका मिला था । इसीलिए मैंने चंचलता के साथ

नीचे की ओर एक सतृष्ण दृष्टि डाली। मिट्टी की ममता मन को नीचे की ओर खींच रही थी। पर मिट्टी कहाँ थी ? चारों तरफ ऊसर पठार था, जिससे आनन्द तो मिलता है, पर जिसमें अपनी तरफ आकर्षित करने की शक्ति नहीं; जो रससिक्त नहीं, पर रक्त और रिक्त है।

और मिट्टी की ममता भी कहाँ रही ? स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद इन कुछ महीनों के अन्दर मनुष्य ने देश के नाम पर, धर्म के नाम पर, अमानुषिक अत्याचार किये हैं। मिट्टी की ममता छोड़कर लोग गिरोह बनाकर, और ऐसा-नहीं कर पाये तो अकेले, घर छोड़कर, प्रियजनों को छोड़कर, बाप-दादो की जगह छोड़कर, भाग खड़े हुए। कभी-कभी इस प्रकार सिर पर पाँव रखकर भागने पर भी जान नहीं बची। दानव के सामने मानवता टिक न सकी। मृत्यु आई हत्या का रूप धरकर। प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया।

हजारों स्त्री, पुरुष, बच्चे पंजाब में अपना घर-द्वार सब छोड़कर, जड़ से उखड़े पेड़ की भाँति आकर दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर जमा हुए हैं। दिल्ली शहर के पाना ही पंजाब का गुड़गाँव जिला पड़ता है। वहाँ से दिल्ली आने वाली पीच की सड़क पर अब तक अमेरिकन फ़ौजी ट्रक सीना फुलाकर दौड़ा करते थे। अब उसी सड़क पर आधी से उड़े हुए पतझड़ के पत्तों की तरह शरणार्थियों की भीड़—जिससे जो कुछ बन पड़ा, बिस्तरा, बक्स या कम्बल लेकर—किसी तरह पैदल दिल्ली भागती दिखाई दे रही है। वे लोग हजूम बनाकर आ रहे हैं, और जब पैर थक जाते हैं, तो कहीं रास्ते के किनारे विश्राम करके चलते रहते हैं।

जिस रास्ते से मैं कई बार पालम एयरोड्रोम पर मित्रों को यूरोप और अमेरिका-यात्रा के समय हँसमुख होकर विदाई देने गया था, यह वही रास्ता है। जब वे सुन्दर-सुसज्जित प्लेन के अन्दर विमान की सीढ़ी चढ़कर दाखिल होते थे, तो मैं उन्हें रेशमी रुमाल उड़ाकर विदाई देता था। आजकल देख रहा हूँ कि उसी हवाई अड्डे पर बराबर अनगिनत यात्री उतर रहे हैं, और वे इस प्रकार से जहाज के अन्दर ठूँसे गये हैं, जैसे छोटे-से टिन में विलायती साड्डिन मछली भरी जाती है। उनके हाथों में फटे कपड़ों की पोटलियाँ हैं, और तन पर अन्तिम सम्बल चद्दर, साड़ी या सलवार का टुकड़ा। उनकी दुर्दशा ने शौकिया रेशमी रुमाल हिलाने के चित्र को ढँक दिया है।

हिंसा के बदले हिंसा का नियम दुनिया में बहुत पहले से चला आ रहा है। यहाँ भी उसमें व्यतिरिक्त नहीं हुआ। इसलिए राजस्थान से दिल्ली के बीच बहुत-से स्थानों पर लोग फँस गये हैं। दिल्ली के दस मील के भीतर, यहाँ तक कि दिल्ली में भी, छोटे-छोटे संग्राम हो चुके हैं। देहाती इलाकों में मेव नामक मुसलमान राजपूतो और हिन्दू जाटों में लड़ाइयाँ केवल तलवार और वस्त्रियों से नहीं, बन्दूकों, रिवाल्वरों

और स्टेनगनों से हो चुकी है ।

इस ध्वंसकाण्ड में भारत सरकार आसानी से रुकावट न डाल सके, इसलिए लोगों ने रेल की पटरियाँ भी उखाड़ डाली थी । इस समय राजपूताना जाने की लाइन बन्द थी ।

इसलिए मुझे अभी-अभी चालू हुई हवाई जहाज की लाइन से राजस्थान जाना पड़ रहा है । विपत्ति में पड़े हुए लोगों का उद्धार करने के लिए भारत सरकार ने देशी और विदेशी जितने भी हवाई जहाज मिल सकते थे, उन्हें किराये पर लेकर पाकिस्तान से लोगों के उद्धार का काम आरम्भ किया था । इसलिए राजस्थान के राजा इस समय सिर्फ अपने ही लिए हवाई जहाज सुरक्षित कर अपने घर नहीं लौट पा रहे थे । तभी उन्हें टाटा कम्पनी के साधारण हवाई जहाज के यात्री के रूप में जाना पड़ रहा था । मैं भी जा रहा था । हम सब पहले जयपुर पहुँच रहे थे ।

बहुत नीचे अरावली पर्वत की रूखी श्रेणियों से मन को हटाकर मैंने विमान की मणि-मजूपा में अपने मन को केन्द्रित किया । इतने बड़े-बड़े हिज् हाइनेस राव-राजा, यहाँ तक कि एक जीती-जागती हर हाइनेस जहाँ मौजूद थी, उसे मणि-मंजूपा नहीं तो क्या कहेंगे ? और मजे की बात यह थी कि वे सब मेरी ही तरह साधारण व्यक्ति के रूप में बैठे हुए थे । इनके अपने इलाकों में इनकी आँख के जरा-से इशारे पर प्रलय उपस्थित हो जाते हैं । इतने बड़े हैं ये लोग !

चारों तरफ—नहीं ठीक चारों तरफ नहीं, क्योंकि मैं स्वयं खिड़की के पास बैठा था—राजाओं की भीड़ । सब राजस्थान जा रहे थे, इसलिए स्वभावतः राजपूताना की वीरता की कहानी—वीर की भाँति मृत्यु-वरण की कहानियाँ, एक के बाद एक मेरे मन में सिनेमा के चित्रों की भाँति आने लगीं ।

दिल्ली के आसपास इतने दिन हथेली पर जान रखकर भागते मानवों की जीती जागती अरथी देखी थी । उसका चित्र मानस-पटल से पुँछ गया ।

मेरे चारों ओर वीते युग के उन वीरों की भीड़ लग गयी, जिनके चिर प्रकाश-मान चन्द्र-सूर्य से उत्पन्न वंशों की कुछ टिमटिमाती मोमवत्तियाँ यहाँ मेरे साथ यात्रा कर रही थीं । इन मोमवत्तियों को भी फूँक मारकर बुझा देने की प्रचण्ड माँग उनकी प्रजा कर रही है ।

तीस साल पहले मांटग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में लिखा गया था कि “आशाएँ और आकांक्षाएँ सड़क के उस पार की चिनगारी की तरह सरहद को पार करके आ सकती हैं ।” भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की घटनाएँ उसे सत्य प्रमाणित कर रही हैं । लोकतन्त्र तथा भारत से मिलकर एक होने की जो लहर देशी नरेशों के सिंहासनों से टकरा रही है, उसे यदि मान लिया गया तो वह सिंहासनों को ही बहा ले जायगी ।

१९४७ की २५ जुलाई को अर्थात् स्वतन्त्रता-प्राप्ति के ठीक २० दिन पहले ब्रिटिश सम्राट् के अन्तिम प्रतिनिधि लॉर्ड माउण्टबेटन ने दिल्ली में नरेन्द्र मण्डल (चेम्बर आंव प्रिसेज) के समक्ष यह घोषणा की कि भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति के साथ-साथ ब्रिटिश सम्राट् का देशी रियासतों से कोई सम्बन्ध न रहेगा। वे कानून के अनुसार स्वतन्त्र हो जायेंगी। पर साथ ही यह भी कहा गया कि जहाँ तक देश की रक्षा, यातायात और विदेशों से सम्बन्ध का प्रश्न है, विवेकशील राजाओं का कर्तव्य है कि वे इनके सम्बन्ध में भारत सरकार की आधीनता मान लें।

अधिकांश इसके लिए भी तैयार न थे। फिर भी उन्नीसवें दिन प्रायः सबने मिलकर किस प्रकार अन्तर्भुक्त होने के कागजात पर दस्तखत कर दिये, यह मैंने दिल्ली के अपने दरबे में बैठे-बैठे देखा। देखा और भविष्य के रूप पर विचार किया।

विचार करने का यथेष्ट कारण था।

लोगों ने यह ठीक ही देखा था कि इच्छा न रहने पर भी बहुत से राजाओं ने मुँह बिचकाकर, जैसे कोई कड़वी दवा पी रहे हों, भारत सरकार से मिलने के इन कागजात पर १४ अगस्त को दस्तखत किये थे। इनमें से बहुतेरों ने शायद इस परिवर्तन का महत्व नहीं समझा था। इतनी जल्दी में सब कुछ हुआ कि बहुतों को शायद सोचने का समय भी नहीं मिला। बहुतों के मन में दुविधा और कुछ मानसिक रिजर्वेशन थी।

एक दिन की बात है कि एक छोटे से राजा अपनी दरवारी पोशाक की टीमटाम से लैस होकर तलवार झनझनाकर दिल्ली के सचिवालय के दोमंजिल पर चढ़ आये। उन्होंने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा कि ब्रिटिश के अधीन राजा होने के नाते वे स्वतन्त्र भारत के कागजात पर दस्तखत नहीं करना चाहते, क्योंकि उनका वैसा 'माहात्म्य' न होगा। इसलिए जब ब्रिटिश साम्राज्य का यहाँ से खेमा उठेगा, और वे स्वतन्त्र हो जायेंगे, तभी वे अपनी स्वतन्त्र कलम से उन कागजात पर दस्तखत करेंगे। यह तर्क देकर उन्होंने कहा कि आज की हस्ताक्षर करने की कार्रवाई को तब तक के लिए स्थगित कर दिया जाय।

चारों तरफ़ के भीने परिहास की गूँज में उनका यह गम्भीर प्रस्ताव डूब गया। उन्हें यह बताया गया कि योर हाइनेस, आप हाई रहते-रहते इस कार्य को सम्पन्न कर लें, क्योंकि कल सबेरे जब आप उन्नति कर योर मंजेस्टी हो जायेंगे, तब इस प्रकार का अनुरोध करने की धृष्टता हम कैसे करेंगे ?

लाचारी में आखिर हीरो की अँगूठियों से सुसज्जित हाथ, म्यान में पड़ी तलवार की मठ छोड़, मामूली कलम पर आकर टिका।

यह तो सब हुआ, पर उनके दिल पर जो घाव लगा था क्या उस पर मरहम-



एक राजपूत तरुणी ।

पट्टी की गई ?

लेकिन दूसरा कोई उपाय भी तो न था ।

जर्मनी के सब छोटे-छोटे राज्यों को एक कर जर्मन साम्राज्य की स्थापना करने वाले विश्वकर्मा विस्मार्क का नाम इन राजाओं ने अवश्य सुना होगा । एक बार यह सुनने पर कि अंग्रेज सेना जर्मनी पर आक्रमण कर सकती है, उन्होंने कहा— क्या ! ऐसी गुस्ताखी ? मैं पुलिस भेजकर अभी गिरफ्तार कराये लेता हूँ ।

राजा लोग यह भी जानते थे कि नवीन भारत के विस्मार्क सरदार पटेल भी पुलिस भेजकर इन राजाओं की रियासतों पर कब्जा कर सकते थे । यह कैसे ? ऐसे कि देशी रियासतों की प्रजा यह नहीं भूली कि नेताजी सुभाष के नेतृत्व में १९३८ के हरिपुरा अधिवेशन में कांग्रेस की तरफ से यह घोषणा की गई थी कि जो स्वराज्य होगा, वह सारे भारत के लिए होगा, तथा देशी रियासतें भी उस स्वराज्य की पूर्ण हिस्सेदार होंगी । जब वही स्वराज्य आ गया, तो भारतीय रियासतों की प्रजा उससे वंचित कैसे की जा सकती थी ? और बाकी भारत के लोग उन्हें वंचित होने ही कैसे दे सकते थे ?

फिर भी १५ अगस्त को परिस्थिति यह थी कि हैदराबाद, काश्मीर और जूनागढ़ भारत में मिले ।

प्रश्न यह है कि अब ये राजागण क्या करेंगे ? क्या वे इस मिलन को मान लेंगे और अपने आपको मिटाकर हमारे साथ मिल जायेंगे ?

क्या नवीन बृहत्तर भारत की सृष्टि होगी ?

जिस देश में छोटी-छोटी जमीदारियों जैसी जगहों में बैठे सुलतान नित्य अपने भाटों और मुसाह्वों से सुना करते थे कि वे आसमुद्र-हिमाचल पृथ्वी के अधीश्वर हैं, यहाँ तक कि पाताल के वासुकि उनकी सेना के पदचाप से काँपते हैं, और उनके बाहुबल के कारण आकाश में सूर्यग्रहण हुआ करता है, वहाँ उन सब कूप-मण्डूकों और थोड़े में सन्तुष्ट रहने वाले लोगों के लिए क्या यह सम्भव था कि वे अपने देश में विराट और महत् का स्वप्न देखते ? क्या उनके लिए सम्भव था कि सब के साथ एक होकर, अनन्य हृदय होकर, काश्मीर से कन्याकुमारी और पश्चिमी मरुभूमि से पूर्व के पहाड़ी इलाकों तक को एक देखते ? क्या अशोकचक्रयुक्त तिरंगे के नीचे काश्मीरी पण्डित और मलयायी मेनन, जोधपुरी राठौर और मणिपुरी नागा एक साथ खड़े हो सकते हैं ? क्या ये सब एकप्राण और एकमन होकर शरीर का रक्त और हृदय की भक्ति अर्पित कर सकते हैं ? क्या ये सब मिलकर 'जन गण मन अधिनायक' गायेंगे ? क्या एकत्र होकर 'वन्देमातरम्' से आकाश गुंजरित करेंगे ?

क्या मेरी राजस्थान-यात्रा सफल होगी ? क्या राजस्थान के अतीत गौरव

का गान सुनते-सुनते भावी वृहत्तर भारत के नवीन गौरव के प्रथम अंकुर को मैं सिर उठाते देख सकूंगा ?

क्या जो लोग वीरता में इतने महान् थ, वे आत्मोत्सर्ग में भी महान् हो सकेंगे ?

इतने दिनों से सुनता आ रहा था कि रियासती भारत ब्रिटिश भारत से बिल्कुल भिन्न है, और राजा लोग भारत से मिलना नहीं चाहते। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के साथ उनका एकमात्र सम्बन्ध दमन का था। उनका यह दावा था कि वहाँ के लोग भी हमसे अलग रहना चाहते हैं, क्योंकि हम जिस तरह लगान देते हैं, जिस प्रकार के जटिल प्रशासन के नीचे पिसते हैं, आयकर के दोहन को सहन करते हैं, उस तरह करने के लिए वे तैयार नहीं हैं।

प्रायः किसी भी रियासत में आयकर की बला थी। स्मरण हो आया कि कोई बीस साल पहले अमेरिका से आकर मिस मेयो ने अपनी किताब में भारत की इतनी निन्दा की कि गांधी जी ने उस पुस्तक को नाली-निरीक्षक की रिपोर्ट कहा था। उस पुस्तक में मेयो ने यह लिखा था कि किसी महाराजा साहब ने उससे कहा था कि अंग्रेजों के चले जाते ही उस वीर पुरुष के सैनिक ऐसी दौड़ लगायेंगे कि सुदूर बंगाल तक न तो कोई कुँवारी लड़की बचेगी, और न किसी के पास एक रुपया। किसने झूठ कहा था मिस मेयो ने या उस महाराजा ने, इसके प्रमाणित होने का समय आ गया था।

१९४७ के पहले के ब्रिटिश भारत और भारतीय भारत की जनता जागकर एक साथ इस प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी। वह निश्चित रूप से जानती थी कि कोई भी राजा इस नवीन भारत में खड़ा होकर ऐसी बात, कहना तो दरकिनार रहा, सोच भी नहीं सकता। यदि राजाओं में किसी ने अपने यहाँ के जनमत की उपेक्षा कर अपने को स्वतन्त्र घोषित करने की या ब्रिटिश छत्रछाया में आश्रय पाने की कोशिश की, तो जनता फौरन उस राजवंश को बिना युद्ध के ही समाप्त कर देगी, चाहे वह राजवंश कितना ही प्राचीन क्यों न हो। हमारे राज्य सचिवालय के मन्त्री सरदार पटेल ही-वही, अदना से अदना भारतीय भी यही समझता था।

इन राजाओं की तरफ से लड़े, तो कौन लड़े ?

प्रजा ? नहीं, वह तो इस समय वही सोच रही थी जो दूसरे भारतीय सोचते थे।

रहे सैनिक, सौ उनके मन में भी बाहर की लहरें आकर टकरायी थीं। इसके अलावा वे यह भी जानते थे कि भारतीय सैनिकों को अंग्रेजों ने खुद शिक्षा दी है। उनके सामने रियासती सैनिक ऐसे उड़ जायेंगे, जैसे आंधी के सामने सूखे पत्ते।

और राजा ? वे भी नहीं, क्योंकि ब्रिटिश युग में भी दिल्ली ने उन्हें कभी

एक नहीं होने दिया। अंग्रेजों के हाथ से सार्वभौम सत्ता भारतीयों के हाथ में आयी है, इसलिए कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय अदालत या संयुक्त राष्ट्र उनकी बातों को सुनने के लिए तैयार नहीं।

वे जानते थे कि उनकी प्रजा आज राजाओं के दैवी अधिकार पर विश्वास नहीं करती, और न वह इस बात पर ही मायापन्ची करती है कि राजा साहब चन्द्र वंश के हैं या सूर्य वंश के, अथवा हर वंश के। इसलिए राजाओं को अपना भाग्य-निर्णय स्वयं करना होगा। परन्तु अब भी वे कुछ निश्चय नहीं कर सके।

हमारे सहयात्रियों में से हर एक के चेहरे पर एक प्रश्न-चिह्न सा था। यूनान की पीरासिक गाथाओं में सिम्क्स की कहानी है। उसका चेहरा स्त्री का है, और शरीर सिंहनी का। उसके चेहरे पर चिरकालीन प्रश्न है, जिसका उत्तर कोई नहीं दे पाता। इन राजाओं के चेहरों पर भी वंसा ही प्रश्न था, उसका उत्तर नदारद।

हिज़ हाइनेस ऑव....

तड़के का धुंधला प्रकाश उस चेहरे पर पड़कर भूत और वर्तमान को न मालूम कैसे मिला-सा रहा था। उसमें से उसके वंश का एक पूर्वज जैसे प्रकट हो गया। यह महाशय राठीर वंश की किसी कनिष्ठ शाखा के कुल-प्रदीप थे। डेढ़ सौ वर्ष पहले इन राठीरों ने मालपुरा की किसी लड़ाई में बहुत रोमांचकारी वीरता दिखाई थी। उस युद्ध की गाथा राजस्थान के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी रहेगी। इनके शत्रुपक्ष के साथ कैप्टेन जेम्स स्किनर थे। उन्होंने लिखा है—दूर से राठीरों का आगे बढ़ते हुए देखा गया। उनकी विशाल और पंक्तिबद्ध सेना का पदचार्प, युद्ध के गर्जन को दबाकर, वज्र-निनाद की तरह ध्वनित हो रहा था। पहले वे धीरे गति से आ रहे थे, पर ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते गये, त्यों-त्यों उनकी गति बढ़ती गई। हमारे ब्रिगेड की सुसज्जित तोपों ने उनकी भीड़ पर गोलियाँ चलाकर एक साथ सी-सी आदमियों को मौत के घाट उतार दिया, फिर भी उनकी अग्रगति बराबर जारी रही। हमारी तोपों से घराशायी, अपने लोगों की १,५०० लाशों के ऊपर से वे आधी की तरह आगे बढ़े। बन्दूकों की भयंकर गोलियाँ, यहाँ तक कि संगीनों की मार से वे ज़रा भी नहीं स्के। बाढ़ के जल-स्रोत की तरह वे बराबर हम पर हमला करते रहे, और उन्होंने हमारे ब्रिगेड को समाप्त कर दिया। थोड़ी ही देर में ब्रिगेड का नामोनिशान तक नहीं रह गया।

युद्ध में उन्होंने इतना बड़ा आत्मोत्सर्ग किया। क्या शान्ति में भी वैसा त्याग कर सकेंगे ?

या फिर युद्ध के रास्ते से शान्ति, संहार के रास्ते से एका लाना होगा ?—

अब तब तक सप्ताह के इतिहास में प्रत्येक युग में जिसका अभिनय होता आया है।

पर हम लोग तो नवीन भारत के नये इतिहास के सामने खड़े थे, भारत के भाग्य-विधाता के जयगान के लिए हमारे कण्ठ और कराँ उत्सुक और उन्मुख थे।

इसलिए मैंने फिर एक बार ध्यान से अपने सहायत्रियों को देखा।

हिज्र हाइनेस सर आँव ...

मैंने अच्छी तरह सिर से पैर तक इस उच्चवर्गीय को देखा। यह जिस राजपूत गोत्र के है, उसी गोत्र के एक राजा की मज्जेदार कहानी चालीस साल पहले लेडी मिंटो ने अपने रोजनामचे में लिखी है। वह राजा साहब अपनी निजी 'हव्शी' अंग्रेजों में ब्रिटिश उच्चतम अधिकारियों के सामने मन की बात रखकर उनके मनो-विनोद का कारण बनते थे। भोजन के बाद तफ्तीरुह के तौर पर उनकी अंग्रेजी सुनी जाती थी। डिनर के बाद उनकी बातचीत हँसा-हँसाकर सब के पेट फुला देती थी, और खाना हजम हो जाता था। इन्हीं महाराजा पुगव ने एक बार कहा था—

“Viceroy he good pedigree; why for sending (to India as his successor) man no pedigree?.....Why Government not taking me? Rajput long long pedigree, going with soldier, killing Bengali Babu. That very good.”

(रोजनामचे का पृष्ठ ३६३)

अर्थात्—वाइसराय अच्छे वंश के हैं। उनकी जगह ऐसे आदमी को क्यों भेजा जा रहा है, जो कुलीन नहीं? सरकार मुझे क्यों नहीं लेती? बहुत प्राचीन राजपूत कुल। मेला ले जाकर बंगाली बाबुओं को मारेंगे। बहुत ठीक रहेगा।

बंगालियों ने सबसे पहले अंग्रेजी और पाश्चात्य विद्या सीखी थी। अब वह अंग्रेजों के साथ उसी विद्या का प्रयोग गुरु को मारने में कर रहे थे, और उनके सामने ताल ठोककर खड़े हो रहे थे। पहले तो इस देश में शासन के लिए आवश्यक भाषा में शिक्षा दी गई, पर उस बाढ़ को वही रोका न जा सका। इसका फल हुआ स्वतन्त्रता के लिए व्याकुलता और देश-सेवा के लिए तत्परता।

इसके बाद अंग्रेजों के मन में बंगालियों के प्रति कोई स्नेह या सहानुभूति नहीं रह सकती थी। स्वभावतः ही अब बंगाली अंग्रेजों की आँख की किरकिरी तथा उनकी ईर्ष्या और निन्दा का पात्र हो गया। अच्छे छात्र को यह कहा गया कि यह तो रट्टू है। जब वे लोग बड़ी नौकरियों के लिए परीक्षाओं में अंग्रेजों के साथ होड़ करने लगे, तो कहा गया कि ये तो बस परीक्षा पास करने के फेर में रहते हैं। अंग्रेजों के व्यापारिक दूतों में छोटी नौकरी करने पर उन्हें बाबू की पदवी मिली। एक अच्छे-भले शब्द पर व्यंग्य का पुट आ गया। एक शिक्षित जाति अंग्रेजों और उनके खरबवाहो

के निकट मजाक का विषय बन गई ।

पर यही बंगाली वावू भारत के जन-जागरण का अग्रवा बन गया । बंगाली सबसे पहले स्वतन्त्रता के झंडे के नीचे आकर खड़े हुए, सबसे पहले उन्होंने शोणित-तर्पण किया—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार इन हाइनेस महोदय के पुरखों ने पठानों और मुगलों से लोहा लिया था । उन राजपूतों के साथ इन बंगालियों की एकात्मकता का अनुभव कर उस राजपूत राजा की मूर्खता और नासमझी को भूलने में कोई कठिनाई नहीं हुई ।

रावत साहब आँव.....मेरी बगल की सीट पर बैठे हुए कुछ दवे-से कुस-मुसा रहे थे, मानो अशान्त समुद्र के बीच कोई जहाज केले के फूल की तरह झकोरे खा रहा हो । भला इसका कारण क्या था ? कारण यह था कि इन महामहिमान्वित रावत साहब की जेब में एक ऐसा सुगन्धित हवाना सिगार था, जिसकी सुगन्ध उन्हें कस्तूरी मृग की तरह परेशान किये हुए थी, पर यह सिगार इस समय उनके लिए मृग तृष्णा-सा हो रहा था, क्योंकि हवाई जहाज से उतरे बिना वे उसका स्वाद नहीं ले सकते थे—हवाई जहाज में धूम्रपान मना है, क्योंकि उससे आग लगने का खतरा रहता है ।

फिर भी गनीमत थी । मैं तो यह सोच रहा था कि कहीं ऐसा तो नहीं कि इतने हाइनेसों में वे ही मेरे पास बैठने के लिए बाध्य हुए थे, इसीलिए वेचैन थे ।

या कहीं यह बात तो नहीं थी कि सामने की कतार में जो हर हाइनेस बैठे थे, उनकी सुरभि बहुत पास होने पर भी बिलकुल पास न थी, इसलिए वे पानी से निकली मछली की तरह छटपटा रहे थे ।

हवाई जहाज कम्पनी की तरफ से यात्रियों को बहुत ही विनोदपूर्ण ढंग से सदुपदेश दिया गया था । बहुत सुन्दर छपे हुए कुतूहलवर्द्धक चित्रों से सुसज्जित विज्ञापन में बताया दिया गया था कि रोमान्स उन्हें बहुत पसन्द है, यहाँ तक कि कोई चले-फिरे तो उसमें कोई आपत्ति की बात नहीं है, पर हवाई जहाज जिस समय उड़ान में पैग भर रहा हो, उस समय यही वाँछनीय है कि लोग अपनी-अपनी कुर्तियों में अपने बेल्ट से बँधे हुए दिखाई पड़ें, और उस समय वे मध्य युग के नाइटों की तरह आचरण करते न दिखाई पड़ें ।

मन ही मन यह जानने की इच्छा हुई कि जिस देश में पद्मिनी और कर्मदेवी की वीरता की कहानियाँ गूँजती हैं, जो विपत्तियों में पड़कर भी अपने साहस से त्राण का मार्ग खोज लेती थी, उस देश के अन्तरिक्ष में यदि कोई ऐसा ही मौका आ जाय, तो वहाँ की आधुनिकाएँ (आज की स्त्रियाँ) क्या करेंगी । ऐसी परिस्थिति में कलकत्ते के ट्रामों और बसों में अकेली स्त्रियाँ जिस प्रकार आचरण करती हैं, उसके साथ आधु-

निक राजपूत रमणी के व्यवहार की तुलना करने की बात मन में आई।

इस बात पर और आगे सोचने से पहले ही रावत साहब ने भेरी तरफ़ ताककर

पूछा—गुडमॉनिंग, क्या पौ फट रही है ?

मैंने कुछ कौतुक के साथ कहा—कहिये, क्या बात है ? क्या पौ फटने में कुछ देरी है ?

जम्हाई लेते-लेते मुंह को हथेली से ढकते हुए वे बोले—देरी तो कुछ नहीं, लेकिन आज रात तो भपकी भी न ले सका।

समझ में न आया कि उनके कहने का क्या मतलब है।

मैंने कहा—क्यों ? जाड़े के दिन हैं। जहाज़ जरूर बहुत तड़के खाना हुआ है, फिर भी रात में सोने को समय तो काफी मिला होगा।

उन्होंने यह बात न मानी। कहाँ समय था ? रात अभी भीग भी न पाई थी कि जहाज़ का समय हो गया।

बात कुछ ठीक ही थी। जिनको श्रम का दुःख नहीं मिलता, उन्हें विश्राम का सुख भी नहीं मिलता। नींद भी उन्हीं को आती है, जो पसीना बहाते हैं। हीरो और पन्नो से जड़ित, सुरा और सुन्दरी से ललित सन्ध्या इनमें से बहुतों की जागती आधी रातों को नूपुरों की ललभून और नाच की मीठी तालों के आघात से ऊपा के निकट ले जाती है। इसके बाद अलसायी उपा आँखों में नींदभरे प्रभात के आँचल में मुंह छिपाकर कब दोपहरी की ओर चली जाती है, इसे हम श्रमाग्रे जो उस समय काम करते-करते थककर घड़ी की ओर देखने लगते हैं, कैसे जान सकते हैं !

मैंने उन साहब के चेहरे को अच्छी तरह देखा, तो मालूम हुआ कि नींद न आने की परेशानी उनके तगड़े चेहरे पर स्पष्ट है। जिनकी पालहीन जीवन-नीका के ऊपर से श्रमावों और चिन्ताओं के तूफ़ान आते-जाते ही रहते हैं उनके चेहरों पर इस प्रकार की रेखाएँ नहीं रहा करतीं। परन्तु सैकड़ों मणि-भक्ताओं की जगमग तथा रंगीन रेशमी पगड़ी की चमक-दमक भी इनकी इन रेखाओं को छिपाने में समर्थ नहीं।

बिना कारण ही कुछ सहानुभूति हुई।

मैंने कहा—कल रात कुछ न कुछ नींद तो आई होगी।

पौ फटने के समय के धुंधलके पर ऊपा की ज़रा-सी झलक की तरह रेखाओं से विकृत चेहरे पर थोड़ी हँसी लाने की चेष्टा करते हुए मित्रता करने के लिए उत्सुक तथा हँसी-मजाक में पट्टु रावत साहब ने कहा—हाँ सोया था, पर मैंने स्वप्न देखा कि मैं नहीं सोया।

इनके पुरखे महानिद्रा की गोद में जाने से भी नहीं धवराते थे। यह रावत साहब जिस राज्य के जान पड़े, वहाँ के राजवंश के एक पूर्वज की कहानी याद पड़ी।

वह कोई साढ़े छः सौ वर्ष पहले की कहानी है। वे वर्षों से सुलतान की सेना से लड़ते हुए अपने गढ़ की रक्षा कर रहे थे। एक दिन देखा गया कि किले को भ्रव बचाया नहीं जा सकता, मृत्यु के सिवा कोई रास्ता नहीं। उस महामरण से पहले की रात गढ़ में महोत्सव मनाया गया। पुर-नारियों तथा रानी ने अपनी मांगों में सिन्दूर भरा, और प्रियजनों से विदाई ली। उसी रात २४,००० वीरांगनाओं ने तलवार की धार या आग की लपटें चूमकर आत्मोत्सर्ग किया। जो चार हजार योद्धा बचे, वे रात बीतने पर केसरिया बाना पहन सिर पर मोर रख, हाथों में नंगी तलवारें लिये मौत के सामने कूद पड़े, और वीरगति प्राप्त की। राजपूत जीवन में दो बार सिर पर मोर रखते थे—एक बार विवाह-मंडप में और दूसरी बार महानिद्रा से आलिङ्गन करते समय।

और इस प्रकार जब दूसरी बार वे मोर रखते थे, तो उनके कपड़े गेरुवे होते थे। संसार छोड़कर संन्यास लेते समय गेरुवा वस्त्र पहिना जाता था, इसी प्रकार इस दुनिया को छोड़ते समय भी गेरुवा वस्त्र पहिने जाते थे। उस समय कोई बन्धन नहीं रह जाता था। उस समय एकमात्र लक्ष्य यही होता था कि शत्रु को मारकर मृत्यु का वरण किया जाय। इसलिए 'जर्द कपड़ों वाला' राजपूत सैनिक शत्रु के लिए महाकाल होता था।

हर हाइनेस की अलसाई बाहु लता बड़े नाज़ से एक बार हिली। प्रभात की धुंधली रोशनी में उनके चेहरे का केवल भाग दिख रहा था। ऐसा लगा जैसे भिल्ल की रानी विलयोपेट्टा ने मार्किन मेक्स के कारखाने में तैयार एक कम्पैक्ट से थोड़ा-सा पाउडर लेकर मुंह पर मल लिया हो। फिर उन्होंने एक बहुत ही छोटी गहरी नीली शीशी से कोई सेंट निकालकर कान के नीचे और ठुड्डी पर ज़रा-ज़रा लगा लिया। सारे केविन में सुरभि फैल गई, ठीक उसी प्रकार, जैसे मन में खुशी की लहर दौड़ जाती है। उसका उद्गम कहाँ था, प्रेरणा कहाँ से मिली, इन बातों की खोज करने की आवश्यकता नहीं।

समय के उपयुक्त इत्र का चुनाव बहुत ही सूक्ष्म सुकुमार कला है। ऐसा जान पड़ता है कि पश्चिमी के देश में ऐसी कला के चुनाव में त्रुटि नहीं हुई। पर दुर्भाग्य यह है कि वहाँ के चारणों के संगीत में सुरभि सम्बन्धी इस कला की चर्चा नहीं। पर एकाकिनी पश्चिमी को यह विद्या भी बड़े यत्न से और ज़रूरत पड़ने पर प्राप्त करनी पड़ी थी। आज उनका नाम महाकाल से अभिसार के साथ जुड़ गया है, इसलिए अन्य बातें भुला दी गई हैं। अनेक शताब्दियों से संचित और अनेक पूर्व-पुरुषों के पुरुषार्थ से अर्जित प्राण-शक्ति ब्रिटिश युग से सुरक्षित, शान्तिमय और दायित्वहीन अस्तित्व में प्रकट होने का मौका नहीं पा सकी, इसलिए इन लोगों की नासिकाएँ

बे-लगाम घोड़े की तरह हो गई हैं ।

इसीलिए राजपूतों की अन्तःपुर-वासिनियों को भी नये युग की मोहिनी बनना पड़ा है । बात यह है कि यह निष्ठुर युग किसी को क्षमा नहीं करता । अन्तःपुर या कुल-धर्म कुछ भी उसके आक्रमण से बच नहीं सका । इसीलिए शास्त्रों में जो सहर्षमित्री मानी गई है, वह बाहरी जगत् में न तो सहर्षमित्री है और न भीतरी जगत् में समसुख-दुःख-भागिनी । फिर भी उसे बाहर की मोहिनियों से लोहा तो लेना ही पड़ता है—भले ही वह अन्तःपुर के एकान्त कोने में वन्द रहे । माथे का ईगुर, नाखूनों का महावर, आँख का काजल या सुरमा बहुत पुरानी चीजें हो चुकी हैं । ये सब आत्मरक्षा के अस्त्र-शस्त्र हैं । सेंट भी उसी प्रकार का एक अस्त्र है । मानसी, प्रिया को दशप्रहरणधारिणी बनना पड़ता है ।

इस सम्बन्ध में फ्रांस के प्रेम विशेषज्ञों का क्या कहना है, यह रावत साहब ने मेरे कानों में चुपके-चुपके बताया । प्रखर निरीक्षण-शक्ति से रावत साहब यह समझ गये थे कि हर हाइनेस इस जादू विद्या में पारंगत थी । वे अवश्य ही सवेरे के समय कोई मोहक सुगन्ध का प्रयोग करती थीं, और ब्रिटिश रेसीडेन्सी के टेनिस कोर्ट में अपराह्न समय ऐसी किसी सुगन्ध का प्रयोग करती थी, जो पकड़ में आकर भी नहीं आती थी । फिर सन्ध्या समय वह कोई ऐसा सेंट लगाती होंगी, जो कपटतापूर्ण, मोहावेश लाने वाला, साथ ही विजय-संकेत से पूर्ण हो । डिनर डान्स में वह ऐसी सुगन्ध लगाती होंगी, जिसमें मादकता और रात्रि की रहस्यातुरता रहती है । वह सुगन्ध ऐसी होगी, जो रसिक जनो को आकर्षित तो करेगी, पर अपना पता न देगी ।

शाबाश, क्या कहना है !

मैंने मुस्कराकर कहा—शाबाश योर हाइनेस ! (यद्यपि रावत साधारणतः राजा या रूतिंग प्रिंस नहीं होते; यह सज्जन जागीरदार है या राजा, यह भी नहीं मालूम । लोकतांत्रिक यूरोपीय पोशाक से यह समझना मुश्किल था कि वह किस श्रेणी के रावत है । पर इतना तो मैं बहुत अच्छी तरह समझ गया था कि इस समय उन्हें किसी दूसरे ढंग से सम्बोधित करने से इस रसीली आश्लोचना में व्याघात पड़ जायगा ।) देखता हूँ कि आप बहुत ही गुणी और गुणग्राहक व्यक्ति हैं । रिवियेरा से आपको कुछ सीखना नहीं है ।

रावत साहब ने कीतुक के साथ कहा—रिवियेरा वाले सुरभियों के सम्बन्ध में कितना ज्ञान रखते हैं, यह आपको पता नहीं है, तभी आप ऐसी बातें कर रहे हैं । बड़े दुःख की बात है कि वे इस सम्बन्ध में कभी जितना सीख पायेंगे, उतना तो हमारे देश के गुणी पहले ही भूल चुके हैं । उसी प्राचीन युग के गुणियों से नुस्खा लेकर हम उसे फ्रांस भेजते हैं कि हमारे लिए ऐसी सुगन्ध तैयार करें, जिस पर हमारा सर्वाधिकार

हो, और जो हमारे लिए ही बने। उस सुगन्ध को दूसरों के लिए बनाने का या उसे बाज़ार में बेचने का अधिकार उनको नहीं होता।

मैं सुनकर मुग्ध हो गया। वाह ! तो इस प्रकार हमारे देश में एक राष्ट्रीय धन्धा हो सकता है।

—तो सुनिये—प्रसन्नता से हँसते हुए रावत साहब बोले—उन लोगो के वायोलेट नामक फूल से जो एसेंस बनता है, उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वह पुराने रोमान्स की स्मृति लुटा लाता है, पर हमारी कस्तूरी की सुगन्ध ऐसी है कि वह स्मरण-शक्ति को ही लुप्त कर देती है, और मन हारकर बैठ जाता है। पूर्व का देश रहस्यमय है, इस कहावत का चलन ही इसी से हुआ है।

इस प्रकार सुरभि शास्त्र पर आलोचना सुनते-सुनते मैं थक गया। उनका दावा था कि वह एक ऐसा सेट जानते हैं, जिससे अम्मोहन किया जा सकता है। वायु भी उम सेंट के स्पर्शमात्र से मूर्छित हो जाता है।

—और ?—मैंने कौतूहल से प्रश्न किया—और क्या होता है ?

—सहेलियो की तो बात ही नहीं है।

सहयात्री रावत साहब ने कुछ अद्भुत हावभाव दिखलाये। उनकी चितवन ने जो परदा उठाया, उसके पीछे अनेक अभिसारों के इंगित छिपे थे। न जाने कितने दिवा-स्वप्नों और कितने निशा-संगीतो के इशारे उसमें थे।

इंग्लैण्ड और यूरोप में जाकर हिज़ हाइनस ने शिष्टाचार और संस्कृति का जो अध्ययन किया था, वह व्यर्थ नहीं गया।

जयपुर की नूरजहाँ

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भ में, विदेशी शिक्षा के मैदान में अगुवे बंगालियों ने फ्राँच-विद्रोह के देशभक्तों और इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम के सम्बन्ध में अध्ययन किया। तब इन शिक्षित व्यक्तियों ने अपने देश में इस प्रकार के राष्ट्रनायकों की खोज की और राजस्थान के राष्ट्रपुरुषों की कथाओं को जनता के समक्ष रखा। इस प्रकार बंगाली साहित्य राजपूतों की वीरतापूर्ण कहानियों से भरपूर है। इसी से राजस्थान के बंगाली साहित्यकारों की खोज है। वह राजस्थान ऐसा है जिसकी कीर्ति मेखला से वसुधा वेष्टित है। वचन में श्री रंगलाल की कविता में पहले पहल राजस्थान से परिचय हुआ। मन में कितनी ही अमर कहानियों की लड़ियाँ गुँथ गईं। इसके बाद किशोर काल से बराबर राजपूताने का स्वप्न देखता आ रहा था। अब वह स्वप्न सफल होने चला था। अपनी आँखों से मैं उस स्वप्न की भूमि को देखूँगा, जी भर उसे स्पर्श करूँगा। यह कितनी बड़ी बात थी। हृदय-तंत्री के तार आनन्द से भँकृत हो उठे—

आनन्द, अबाध आवेगयुक्त आनन्द।

इसके अलावा जयपुर को बनाने में बंगाली स्थापत्य-कला का हाथ था। इस बात की याद आते ही जयपुर के साथ आत्मीयता और बढ़ गई। ऐसा कौन नराधम होगा जिसकी छाती पुरखों की कीर्ति देखकर फूल न उठे ?

जयपुर को ही राजपूताने का प्रथम तोरण माना जाता है, इसलिए और भी प्रसन्नता हुई। चला तो था केवल एक देश देखने, पर ऐसा लगा जैसे कोई आविष्कार करने चला हूँ। और उस देश में प्रवेश करते ही जैसे पुरखों की कीर्ति ने दोनों हाथ बढ़ाकर स्वागत किया—आओ, आओ, मुझे देखो, तुम्हारे ही लिए मैं इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रही थी।

मैंने भी मन ही मन उत्तर दिया—यह लो, मैं आ गया। मन तो हमेशा ही तुम्हारे पास रहा, पर अब सदेह आ गया।

प्रातःकाल की स्नेहभरी नीली चितवन से अरावली पर्वतमाला की चोटियों ने मुझे देखा, और अपनी गोद में ले लिया।

चारों तरफ़ अरावली-शृंगों से घिरे छोटे-से समतल एयरोड्रोम में हमारा

हवाई जहाज रुका । एक मुहूर्त में मैं जैसे राजपूताने का हो गया ।

बाहर कतारों में लम्बी और सुन्दर अमेरिकन कारें खड़ी थीं । प्रत्येक के नये प्लेट की लाल छाती पर सफेद अक्षरों में उनके राज्य का नाम लिखा था । मैंने चटपट देख लिया कि किस-किस राज्य के राजा और प्रतिनिधि हमारे सहयात्री थे । उनके स्वागत के लिए उनके ए० डी० सी० और सरदार आये थे । जयपुर की ओर से भी महाराजा के कई ए० डी० सी० और कई आटो आये थे ।

आटो यानी कारें । नये फैशन के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अमेरिकन या कॉण्टीनेण्टल नाम व्यवहार में लाये तो उसमें आधुनिकता का पुट आ जाता है । पेट्रोल शब्द को ही लीजिए । यह अंग्रेजी भाषा का बहुत मामूली शब्द है । उसे गैस कह दीजिये, तो लोगों को उसमें कैलिफोर्निया की एक मृदु गंध आयगी । उसे जूस कहिये, तो आपके सामने समूचा रिवियेरा कॉण्टीनेण्ट की वाधाहीन स्वाधीनता उसके समग्र रूप रस सहित लेकर आपके सामने आ खड़ा होगा । यह रिवियेरा वही है, जिसकी सुनहली बालू पर हालीवुड की तारिकाएँ और भारत के महाराजे समानरूप से सब की आँखों के तारे बनकर शोभायमान होते हैं ताँ नही, बल्कि मरिण । अवश्य ही, तारिकाएँ पुरुष-रत्नों के नेत्रों की मरिण बनती हैं और राजे-महाराजे पुरुषोत्तमाओं के नेत्रों की मरिण ।

और मरिण भी स्पर्शमरिण ! ये लोग इतने रुपये बखेर सकते हैं और विलासिता और शान के इतने सामान एकत्र कर सकते हैं कि यदि कोई भाग्य से इनके इर्द-गिर्द आ जाय, तो उसके लिए तो चाँदी है, याने वह अपने दुःख-दरिद्रता के भवसागर से तरकर पार हो जाय । जिस चीज को वे छू दें, वही सोना हो जाय । इसीलिए भारत के राजे-महाराजे कॉण्टीनेण्ट और अमेरिका के लोगों की आँखों में सुनहले स्वप्न की तरह रमे रहते हैं ।

रावत साहब वाला वह सेंट का नुस्खा याद आया । यदि कोई फ्रांसीसी ऐंसेस बेचने वाला यह विज्ञापन दे कि उसने एक भारतीय महाराजा के गुप्त नुस्खे को उड़ाकर एक सेंट तैयार किया है, तो वह रातोंरात किस प्रकार मालामाल हो जायगा, यह सोचते ही नाक के सामने मृदु सुगन्ध भूँकोरे दे गई ।

हर हाइनेस पास से गुजर गई थीं ।

विचित्र राजपूती पोशाकों से सुसज्जित राजपुरुष सीने पर हाथ रखकर आधे शरीर को साठ अंश झुकाकर अपने प्रभु तथा प्रभु के मित्रों का स्वागत करने लगे । दरबारीगण यानी हिज्र हाइनेसों की मंडली एक दूसरे से सामयिक विदाई लेने लगी । शिष्टाचार और मीठी बातचीत की बहार देखने और सीखने की वस्तु थी । अंग्रेज शासक भारत से जा चुके हैं, अब उनकी जगह पर फ्रांसीसी आसीन हुए हैं । इस बीच

ये राजागण दिल्ली जाकर इस बात पर विचार-विनिमय कर आये हैं कि वे कहाँ तक अंग्रेजों के द्वारा छोड़े हुए स्थान की पुर्ति कर सकेंगे। पर इस समय उन पर जो आंधी चल रही थी, उससे उनके डम शिष्टाचार और तकल्लुफ़ पर जरा भी आँच नहीं आई।

ठीक उसी प्रकार जैसे मैकडो विपत्तियों के सामने भी उनके पुरखों के वीर धर्म में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती थी वे उस पर अटल रहते थे।

पर वह एक दूसरा इतिहास है। उसका परिचय हमें टाड साहब के इतिहास में, रंगलाल की दगला कविताओं में, दक्किमचन्द्र और रमेशचन्द्र के उपन्यासों में, द्विजेन्द्र लाल के नाटकों में और रवीन्द्रनाथ की पुस्तक 'कथा और कहानी' में मिलता है।

और अब इन हाइनेसों में हम एक दूसरे ही राजस्थान का चित्र देखते हैं। इनके प्राणों की चिड़िया सार्वभौम सत्ताधारी ब्रिटिश सोने की डिबिया में सुरक्षित थी। वही से उसका उड़ना और पर फड़फड़ाना उन्हीं की आँख के इशारे पर होता था। उनकी आँख का इशारा आज्ञा होती थी।

इन राजाओं के प्याले अंग्रेजों के आतिथ्य में शिकार, नाच और भोज के अवसर पर लवरेज़ होकर उमड़ पड़ते थे। इस प्रकार इन्होंने एक नयी परियों की कहानी, नये राजस्थान की कहानी रची है। समाजवादी मित्र कहते हैं कि यह कहानी नहीं उपकथा है, बीसवीं सदी के सफेद धूँधट में कुण्ठित राजपूत भूमि की कहानी।

जयपुर शहर में प्रवेश करने के बहुत पहले ही पहाड़ के ऊपर चारों ओर खिंची बड़ी दीवाल पर नजर पड़ती है। ऐसा लगता है जैसे पहाड़ के सिर पर पत्थर की माला डाली गई है। क्या इस दीवार को पार कर दुश्मन कभी जयपुर में प्रवेश कर सकता था ?

साथ ही आमेर के तीन महाराजाओं की बात याद आई। अकबर के जमाने में राजा मानसिंह मुगलों की सेवा और सहायता का मार्ग अपनाकर आमेर और मुगल साम्राज्य की नींव की पक्की कर गये। शाहजहाँ और औरंगजेब के जमाने में मिर्जा राजा जयसिंह आमेर के प्रताप को और भी बढ़ा गये। इसके बाद सवाई राजा जयसिंह अतुलनीय बुद्धि और राजनीति से आमेर को और भी प्रभावशाली बना गये।

यह जयपुर मुगलों से लड़कर विनष्ट नहीं हुआ था, और न इस पर ईरान या अफगानिस्तान से हमले ही हुए थे। इसका समय शान्ति में ही कटा। फिर भी गत २०० वर्षों में जयपुर इतना निरुतेज और निर्वीर्य बन गया, यह प्रश्न मेरे मन में उठा।

भविष्य में राजस्थान के निर्माण के लिए भूतकाल की उन वृत्तियों को अच्छी तरह जाँचकर आगे बढ़ना पड़ेगा।

यदि उन्नीसवीं या बीसवीं सदी के राजपूत सामन्तों और राजाओं के चरित्र को देखकर हम राजपूताने पर अपना मत बना लें, तो उससे देश की ही हानि होगी।

मंगालियो ने जिस गौरवमय दृष्टि से इस देश को देखा है, वही सच्चा है। उसी दृष्टि-

कोण से देखकर ही हम भावी राजस्थान का निर्माण कर सकते हैं। तभी हम राजपूताने के अधिवासियों से उनका सर्वश्रेष्ठ दान पा सकते हैं।

आज सारा भारत चाहता है कि प्रत्येक प्रान्त में जो श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गुण हैं, उन्हें वह प्राप्त कर ले। विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा है 'कि पड़ो अपावन ठौर में कचन तज न कोय'। इसी प्रकार की बुद्धिमानी और गुणग्राहकता के कारण मुगल सम्राट् जहाँगीर ने ताजुक-ए-जहाँगीरी में खुदा का शुक्र करते हुए खुशी जाहिर की है कि जो कीर्ति मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के हाथ न लगी, जिसे हमायून प्राप्त न कर सके, विख्यात् अकबर भी जिसे आंशिक रूप में ही प्राप्त कर सक, उसे जहाँगीर ने प्राप्त किया।

इसका अर्थ यह था कि पठानों और मुगलों के चिर-शत्रु उदयपुर के सिसोदिया वंश के महाराणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह जहाँगीर के साथ सन्धि और मित्रता के सूत्र में बाँधे लिये गये।

जहाँगीर के इस उत्साह के पीछे वीर-पूजा थी। वीरता में राजपूताने की तुलना में कोई ठहर नहीं सकता था। यह वीरता केवल शत्रु के हनन और आत्मवलिदान तक सीमित न थी। इसके साथ जुड़ा हुआ था स्वामिधर्म अर्थात् प्रभु-भक्ति और धर्म-युद्ध का आकर्षण। एक ईरानी इतिहासकार ने दतिया के वर्तमान महाराजा के पूर्वज सुजैनसिंह बुन्देला के सम्बन्ध में एक कविता लिखी थी—

दो रोज गुजर कर्दन अज मर्ग सजानेस्त,
रोज कि कजा वाशद रोज कि कजा नेस्त।
रोज कि कजा वाशद कोशिश न कुनद सूद,
रोज कि कजा नेस्त दर ऊ मर्ग रवा नेस्त।

यानी दो मौकों पर मरने से मुँह मत मोड़ो, एक मौका तो वह है जब कि तुम्हारा मरना बदा है, और एक दिन वह जब कि तुम मर नहीं सकते। बात यह है कि जिस दिन तुम्हारी मृत्यु निश्चित है, उस दिन सी यत्न करने पर भी तुम बच नहीं सकते, और जिस दिन तुम्हें मरना नहीं है, उस दिन तो मौत से डरना इसलिए बेकार है कि उस दिन तुम मर नहीं सकते।

तो फिर डर काहे का ? मरने के लिए युद्धक्षेत्र से बढकर राजपूत को और कोई सेज नहीं होती। शेक्सपियर ने भी इसी प्रकार लिखा था—

"Cowards die many times before their deaths,
The valiant never taste of death but once.

.....Death, a necessary end,
Will come when it will come."

यह बात इनके जीवन में रोज घटती रहती थी। घमंयुद्ध किसे कहते हैं, इसे वे जानते थे। दुनिया के इतिहास में भारत के बाहर इस प्रकार की उदात्त भावना बहुत कम पायी जाती है।

जयपुर महाराज के अतिथिभवन माशाकोठी की शानदार बैठक के एकान्त कोने में ठाकुर साहब मुझे यही बात समझाने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने कहा—देखिये मैं जयपुर की कहानी नहीं कहूँगा, क्योंकि मैं स्वयं जयपुरिया हूँ। मेवाड़ की बात भी नहीं कहूँगा, क्योंकि मेवाड़ को बगाली बगाल से अधिक अच्छी तरह जानते हैं। मैं एक दूसरे कुल का इतिहास बताऊँगा। जिन दिनों आपके बंगाल में अंग्रेज क्लाइव भारतीय नवाब के सेनापति और सभासदों को फोड़कर प्लासी में नमकहरामी की लड़ाई करने का स्वाँग रच रहा था, उन्हीं दिनों की एक बात बताता हूँ। उन्हीं दिनों दिल्ली के बादशाह का सेनापति सलावतजंग राठौर राजा रामसिंह के साथ लड़ा था। मारवाड़ की मरभूमि की प्रचण्ड गरमी में कुछ घंटों तक लड़ने के बाद ही मुगल सैनिक प्यास से पागल हुए जा रहे थे। लोग सचमुच पागल हुए जा रहे थे। राजपूतों की तरफ़ एक कुआ था, इसलिए उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ़ न थी। जब मुगल बिलकुल परेशान हो गये, तो उन्होंने जाकर राजपूतों से पानी माँगा। इस पर राजपूतों ने क्या किया, मालूम है ?

मैंने प्रशंसा के लहजे में कहा—जी हाँ, मैं समझ गया, उन लोगों ने क्या किया।

अपनी पगड़ी एक बार उतारकर खोपड़ी को थोड़ी देर के लिए हवा खिला कर ठाकुर साहब ने पगड़ी फिर यथास्थान रखी और बोले—मैं जानता हूँ कि आप डी० एल० राय और रमेशचन्द्र दत्त के देश के हैं, इसलिए आप इस बात को समझ गये होंगे, फिर भी बताता हूँ। राजपूतों ने उन्हें पानी दिया। जितना उन्होंने चाहा उतना, फिर बोले—अब लौट जाओ, क्योंकि आज हम लोगों की लड़ाई है।

मैंने सोचा कि इनके साथ घनिष्ठता हो जाय, तो लाभ की सम्भावना है। लाभ यह कि बाहर के लोगों को जो कुछ देखने और सुनने का मौका नहीं मिलता, वह इनके जरिये सम्भव होगा। इसलिए मैंने इनसे सरस सम्बन्ध जोड़ने की चेष्टा की, जिससे इनके और मेरे बीच कोई परदा न रहे।

मैंने कहा—मैंने सैरउल मुताखरीन के मुसलमान लेखक की रचना में यह कहानी पढ़ी थी। सचमुच राजपूत जाति जग से न्यारी है, फिर भी सुनिये मैं आपको जयपुर की नूरजहाँ की कहानी सुनाऊँगा। बड़ी दिलचस्प है।

वह बोले—जयपुर की नूरजहाँ कौसी ? वह तो दिल्ली और आगरे की है, जहाँगीर की नूरजहाँ।

मैंने हैरतूर कहा—मज्जा तो यही है। आप मुझ से जयपुर की नूरजहाँ की

कहानी सुनिये । जानते तो जरूर होंगे, फिर भी सुनिये ।

ठाकुर साहब रसिक व्यक्ति थे, रस की खोज पाकर उनके कान खड़े हो गये, और मेरी तरफ बढ़कर सम्मिलित बैठ गये ।

मैंने कहा—डेढ़ सौ वर्ष पहले जयपुर ने बहुत बुरे दिन देखे थे । पन्द्रह साल तक राजा जगतसिंह जयपुर के सिंहासन पर रहे । कभी किसी राजपूत ने ऐसी वादा-खिलाफ़ी और ऐसा मर्यादा-विरुद्ध काम नहीं किया, जैसा उन्होंने किया । जयपुर का नाम ही झूठा दरबार पड़ गया, क्योंकि राजा कभी अपनी बात नहीं रखते थे । और तो और उन्होंने शरणागतों को भी शत्रुओं के हाथों में सौंप दिया था । और जो कुछ मैं कहने जा रहा हूँ, उसके मुकाबले में जो कुछ मैं कह चुका, वह बहुत फीका पड़ जाता है । इसलिए यह न समझिये कि जगतसिंह की कीर्ति की मैंने जो व्याख्या की, उसी से मेरी कहानी समाप्त हो गई ।

महाराजा साहब तो अपना खजाना खाली कर चुके थे । जयसिंह के सुन्दर शहर की दीवारों को अमीरख़ाँ पिडारी और मराठे लुटेरों के दल ने बार-बार अपवित्र किया था । दरबार पर कभी किसी दर्जी, कभी किसी बनिये, यहाँ तक कि एक खोजे का बोलवाला रहा । जगतसिंह स्वयं अपने रनिवास का सम्मान बिगाड़ने लगे । रसकपूर नाम की एक मुसलमान वेश्या को लेकर महाराज साहब इतनी धीगा-धींगी करने लगे कि वे उसके साथ एक हाथी पर बैठकर नगर का चक्कर लगाया करते थे । अन्त में उन्होंने उस वेश्या को आधे राज्य की अधीश्वरी घोषित कर दिया । यहाँ तक कि उसके रिश्तेदारों की रूपयों की भूख मिटाने के लिए महाराज साहब ने जयसिंह के अद्वितीय पुस्तकालय की पुस्तकों को भी बेच दिया ।

ठाकुर साहब ने कहा—जाने भी दीजिये, ये बातें । हम लोगों में ऐसी लज्जा-जनक बातें बहुत हैं । कम से कम एक बंगाली के मुँह से मैं ये बातें सुनना नहीं चाहता । ठाकुर साहब ने कुछ दुखी होकर यह सब कहा ।

—पर बंगालियों के मुँह से ही आपको इसके काले पहलू की बातें भी सुननी पड़ेंगी । बात यह है कि हम लोग निष्पक्ष होकर राजस्थान को तोलना चाहते हैं । जाने दीजिये उस बात को । बाकी कहानी सुनिये । रसकपूर नूरजहाँ की तरह बहुत सी विद्याओं और राजनीति में पारंगत नहीं थी । जहाँगीर की आत्मजीवनी वाक्यात-ए-जहाँगीरी में लिखा है कि जहाँगीर ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वह अपने हाथ से शिकार नहीं करेंगे, इस पर नूरजहाँ ने पति की बन्दूक से एक शेर को एक ही गोली में डेर कर दिया । यह स्मरण रहे कि साथ के बड़े शिकारी शेर को मार नहीं पाये थे । पर जयपुर की नूरजहाँ ने एक ही शेर मारा था, वह शेर थे महाराजा जगतसिंह ।

रसकपूर के नाम से जयपुर में सिक्के भी चलते थे । पर यह प्रेम इतना

अस्थायी हुआ कि जब महाराजा ने देखा कि अब सिंहासन खोने की नौबत आ चुकी है, तो उन्होंने शत्रुपक्ष के द्वारा लगाये हुए झूठे अपवाद के कारण अपनी चहेती उपरानी को जेल में ठूस दिया, और मौके के अनुसार उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर खजाने में लौटाने से नहीं चूके।

ठाकुर साहब ने आश्चर्य के साथ पूछा — इसके बाद क्या हुआ ?

मैंने कहा—वाकी घटना यो है। वही असली बात है। उन लोगों में से एक साहब, ठाकुर चन्दसिंह ये अपमानकर दृश्य देखना न चाहते थे, इसलिए महाराजा के दरबार में न आया करते थे। उन पर तीन लाख रुपया याने चार साल की मालगुजारी का जुर्माना किया गया। फिर भी वह न झुके।

ठाकुर साहब ने लम्बी साँस लेते हुए कहा — उन दिनों के तीन लाख रुपये ! मजे में इतनी रकम से एक अच्छी-खासी जागीर खरीदी जा सकती थी।

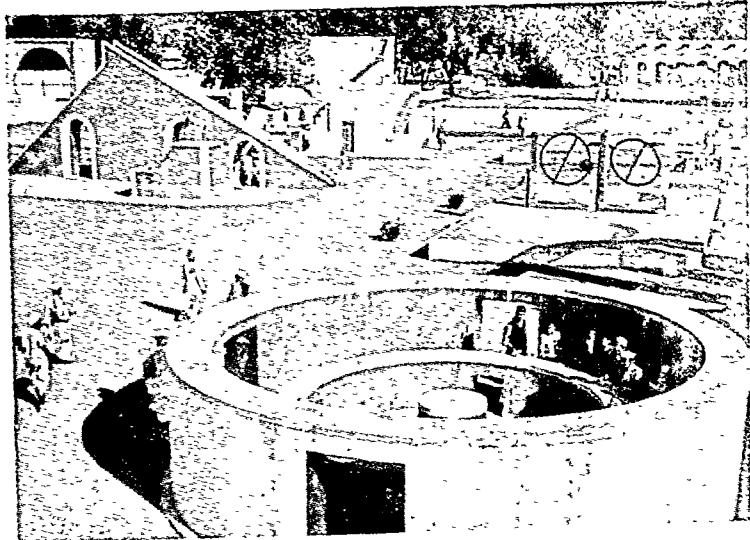
ठाकुर साहब एक बड़े जागीरदार थे, इसलिए मालगुजारी और जागीर की भापा को वे खूब समझते थे। मुझे इस मौके में याद पड़ गया कि कई लोग तो इतने के लिए जान दे देते हैं। हालत तो यह थी कि राज्य के प्रधान मन्त्री ब्राह्मण होकर भी रसकपूर को विटिया कहकर पुकारते थे, और स्वयं महाराजा साहब तो उन्हें पटरानी की इज्जत बख्शते थे, फिर भी साधारण प्रजा इसके विरोध में बराबर आवाज उठाकर जान तक देने में नहीं हिचकती थी।

मैंने कहा—महाराजा साहब जुर्माना करके ही नहीं रुके। वह उससे भी आगे बढ़े। परन्तु मामूली राजपूतों का चरित्र इससे बहुत ऊँचा था। जब उन्होंने देखा कि उनमें महाराजा को रोकने की शक्ति नहीं, तो उनसे किनाराकश हो गये। जय मन्दिर का कोष राजा वुरे कामो में इस प्रकार उड़ा रहा था कि यह हालत देखी न जाती थी। जो लोग वंशपरम्परा से खजाने के सिलेदार (खजाञ्ची) थे, वे बेचारे साधारण कोपागार रक्षक कुछ कह भी न पाते थे, उधर उनसे चुप भी न रहा जाता था। ऐसी स्थिति में एक खजाञ्ची ने आत्महत्या करके आत्मसम्मान की रक्षा की। इस प्रकार एक राजपूत ने अपने प्रभु धर्म की रक्षा की।

ठाकुर साहब खुशी में कह उठे—बिलकुल जापानियों की तरह।

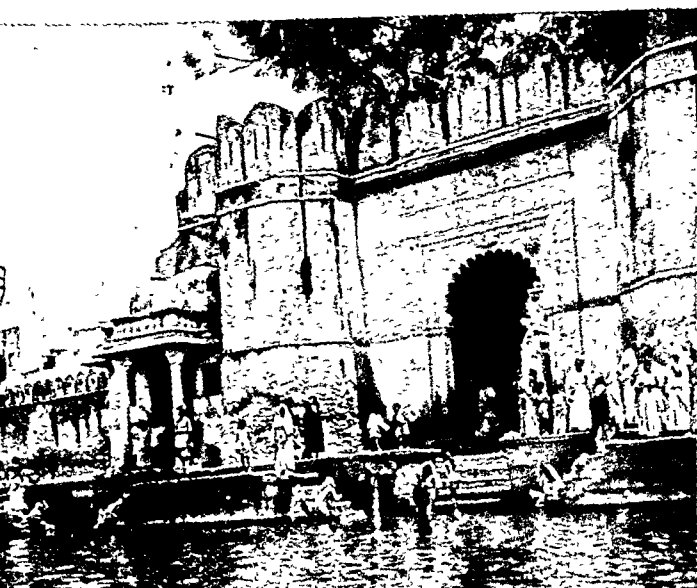
मैंने उनकी खुशी पर ठण्डा पानी डालते हुए कहा—नहीं। कहिए असली राजपूतों की तरह। इसके लिए जापान में जाने की जरूरत क्या है। अपनी ही खोज कर देखिए, गर्व करने तथा लोगों को सिखाने की बहुत सी बातें मिलेंगी। भारत के लिए राजस्थान को खोजिए।

जगतसिंह के समय सभी रजवाड़ों में मराठों की लूट और अत्याचार हो रहा था, यह बात मुझे याद पड़ गई। साथ ही साथ बंगाल में सर्वत्र प्रचलित एक बात



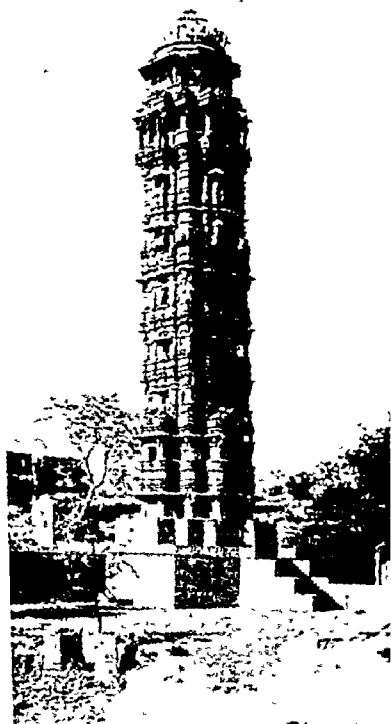
जंतर-मंतर, जयपुर ।

पिशीला भील का स्नान-घाट ।





अतीत की स्मृति



जय-स्तम्भ, चित्तोड ।

याद आ गई कि जन्म, मृत्यु और व्याह, ये तीन विधाता के हाथ में हैं। पर राजा के घर में उत्तराधिकारी होकर पैदा होना कोई मामूली बात थोड़े ही है। उस बेचारे के जीवन के सूत्रपात से लेकर भूमिष्ठ होने तक सारे राज्य में उथल-पुथल मची रहती है। जिन राज्यों में अब भी राजा मुकुट लगाकर चल सकते हैं, वहाँ उत्तराधिकारी होकर पैदा होना बहुत बड़ी बात है।

इसी जगतसिंह के जयपुर में एक उथल-पुथल करने वाली घटना हुई। राजा की सोलह व्याही हुई रानियाँ थी, परन्तु औरस सन्तान एक भी नहीं थी। इसलिए जब महाराजा साहब मरे, तो जहाँ एक ओर प्रभुभवत राजपूतों ने शान्ति की साँस ली, वहीं एक विपत्ति हटी, तो दूसरी विपत्ति आ गई क्योंकि राजा मर गये, पर राजपद तो नहीं गया।

जगतसिंह के मरने के बाद अन्तःपुर का प्रधान खोजा मोहन नाजिर राज-काज चलाता था। वह जैसा विचक्षण बुद्धिमान था, वैसा ही धोखाघड़ी में नम्बरी उस्ताद। उसने सोचा कि जब राजा साहब एकाएक मर गये, तो उनकी जगह ऐसे व्यक्ति को बैठाया जाय, जिसकी नावालगी बहुत दिनों तक बनी रहे, और इस बीच अपना शासन चलता रहे। गद्दी के दावेदारों की संख्या बहुत थी।

राजा की मृत्यु के दूसरे ही दिन मोहन नाजिर ने मानो अपनी जेब से मोहनसिंह नाम के एक नौ वर्ष के लड़के को निकाला। वह लड़का मोहन नाजिर का हमनाम था, इसीलिए उसे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ, ऐसी बात नहीं। यद्यपि सौ वर्ष पहले जयपुर में यह बात भी असम्भव न थी। प्रचलित रीति के अनुसार अम्बर राजवंश की बारह 'रजावत' शाखाओं में से किसी एक से चुन लेना यथेष्ट था। पर इसमें असुविधा थी। इसलिए ठीक चौदह पीढ़ी पहले का सम्बन्ध निकालकर इस मोहनसिंह को जगतसिंह का दाह-संस्कार करने के लिए सूर्यरथ में चढ़ाकर जुलूस के साथ ले जाया गया।

कहते हैं कि पुरुषों में नाई सबसे अधिक चालाक होता है। पर ये नाई भी नाजिर से बहुत कुछ यहाँ तक कि राजनीति तक सीख सकते थे। अम्बर के बारह सरदारों में जो सबसे अधिक शक्तिशाली थे, उन्होंने जगतसिंह के जमाने में ही महाराजा की निजी जमींदारी में से एक बड़ा अंश हथिया लिया था। इसलिए उन्होंने सोचा कि नाजिर के गुट में रहने से कोई उनकी उस सम्पत्ति को लौटाने का नाम तक न लेगा। इसलिए उन्होंने नाजिर के साथ चोर-चोर मीसेरे भाई का रिश्ता जोड़ा।

इतना ही नहीं, पुरोहित, कुलगुरु, धर्मभाई ये सब नाजिर के पक्ष में हो गये। यदि रजावतों में से कोई राजा चुनकर आता, तो इन लोगों की मिट्टीपलीत होती थी। सम्भव है कि नये राजा अपने नये मंत्री नियुक्त करते, और साथ ही नया गुरु,

पुरोहित, धर्मभाई, सभा-परिषद् चुना जाती । इससे अच्छा तो यही था कि मोहन नाज़िर के द्वारा चुना हुआ नावालिग लड़का ही राजा बने ।

जिन सरदारों के बल पर अकबर के समय से लेकर श्रीरंगजेब के वंशधरों के समय तक राजा मानसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह, सवाई राजा जयसिंह भुगल साम्राज्य के स्तम्भ प्रमाणित हुए थे, उन सरदार वंशों में से केवल एक की ही सलाह ली गई, और जिसकी सलाह ली गई, वह बड़ा ही धोखेबाज था । रानियों को भी कानोंकान खबर न हो पायी । अभी इमशान का त्रिया-कर्म समाप्त हुआ ही था कि उस नावालिग का नाम द्वितीय मानसिंह रखा गया, और मोहन नाज़िर जयपुर-दरबार में उपस्थित अन्य राजाओं के प्रतिनिधियों से नये राजा को मनवाने की चेष्टा करने लगा । वह करीब-करीब सफल भी हो गया था । उस समय कलकत्ता में ब्रिटिश सत्ता थी । दिल्ली के ब्रिटिश एजेंट और कलकत्ते की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उस नावालिग को राजा मान लिया । जयपुर में दूसरे राजाओं के जो प्रतिनिधि थे, उन्होंने भी एक तरह से नये राजा को स्वीकार कर लिया ।

पर इसको स्वीकार नहीं किया तो एक राजपूतानी ने—पद्मिनी और कर्मदेवी के देश राजपूताने की एक रानी ने । वह थी जगतसिंह की रानी और जोधपुर के महाराजा की वहन । उसने राजा के इस चुनाव को नहीं माना । जब चिनगारी का पता लगा, तो हवा भी तेज़ी से चलने लगी । जयपुर के जनमत ने सिर उठाया और सरदार लोग भी वस्तुस्थिति पर फिर से विचार करने के लिए सम्मिलित हो बैठ गये ।

मोहन नाज़िर ने जब यह रंग देखा तो उसने एक बहुत अच्छी चाल चली । राजपूतों में मेवाड़ के राना ही सम्मान और प्रताप में सबने ऊँचे माने जाते थे । बारह साल पहले जयपुर के महाराजा की वहन के साथ शादी की बातचीत हुई थी । अब यदि राणा को ऐसी शादी का लोभ दिखाया जाय, जिसमें उन्हें दहेज में लाखों की प्राप्ति होगी, और साथ ही बड़ी शान-शौकत रहेगी, और वे इसमें फँसकर शादी करने आवें, तो जयपुर के सब सरदारों को उनका स्वागत करना पड़ेगा । इस प्रकार एक पंथ दो काज हो जायेंगे, साँप भी मरेगा और लाठी भी न टूटेगी ।

पर इसी बीच यह खबर लगी कि जगतसिंह की एक रानी को गर्भ है । किसी ने प्रश्न नहीं किया कि राजा के मर जाने के तान महीने बाद तक ऐसा सुख का समाचार गुप्त कैसे रहा । खासकर जब राजा के निपूत मरने के कारण ही यह सारी गड़बड़ी थी, तो यह खबर छिपी क्यों रही ? फिर वह ज़माना भी ऐसा था कि राजाओं और बड़े घरों की जरा-जरा-सी बातें लोगों की बातचीत का विषय बनी रहती थी । ताज्जुब इसलिए और भी था कि मोहन नाज़िर स्वयं ही रनिवास का धान खोजा और कन्ट्रोलर ऑव हाउस-होल्ड था ।

इसीलिए मामले की जाँच करना जरूरी समझा गया। सोलह विधवा रानियाँ और सब सरदारों की स्त्रियाँ मिलकर इस बात की जाँच करने लगीं कि आखिर बात क्या है ? ड्योढ़ी के बाहर सरदार लोग इस जाँच के फल की प्रतीक्षा करने लगे। चार घण्टे तक जाँच की कार्रवाई जारी रही, और इसके बाद यह निस्सन्देह राय दी गई कि रानी गर्भवती है, और सब ने यह लिखकर दे दिया कि यदि कोई लड़का पैदा हो, तो वही तख्त-ताज का मालिक होगा।

साथ ही एक और विधवा रानी ने अपने को गर्भवती घोषित किया, पर उसकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। बात यह है कि करिश्मा सिर्फ एक ही बार चलता है।

यथासमय राजकुमार उत्पन्न हुआ, और उसने रजवाड़े के सबसे धनी वंश के सम्मान की रक्षा की। नावालिग मोहनसिंह सिंहासन छोड़कर कहाँ भागा, यह किसी को पता नहीं लगा।

यह रही हितोपदेश के रंगे सियार की कहानी।

कृष्णकुमारी की कहानी

यहाँ एक राजकुमारी की कहानी के साथ मेरी राजस्थान-भ्रमण की कहानी जुड़ गई। उस राजकुमारी के हाथ में जूहर का प्याला था, पर उसके चारों तरफ़ वीरो की एक टोली इस आशा से खड़ी थी कि वह जूहर श्रमृत में परिणत हो जायगा। राजकन्या के आत्महत्या किये बिना इन लोगों को छुटकारा नहीं मिलता।

यदि महावीर राजपूत राजाओं की ऐसी ही गिरी हुई हालत थी, तो इनको तथा दूसरे राजाओं की नवीन भारत के साथ जोड़ लेने के लिए इतनी व्याकुलता क्यों थी? क्यों सारा भारत आग्रह के साथ देख रहा था कि रजवाड़ों वाला भारत किस करवट बैठता है? आसमुद्र हिमाचल सारे भारत को एक देखने के लिए सुदूर बंगाल से कन्याकुमारी तक लोग क्यों लालायित हो रहे थे?

क्या यह केवल भूगोल का प्रश्न था?

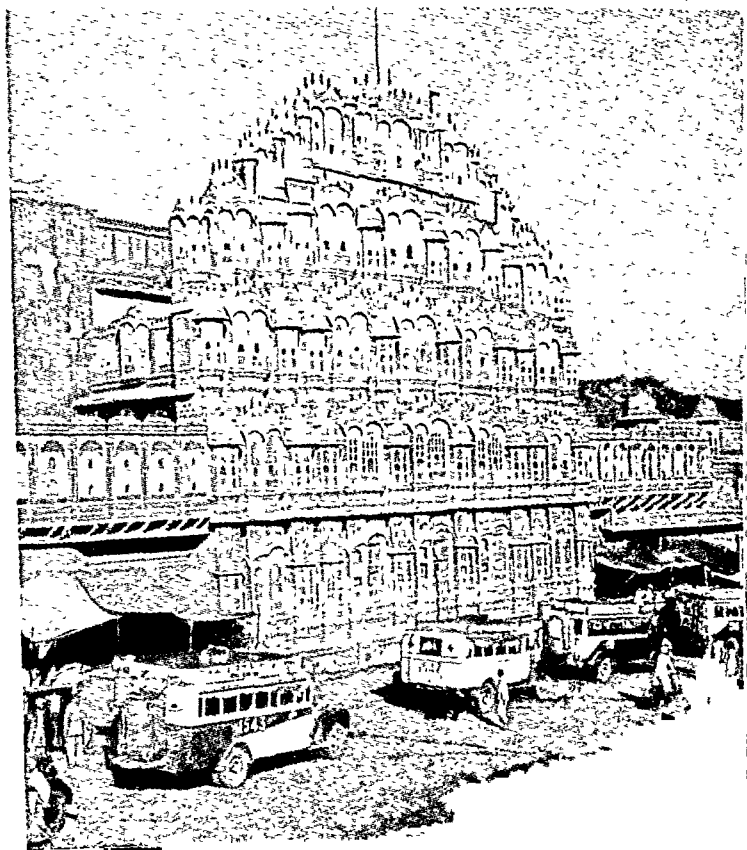
या यह इतिहास का खेल था?

या यह राजनीति का नशा था?

इसका उत्तर लॉर्ड वेलिंगटन दे गये हैं, जिनको इंग्लैण्ड के इतिहास में लौह-इयूक, नेपोलियन विजयी वीर कहा गया है। उन दिनों वे उतने विख्यात नहीं थे, फिर भी सैनिक कौशल के लिए उसी समय प्रसिद्ध हो गये थे। इस देश में बहुत से देशी राजाओं से हुए युद्धों में उनकी आधुनिक रणनीति प्रमाणित हो चुकी थी।

उन्होंने अपने बड़े भाई, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने के वायसराय लॉर्ड वेल्लेस्ली को एक पत्र में लिखा था कि राजपूत शक्ति का अस्तित्व ऐसी बात है, जिसके कारण उत्तरी-पश्चिमी सरहद सबसे अधिक सुरक्षित रहेगी।

राजपूतों को पृथक्-पृथक् देखने से इनमें से किसी में भी विशेष दमन न था। अब भी नहीं है। पर इन सबको एकत्र कर लेने पर राजस्थान महाशक्ति में परिणत हो सकता है, इसे न केवल बुद्धिमान अंग्रेज समझते थे, बल्कि हमारे यहाँ के उन दिनों के नेता भी समझते थे। उन दिनों देशी शक्तियों में मराठों का ही सबसे ऊँचा स्थान था। वे इस बात की जी-जान से कोशिश कर रहे थे कि कम-से-कम जयपुर, जोधपुर और उदयपुर ये तीन राज्य एक साथ मिलकर नवोदित ब्रिटिश शक्ति का सामना करें। उधर अंग्रेज भी बार-बार यही चेष्टा कर रहे थे। दोनों पक्ष समान रूप से राजपूतों पर दबाव डाल रहे थे। शतरज की इन चालों के मारे राजपूताने की नाक में दम था।



हवा महल, जयपुर ।



गणगीर-उत्सव ।

राजस्थानी किसान प्रसन्न मुद्रा में ।



केवल राजाओं का ही नातका बंद हो रहा था, ऐसी बात नहीं, प्रजा भी परेशान थी ।

बंगाल में मरहठों के अत्याचार की पुरानी गाथाओं को लोरी के रूप में सुनाकर अब भी बच्चों को सुलाया जाता है । पर जिस युग में यह अत्याचार हो रहा था, उस युग में किसी की आँखों में नींद न थी ।

खोका धुमालो, पाड़ा जुड़ालो, वर्गी एलो देशे ।

बुलबुली ते धान खेयेचे खाजना देवो किसे ?

(यानी बच्चा सो गया, मोहल्ला शान्त हो गया, और मराठे चौथ बसूल करने आ गये । बुलबुल धान खा गई, अब लगान कहाँ से दिया जाय ?)

कहाँ से, इस प्रश्न के उत्तर की मराठे घुड़सवार प्रतीक्षा न करते थे । वे तलवार की नोक पर इसका उत्तर देते थे, और कभी-कभी सब प्रश्नों का कन्त पूरे गाँव को अग्निदेव को सौंपकर चले जाते थे ।

पानीपत की तीसरी लड़ाई से भी मराठों ने कोई सबक नहीं सीखा । उनकी राष्ट्रशक्ति समाप्त हो गई, पर लूट-खसोट के प्रति उनकी भक्ति बढ़ गई । शक्ति चली गई, पर लोगों की हानि-पहुँचाने की सामर्थ्य बढ़ गई । राज्य गया, पर उपराजाओं की कमी नहीं हुई । उपदेवताओं के उपद्रव से सारा देश हाहाकार करने लगा ।

मनुष्य के इस जीवित श्राद्ध में पिंडत्व करने के लिए पिंडारी आते थे । इन लोगों का न तो कोई देश था, न जाति ही और न कोई नीति । इनका धर्म लूट-खसोट था, और इनके लिए अत्याचार करना मानो मोक्ष का मार्ग था । वेतनभोगी लुटेरे सिपाही बने थे और डाके डालते थे । जब सिपाहियों को वेतन देने के लिए पैसे नहीं होते थे, तब उनके सरदार लूट-खसोट की स्वतन्त्रता दे देते थे । जब सिपाहियों का वेतन बसूल हो जाता था, तब सरदारों की बारी आती थी, और वे लूटना शुरू करते थे ।

इनकी तुलना में तैमूर और नादिरशाह के सिपाही शरीरफ्र थे, क्योंकि वे एक बार लूट-खसोटकर तथा लोगों को मार-मूरकर अपने पीछे मुखमरी और अग्निकाण्ड छोड़कर चल तो देते थे, पर ये पिंडारी इसी देश के थे इसलिए जाते तो कहाँ जाते ? उनका फेरा अक्सर होता रहता ।

विदेश से आये आक्रमणकारी अज्ञात देश में आकर युद्ध करते । उसमें जीतने के बाद धन लूटते और स्त्रियों तथा कलाकारों को गुलाम बनाकर ले जाते थे, पर पिंडारी तो मनुष्य को खाने वाले बाघ की तरह थे । वे जहाँ इन्सान के खून का स्वाद पा जाते, वहीं डटे रहते । वहाँ से फिर टलने का नाम न लेते । वे बाघ से भी खराब थे, क्योंकि वे सब कुछ डकार जाते थे । उनकी नयी-नयी माँगें अत्याचार के नित नये

हथकण्ठे हो। राजा और प्रजा दोनों का समान रूप में शोषण करते थे।

कोई उह भी यों पहले मध्य और पश्चिम भारत में सबसे शक्तिशाली व्यक्ति पिछारी सरदार श्रीमौरा था। श्रीमौरा की लूट-खसोट का इतिहास ही उस समय के राजस्थान और मध्यभारत का इतिहास था।

कहने के लिए होल्कर राजा थे, पर असली शासक वही था। वह सिन्धिया ने अधिक ताकत रखता था। जोधपुर के राजा और भूपाल के नवाब उसकी मुट्ठी में थे, और जयपुर तथा उदयपुर ने वह बराबर कभी इस बहाने, कभी उस बहाने लाखों रुपये मांगता और वसूल करता था।

सबसे बड़ी बात यह कि भारत के सबसे सभ्रान्त वंश, श्री रामचन्द्र के मूर्खवंश की सन्तान मेवाड़ के महाराणा की कन्या का विवाह किसके साथ हो, इसका निर्णय भी इसी पिछारी श्रीमौरा ने किया था। उसने हुक्म दिया कि या तो कृष्णकुमारी को उसके कठपुतले, जोधपुर के महाराजा के साथ शादी करनी पड़ेगी, या जहर खाकर आत्महत्या करनी होगी। यह रूपवती कन्या उन्नीसोंदिया कुल की राजकुमारी थी, जिसके पूर्वज महाराणा प्रताप ने जयपुर के राजा मानसिंह के साथ इसलिए खाने से इन्कार किया था कि उन्होंने अपनी बहन मुगल सम्राट के साथ व्याह दी थी। यह वही वंश था, जिसकी वीर नारियों ने बार-बार जोहर कर शत्रु को अंगूठा दिखाकर हँसते-हँसते इस लोक से विदा ली थी।

उसी महावश की राजकुमारी को जहर का घूंट पीना पड़ा, और यह घूंट सारे राजस्थान के शरीर में फैल गया। यह जहर आपसी फूट और भाई-भाई में लड़ाई का जहर था। कमजोरी और असहायता का जहर था। उन दिनों जयपुर की दशा बहुत गिरी हुई थी।

सिन्धिया और होल्कर दोनों मराठे थे। ब्रिटिश शक्ति दोनों को हटाकर उनके राज्यों को अपने में मिला लेना चाहती थी, इसमें सन्देह न था; पर इस सम्भावना के बावजूद क्या वे एक दूसरे से या अन्य राजाओं से मिलकर अपने उभय शत्रु के विरुद्ध कमर कसकर खड़े हो सकते थे ?

नहीं, भारत के इतिहास में ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं मिलता। यह सिर्फ आज की बात है कि हम एकमन और एकप्राण होकर अपने को भारत माता की सन्तान समझने लगे हैं।

इसी कारण सिन्धिया और होल्कर दोनों बारी-बारी से जयपुर को घमकाते और लूटते थे। जब बार-बार की लूट-खसोट के कारण जयपुर तबाह होगया, तो उसने इन आक्रमणकारियों के विरुद्ध ईस्ट इण्डिया कंपनी से सन्धि कर ली।

शिकार हाथ से निकल रहा है, देखकर होल्कर ने धमकी दी—ठहरो, अंग्रेजों

के साथ सन्धि करने का मजा अभी तुम्हें चखाते हैं । जयपुर को हम ऐसा बरवाद कर देंगे कि अंग्रेज उधर मुंह घुमाकर भी न देखेंगे ।

डरकर जयपुर ने ब्रिटिश रेसिडेंट से सहायता मांगी, पर रेसिडेंट ने होल्कर को धमकी की बात पर विश्वास तो किया नहीं, उलटे यह शिकायत जड़ दी कि जोधपुर, जयपुर और उदयपुर या मेवाड़ ये तीनों मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे हैं । इस बीच होल्कर की सेनायें जयपुर राज्य के अन्दर दाखिल होकर अपने लिए रसद एकत्र करने लगी थीं ।

पर जयपुर के राजा को इस बात की परवाह नहीं थी, और इस बात से उसके कानो में जूँ तक नहीं रेंगी । अपना राज्य मराठों के चंगुल से कैसे बचे, इस सम्बन्ध में कुछ भी फ़िक्र न करते हुए जयपुर की सेनायें उन दिनों उदयपुर की नाक पर इस कारण बैठी हुई थीं कि कहीं कृष्णकुमारी हाथ से न निकल जाय । सेनाओं ने जवर्दस्ती शादी से पहले का उपहार मेवाड़ के महाराणा को भेंट किया, और उनको इसे स्वीकार भी करना पड़ा ।

इससे महाराणा को कुछ आंशिक सुविधा हुई; ऐसी बात नहीं क्योंकि उसी समय सिन्धिया ने महाराणा से सोलह लाख रुपये वसूल किये थे । वहाने की कमी न थी । वहाना यह था कि महाराणा ने होल्कर का आश्रय लिया, इसलिए सिन्धिया को दुःख हुआ और वह महाराणा को आश्रय देने के लिए आगे बढ़ आये । साथ इन बदमाश जयपुर वालों के हाथ से कृष्णकुमारी को बचाने की हार्दिक शुभेच्छा भी है । ऐसी दशा में महाराणा को दोस्ती का मूल्य तो चुकाना ही पड़ता और वह मूल्य सोलह लाख कूता गया !

राजकुमारी के अपमान का अन्त यहीं नहीं हुआ । सिन्धिया ने प्रस्ताव रखा कि उदयपुर को जोधपुर और जयपुर की गड़बड़ में पड़ने की जरूरत नहीं । सब समस्याओं का समाधान करने के लिए सिन्धिया स्वयं राजकुमारी से शादी करना चाहते हैं ।

सूर्यवंश की कन्या, महाराणा प्रताप के वंश की कन्या, कृष्णकुमारी, और उसकी शादी किससे होगी ? किसान के बेटे सिन्धिया से ?

महाराणा के महल में दरवाजा बन्द कर सभी याद करने लगे कि कई पीढ़ी पहले सिन्धिया के पुरखों के हाथों में जो चीज शोभा पाती थी, वह राजदण्ड न था, यहाँ तक कि साधारण तलवार भी न थी, बल्कि हल की मूठ और भैंस की रस्सी थी ।

इधर कम्पनी जयपुर से शिकायत करने लगी कि वह सन्धि के अनुसार मराठों के विरुद्ध सैनिक-सहायता नहीं दे रहा ।

दूसरी तरफ़ जयपुर की सेना उदयपुर की छाती पर डटी रहने के कारण

लूट-खसोट करने में असुविधा हो रही थी, इसलिए सिन्धिया ने कम्पनी को लिखा कि वह अपने मित्र जयपुर पर इस बात का दवाव डाले कि वह अपनी सेना हटा ले, नहीं तो उदयपुर के बदले मराठों का क्रोध जयपुर पर पड़ेगा और जयपुर बरबाद कर दिया जायगा।

अन्त में सिन्धिया ने लड़ाई कर जयपुर की सेना को उदयपुर से भगा दिया। तिलक तो हो चुका था, पर व्याह न हो सका। शंखों के बदले तोपों की गड़गड़ाहट से वे विदा किये गये। उन दिनों के राजस्थान में न केवल राजनैतिक कमजोरी थी, बल्कि नैतिक निर्लज्जता की भी कोई सीमा न थी।

पर युद्ध करने का साहस नहीं था, तो इसीलिए व्याह करने के उत्साह में कमी क्यों होगी? इस घटना के सौ वर्ष बाद क्या हम यह नहीं देख रहे हैं कि स्त्री के भरण-पोषण की सामर्थ्य न रहने पर भी लोगों में व्याह के उत्साह में कोई कमी नहीं है?

उदयपुर से जयपुर की सेना जब भाग आई, तो जयपुर ने अपनी मित्रशक्ति, कम्पनी को यह सन्देश भेजा कि अब कम्पनी सिन्धिया पर यह दवाव डाले कि जगतसिंह और कृष्णकुमारी में शादी हो जाय। शुभ कार्य में देरी न करनी चाहिये, शास्त्र का यह निर्देश याद कर जयपुर ने लिखा कि आगामी वसन्त काल से लेकर वर्षा ऋतु के आरम्भ तक शुभ कार्य हो जाना चाहिए।

कम्पनी राजनैतिक बातों में होशियार थी। उसने न रोगी को मारा, न रोग को, सिर हिलाकर सिर्फ इतना कह दिया कि अभी ऐसे कामों के लिए समय नहीं।

इधर जोधपुर के महाराजा मानसिंह की हालत भी उसी प्रकार शोचनीय हो रही थी। सरदारों के साथ पड़्यंत्र करके सिंहासन पर अधिकार जमा पाने पर भी उनका रास्ता निष्कण्टक नहीं था। जयपुर-महाराज के गुट में ही सिंहासन के एक और दावेदार थे, और उदयपुर में अपमानित होने के बाद जयपुर के महाराज एक बड़ी सेना तथा इस दावेदार को लेकर मारवाड़ की तरफ चले। कहते हैं कि सम्राट् औरंगजेब की मृत्यु के बाद किसी राजपूत राजा ने इतनी बड़ी सेना एकत्र नहीं की थी। पर उद्देश्य कितना छोटा और साधारण था, इसका ध्यान आने मात्र से लज्जा से सिर झुक जाता है।

प्रचण्ड संग्राम हुआ। बहुत दिनों तक लड़ाई चलती रही। राजा ने जोधपुर दुर्ग के अन्दर छिपकर अपनी इज्जत बचाई, पर अन्त तक राजा जगतसिंह को ही किसी तरह जान लेकर भागना पड़ा। कम्पनी बहुत दिनों से ही यह कहती आ रही थी कि जयपुर और जोधपुर या तो समझौता कर लें, या वे कम्पनी के बीच-बचाव को मान लें। अन्त तक इस मामले में कुछ न होता देख कम्पनी दम दवाकर खिसक

गई, और उसने यह कहकर सन्धि तोड़ दी कि वह इस पारिवारिक और व्यक्तिगत झगड़े में अपने को फँसाना उचित नहीं समझती।

मानसिंह ने अब एक ऐसा कुकर्म किया जिससे उसे कोई भी यहाँ तक कि उसके हमप्याला, हमनेवाला भी उसे शरीफ़ नहीं मान सकते। उसने पठान सरदार अमीरखाँ को रिश्तत में बड़ी रकम देकर उससे यह वायदा कराया कि वह सिंहासन के दूसरे दावेदार को ख़त्म कर देगा। पिंडारी सरदार ने उसके साथ मित्रता करके पीर की दरगाह में जाकर मित्रता के प्रमाण के रूप में पगड़ी बदली और यह प्रतिज्ञा की कि जोधपुर की गद्दी में उसी को बैठाया जायगा। इसके बाद दरगाह के सामने अपनी शक्ति बढ़ाने के उपलक्ष में दोनों ने उत्सव मनाया, मुजरा होने लगा तथा शराबें चलने लगीं। इसी समय पिंडारियों ने तम्बू की रस्सियाँ काट दी। नतीजा यह हुआ कि सब राजपूत तम्बू के अन्दर फँस गये। इसके बाद गोली बरसाकर सब मामला ठण्डा कर दिया गया।

पर क्या इससे खून की प्यास बुझी ?

नहीं। ज़हर का जो धुआँ सारे राजस्थान में फैल गया था, उसकी हवा बाहरी जगत् में न केवल राजाओं, सैनिकों और सामन्तों तक फैली, बल्कि और भी आगे बढ़ी। माता के मन्दिर की धूप की सुगन्ध अभी भी चारों तरफ़ फैली हुई थी। यदि उसे दवा न दिया, तो ज़हर की सफलता क्या ?

इस बीच जयपुर जोधपुर के साथ लड़ते-लड़ते थककर होल्कर की शरण में गया। पर राम या रावण किसी को तो मरना ही था। दुर्भाग्य की बात यह थी कि यहाँ राम कोई न था; दोनों पक्ष रावण थे।

होल्कर की शरण में जाने के कारण सिन्धिया ने क्रुद्ध होकर जयपुर पर आक्रमण किया, और उसे एकदम बरबाद कर दिया। सिन्धिया के शिविर में बैठकर एक अंग्रेज़ दूत ने इस बरबादी का वर्णन यों लिखा था—सब फसलें नष्ट कर दी गई हैं। मकानों की धनियाँ और कड़ियाँ तक उखाड़ ली गई हैं। दरवाजे और चौखटें भी नदारद हैं। गाँवों के ध्वसावशेष से धुआँ ही धुआँ उठ रहा है।

ज़हर का धुआँ।

मौका जानकर वाज की तरह झपट्टा मारकर पिंडारी सरदार उतर आया। जयपुर ने १५ लाख रुपये देकर सिन्धिया को शान्त किया था। अब पिंडारी को शान्त करने के लिए क्या किया जाय ? अब बाकी ही क्या था ?

स्वयं अमीरखाँ भी उस समय कौड़ी-कौड़ी को मुहताज हो रहा था। अपने किराये के लुटेरों को नियमित रूप से वेतन न दे पाता था, इसलिए वे उसे रोज़ धूप में भूखों खड़ा रखते थे, और जयपुर शहर की दीवार के बाहर तम्बू के बाहर लाकर

उसका दूरी तरह अपमान करते थे। दीवार की उस तरफ से यह तमाशा दिखलाई पड़ता था। फिर भी जयपुर वाले इतने असहाय थे कि जयपुर-महाराज को यह वायदा करना पड़ा कि वे अमीरख़ाँ को १६ लाख का नजराना और देंगे।

अब तो पठान की हिम्मत बढ़ गई। उसने उदयपुर में आकर कृष्णकुमारी का भविष्य क्या होगा, इस सम्बन्ध में महाराजा को हुक्म भेजा। या तो उसके आश्रित राजा मानसिंह से शादी करनी पड़ेगी, नहीं तो षोडशी रूपवती राजकुमारी को दुनिया में विदा होना पड़ेगा।

नहीं तो ?

नहीं तो एक राजकुमारी की इज्जत के एवज में सब पुरनारियों की इज्जत भी जायगी। इसका साफ मतलब था कि लम्पट पठान पिंडारी राजा के अन्तःपुर में घुसने को तैयार थे।

रजवाड़े में रावाला या राजा का अन्तःपुर एक अलग ही दुनिया होती है। वहाँ अज्ञात गलियों के रास्ते, असंख्य सुरंगों से होकर बराबर पड़्यंत्र होता रहता है। उसी में इस कहानी का असली सूत्र खो गया। पर इतना निश्चित है कि एक भी वीर पुरुष मारे लाज के नारो-हत्या करने का साहस न कर सका। परन्तु बाप-दादों के सम्मान की रक्षा के लिए आपसी झगड़े को भूलकर शत्रु का सामना करने के लिए आगे भी न आ सका। सिर नीचा करके हट भर गया।

महाराजा के चचेरे भाई उस जीभ को कोसते-कोसते हट गये, जिसने इस प्रकार का हुक्म सुनाया था। कृष्णकुमारी का अपना भाई मृत्यु-दण्ड को कार्यरूप में परिणित करने के लिए इस नाते राजी हुआ कि राजकुमारी की हत्या केवल राजा या राजवंश के हाथ से ही हो सकती है। वह तलवार लेकर आगे बढ़ा, पर उसकी आँखों के सामने स्वर्ग का एक अकलंक चित्र आ गया और तलवार हाथ से छूटकर राजकुमारी के पैरों के पास गिर पड़ी।

पर राजकुमारी के माथे पर शिकन तक न पड़ी। सामने पेशोला भील का पानी हिलोरें लेने लगा। महारानी अपनी कन्या को बचाने की सामर्थ्य नहीं रखती थी। वे रोने लगी।

इसी बीच जब पुरनारियों ने यह देखा कि कोई वीर पुरुष राजकुमारी की हत्या के लिए तैयार नहीं, तो उन लोगों ने ज़हर घोटकर राजकुमारी के सामने पेश किया। उन्हें बताया गया कि यह पात्र उनके पिता की तरफ से भेंट आया है। राजकुमारी ने सिर नीचा करके पिता के दीर्घ जीवन और संपृद्धि की प्रार्थना करते हुए उन्हें अन्तिम प्रणाम किया, और एक ही घूंट में ज़हर का प्याला पी गई।

उसकी आँखों से एक आंसू भी नहीं गिरा। सिर के अन्दर विष की क्रिया

शुरू हो चुकी थी, फिर भी राजकुमारी ने अपनी माता महारानी से कहा—माँ ! रोओ मत, क्या मैं मरने से डरती हूँ ? क्या मैं तुम्हारी कन्या नहीं हूँ ? मैं क्यों डरूँगी ? जन्म से ही हम लोग आत्मविसर्जन के लिए तैयार होती हैं । बाहर जाने के लिए ही तो हमारा जन्म होता है । मैं इतने दिन जीवित रही, इसके लिए पिता जी को धन्यवाद !

उस समय भी वह मरी नहीं, यह देखकर जहर का एक और प्याला लाया गया । फिर भी कोई नतीजा नहीं हुआ । फिर एक प्याला आया । फिर भी राजकुमारी के जीवन का दीया बुझा नहीं । दुर्योधन की राजसभा में द्रोपदी का चीर इसी प्रकार समाप्त नहीं हो रहा था । दुःशासन उसे जितना ही खींचता था, वह उतना ही बढ़ता जाता था । क्या श्रीकृष्ण आज भी कृष्णकुमारी की बगल में आकर खड़े हो गये थे ? सब लज्जा, सब दुःख की अन्तिम शरण श्री हरि ।

इधर खून का प्याला पिडारी सरदार और प्रतीक्षा करने के लिए तैयार न था । राजमहल के सामने ही नंगी तलवारें और भरी बन्दूकें लिये पिडारियों का भुँड खड़ा था । लालसा ने उस समय लूट-खसोट की प्रवृत्ति की आग में घी का काम करना शुरू किया था ।

फिर जल्दी-जल्दी एक प्याला आया । कुसुम फूल और उसकी जड़ का रस । स्निग्ध शान्ति के साथ हँसती हुई लुढ़क पड़ी राजकुमारी; कहती गई—अब इसका अन्त हो, अन्त हो ।

राजपूत चारणों ने इस घटना का वर्णन करते हुए भापा के उच्छ्वास तथा रंग की पच्चीकारी छोड़कर इतना ही कहा है—उसे नींद आ गई ।

×

×

×

कृष्णकुमारी के हलाहल पीने से राजस्थान नीलकण्ठ तो हो गया, पर क्या अब इसके बाद आपसी मेल के अमृत को पीने का समय आ गया ?

उस समय राजस्थान छोटे-छोटे कमजोर राज्यों में बँटा हुआ था । इसलिए वह छोटे-छोटे मराठे और पिडारी सरदारों का लूटपाट के विरुद्ध खड़ा नहीं हो सका । अब सौ साल बाद सारा देश चिल्ला-चिल्लाकर उससे यही कह रहा है कि वह आपसी भगड़ो को भुलाकर एक हो जाय । जनता की यही पुकार है । क्या राजा इसको मानेंगे ।

चन्द्रमहल के दुर्मांजिले पर जयपुर के पहले के महाराजाओं के तैलचित्र सजीव होकर ताक रहे हैं ।

बाहर, अलकतरा लगी चिकनी सड़क पर एक जुलूस जा रहा है, यह राजस्थान की जनता का जुलूस है । वे राष्ट्रीय तिरंगे भंडे को उड़ाकर इस बात की माँग कर

रहे हैं कि रजवाड़े भारत के साथ एक हो जायें। अब तक अपने देश के इतिहास के निर्माण में उनका कोई हाथ नहीं था। वे अब तक पिंडारियों और मराठों की लूट-खसोट को सहने, ब्रिटिश रेसिडेंसी का कठोर दवाव भेलने और अंग्रेजों की छत्रछाया में पलने वाले दरबार के विलास-व्यसन का खर्च उठाने के लिए था। दूसरी किसी बात में उनकी कभी कोई पूछ नहीं होती थी।

जब राजपूत जान हथेली में लेकर युद्धक्षेत्र में कूदते थे, तब केसरिया बाना पहनते थे। यह रंग वही था जो संसारत्यागी सन्यासियों का है। उनके उस जर्द बाने को देखकर ही गन्धर्व समझ जाता था कि वे 'करेंगे या मरेंगे' की सौगन्ध खाकर युद्धक्षेत्र में उतरे हैं। आज वे ही राजपूत सफेद गांधी टोपी सिर पर रखकर नये ढंग की लड़ाई में उतरे हैं।

आई महाजन्म की वेला !



राजस्थानी चारण ।



शाही वारात का जलूस ।



दो राजपूत वीर ।

राजअतिथि

पिछले जन्म की कुछ चर्चा अप्रासंगिक न होगी। उस जन्म या उस युग में राजाओं और सामन्तों की भीतरी कहानी में राज्य की प्रजा का कोई हाथ न होता था। उसका उतना भी हाथ नहीं होता था, जितना दूर पेड़ों पर चढ़कर फुटबॉल का मैच देखने वालों का खेल में होता है।

भीतर जो कुछ होता था, उसका परदा केवल पाश्चात्य राजपुरुषों या राजगोष्ठी के दर्शकों के लिए उठाया जाता था। जो देशी दर्शक रहते थे, वे स्वगोत्रीय राजे-महाराजे, सभाभद या विशेष रूप से अनुग्रहप्राप्त चन्द लोग होते थे। चन्द लोग भी ऐसे होते थे, जिनकी आँखें अतिथियों पर, हाथ रंगमंच की ड्रापसीन खींचने वाली रस्सी पर और कान हिज मास्टर्स वाइस के ग्रामोफोन के चोगे से लगे होते थे।

कान पर एकमात्र कर्णधार अर्थात् राजा बहादुर का रंच भर भी टस से मस न होने वाला अधिकार होता था। हँसते-रोते, उठते-बैठते, सोते-जागते वे सदा इस शास्त्र-वाक्य पर चलते थे—यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि। हृदय में विराजमान आराध्यदेव 'दरवार' अर्थात् महाराजा की तरफ से यदि हुक्म हो कि अमुक व्यक्ति को बुला लाओ, तो यदि उसे बाँधकर लाया जाय, तो जी हुजूरी में होड़ करने वाले आभास पा जायेंगे कि प्रभुभक्ति में कमी आ रही है और इशारे से यही बात समझा भी देंगे। कानाफूसी की लहर उठते सागर में प्रभुभक्ति में भाटा आने का इशारा भयंकर हो सकता है। कहाँ पर दलदल है और किस भँवर में पड़ने से अथाह सागर में पड़ जाना होगा, इसका कुछ ठीक नहीं। इसीलिए मुसाहबों की तत्परता में कमी नहीं आती।

इसीलिए राज-अतिथियों की सेवा और मनोरंजन में कभी कोई त्रुटि या लापरवाही नहीं होती थी। काश ! अतिथियों की इच्छा पूरी करने में जितनी लगन और तत्परता दिखलाई जाती थी, वह किसी दूसरे बड़े काम में लगाई जाती। परन्तु अतिथि तो सर्वदेवमय होते हैं, विशेषकर यदि वे सागर-पार के हों।

हिन्दुओं के तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की तरह राजाओं के देवताओं की संख्या का कोई लेखा-जोखा न था। प्रत्येक शीतऋतु में जब यूरोप और अमेरिका का मन ओवरकोट के बोझ, कुहरे की कालिमा और तुषार की हिमधारा से ऊबकर दक्षिण सागर के ताड़ और नारियल के कुँजों से पूर्ण, चमकते सूर्य के देश में

वायु-परिवर्तन के लिए व्याकुल हो उठता, तब चमड़े की जिल्द वाली पाकेट बुकों से घूमने लायक स्थानों की तालिका सामने आ जाती। उस तालिका में हमेशा ही भारत को प्रथम स्थान का गौरव प्राप्त होता था, क्योंकि इतने प्रकार के सुन्दर दृश्य और मनोरंजन के साधन और कहीं न मिल सकते थे। यहाँ सैंपेरे और साधु, बाघ और बनारस, हिमालय और ताज, शिकार पार्टी, और इन सबसे बड़ा आकर्षण महाराजा और ... उस साल रिवियेरा के किनारे या लन्दन अथवा हॉलीउड के होटल में या इण्डिया क्लब की पार्टी में हिज हाइनेस दि महाराजा या युवराज या उनके ब्रिटिश कर्णधार ने खुला निमन्त्रण दे दिया था कि जिस साल चाहिए, जब जी चाहे, पधारिये और कृतकृत्य कीजिये, हमारे राज्य की अतिथि-सत्कार की सब तरह की सुविधायें आपके चरणों पर होंगी। केवल यही नहीं, दूसरे राज्यों में भी आपके राजअतिथि होने का रास्ता खुला रहेगा।

इस कारण प्रत्येक शीत ऋतु में मानसरोवर की शुभ्र हंस-पंक्तियों की तरह सफ़ेद चमड़े वाले पर्यटक-नर-नारियों के दल आते दिखाई देते। डुइंग इण्डिया अर्थात् भारत में भ्रमण कर रहा हूँ या उसका श्राद्ध कर रहा हूँ, ऐसा प्रत्येक गोरा सीना तानकर गौरव के साथ कह सकता था। कही यह कह सका कि मैं हिज हाइनेस का अतिथि रहा, तब तो फिर सोने में सुगन्ध। इतना कहते ही समाज में उसका आसन कितना ऊँचा हो गया, और वह कितना दिलचस्प व्यक्ति मान लिया गया, यह बताने की जरूरत नहीं। यह बात तुम जो शिकार में हँकाई करते थे, जानवर भगाने के लिए भाड़ियाँ पीटते फिरते थे, कैसे समझ सकते हो ?

यह प्रश्न करके देशी राज्य प्रजापरिषद् के एक नेता ने मेरी ओर कौतूहलपूर्ण और साथ ही चोट करने वाली दृष्टि डाली। मिर्जा इस्माइल एवेन्यू की नई चमकती हुई सड़क, नहीं नहीं राजपथ पर एक कैमरे की दूकान में मैं फोटो उतारने का कुछ सामान लेने गया था। ये महाशय बातचीत करने में बड़े पटु थे। उन्होंने भट मुझ से परिचय कर लिया, और मेरे सामने एक प्रश्न रख दिया। बोले—महाशय जी, आप सुरेन्द्रनाथ और देशबन्धु चित्तरंजन के प्रान्त के हैं, महज राजाओं की कीर्ति न देख, प्रजा की बात भी सुनते जाइये।

खद्दर की टोपी को जरा मजेदार ढंग से नचाकर बोले—महाराजा लोग अमर हो। उनकी तरह उदार और दरियादिल शायद ही कोई हो। उनके राज्यों को कांग्रेस के आन्दोलन से दूर रखकर उन्हें जिला रखा गया, इसी से ब्रिटिश बुद्धि का सबसे सुन्दर परिचय मिलता है। गदर के बाद बड़े लॉर्ड कैनिंग ने लिखा था कि यदि हमारे महाराजाओं ने समुद्र के बाँध की तरह इस लहर को रोका न होता तो उसके एक ही थपेड़े में ब्रिटिश साम्राज्य चूर-चूर हो जाता। यदि आपको विश्वास न हो,

तो एलफिन्स्टीन के लेखों को पढ़कर देखें। उन्होंने लिखा है कि यदि १८५७ के जमाने में निज़ाम, सिन्धिया और सिकख न होते, तो अंग्रेज कहाँ रहते ?

मैंने ज़रा हिचकिचाहट के साथ कहा—यह सब बड़ी-बड़ी, राजनीति की बात है। मैं देश-पर्यटन करने आया हूँ। मझे क्या मतलब ? परचून के व्यापारी से मोतियों का मोल भाव !

उन्होंने इसका कड़ा उत्तर दिया, बोले—मतलब कैसे नहीं। जन-साधारण की भावनाओं को आपने नहीं जाना, तो कुछ भी नहीं जाना। परचून के व्यापारी को भी मोतियों की खबर रखनी पड़ती है, भले मोती सच्चे न हों, दो दिन में आव जाती रहे। देशी राज्यों जैसी अगर अनोखी चीज़ न होती, तो दुनिया से एक रोमान्स ही उठ जाता।

राजप्रतिथियों की जिस प्रकार आवभगत होती थी, और उसके पीछे जो भावना होती थी, उसे ये महोदय अच्छी तरह समझते थे। उनके अनुसार यह एक प्रकार का प्रचार-कार्य था, मूक प्रेरणी थी कि इस 'चीज' को बरकरार रखा जाय, तभी तो ब्रिटिश प्रतिथियों की इस प्रकार आवभगत और मनोरंजन हो सकता था। तीर ठीक जगह पर बैठता था, और बड़े-बड़े अंग्रेज अफसर इस यंत्र को चालू रखने में कुछ उठा नहीं रखते थे। उनकी अपनी जरूरत जो पूरी होती थी।

पर मेरी आँखों के सामने राजपूत प्रतिथि-सेवा के चित्र थे। बचपन से उनकी उदारता और महिमा की बात सुना करता था।

उन महाशय ने हाथ के एक इशारे से उन भावनाओं को दूर करते हुए कहा—मैं राजाओं की श्वेतांग प्रतिथि-सेवा से उस ऐतिहासिक प्रतिथि-सेवा की गन्ध तक नहीं पाता, और यदि कहीं उसका लेश हो भी तो भी मैं इस जन-जागरण के युग में साधारण व्यक्ति की सामान्यता को प्रतिथि परायणता के वर्तमान अभिजात्य पर तरजीह दूँगा। यह इनकलाव का युग है।

वे यहीं पर नहीं रुके, बोले—जिन ब्रिटिश नाइटों और अमेरिकन जूँजीपतियों के मुँह में इन राज्यों की मेहमाननवाजी का खून लग चुका है, वे ही आज विदेशों में यह शोर मचा रहे हैं कि इन राज्यों को भारतीय सार्वभौम शक्ति के दायरे में ले आना भयंकर अत्याचार होगा। आज रात को अंग्रेज सेनापति आकिनलेक की विदाई की जो दावत दी जा रही है, उसमें वे यदि यह कह बैठे कि मध्ययुग की इन राज-महिमाओं को ज्यों का त्यों बनाये रखना चाहिए, तो क्या आपको कुछ आश्चर्य होगा ? अखबारों को ज़रा खोलकर देखिये, तो ज्ञात होगा कि कितने लॉर्ड और लेडियाँ राजाओं की सम्भावित समाप्ति पर सागर पार बैठी खून के आँसू रो रही हैं। कहीं-कहीं यह भी आवाज उठ रही है कि कांग्रेस ने मौका पाकर बेचारे राजाओं से ऐक्सेशन

या भारत सरकार में अन्तर्भुक्त होने के शर्तनामे पर दस्तखत करवा लिये हैं, और यह तो अभी इन्तिदा है, आगे-आगे देखिये होता है क्या ?

मैंने मजबूरी से उन महाशय की बात बीच में काट दी । मैंने उन्हें स्मरण करा दिया कि कई राजा अपनी खुशी से विलीनीकरण के लिए तैयार थे, और उनके मन में अपनी प्रजा के मुकाबले कुछ कम देशभक्ति नहीं थी, और लॉर्ड माउण्टबेटन ने भी इसमें सहायता दी ।

इसके उत्तर में उन महाशय ने इतिहास के पन्नों को मेरे सम्मुख खोलकर रख दिया । बोले—देशभक्ति न हो, तो क्या हो ? ब्रिटिश इण्डिया तो बना ही इस प्रकार था—येन केन प्रकारेण छल-बल से एक के बाद एक राज्य पर अधिकार किया गया था । जिनको बहुत ही नावालिग या निरीह ममका गया, उन्हीं को देशी राज्य बना कर रख दिया गया । उन्हींने पंजाब और सिन्ध को लड़ाई में जीता था, बाकी काम छल-बल कौशल से पूरा किया । सितारा, नागपुर और झांसी को डाक्ट्रिन ऑव लैप्स याने इस बहाने ले लिया था कि राजा के कोई लड़का न था, दक्षिण में कुर्ग और उत्तर में अवध इस बहाने हथियाये गये कि वहाँ कुशासन था, बिलकुल मुगल ढंग था । अवध के नवाब इतने राजभक्त थे कि लॉर्ड डलहौसी को और कोई बहाना ही नहीं मिला । अन्त तक इसलिए इसकी सफ़ाई में यह लिखना पड़ा कि जिस शासन के कारण लाखों लोग दुर्दशा में पड़े हुए हैं, उसको कायम रखना मनुष्य और ईश्वर की आंखों में दोषी ठहरना है । ह. ह. ह. इससे बढ़कर ढोंग और क्या हो सकता है !

क्या करता, उनके साथ एकमत होना पड़ा ।

पर उन महाशय ने मुझे इतने पर ही नहीं छोड़ा, बोले—सोचकर देखिये कि १८५३ में लन्दन के 'टाइम्स' पत्र ने यह सम्पादकीय लिखा था कि अंग्रेजों ने रजवाड़ा को प्राच्य तानाशाही के अवश्यम्भावी परिणाम, विनाश से बचा लिया । इस कथन का अर्थ यह था कि अपने यहाँ की प्रजा के विद्रोह से ये राजा कब के समाप्त हो जाते, अंग्रेजों ने इन्हे बचा लिया । यद्यपि ये राजा नाकारा, सब तरह के पापों में लिप्त और दोषों के भंडार हैं, फिर भी इन्हे समर्थ बनाकर रखा गया था, भले ही इनके पर काट दिये गये हों, जिम्मेवारी इनके हाथ में रखी गई हो । ज़रा यह तो सोचिये कि इन राजाओं को इस प्रकार जिला रखने के फलस्वरूप राजकोष के रुपये कहाँ जाते हैं ?

कहकर उन महाशय ने मुझे इस प्रकार घूरा, मानो मैं इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मजबूर हूँ ।

वे फिर बोल उठे, मानो कैसर की सेना का विंग वर्था तोप चालीस मील से पेरिस महानगरी पर लगातार गोले बरसा रही हो । बोले—महाशय, यह जो टाइम्स है, यह भद्रश्रेणी के लोगो का अखबार है । यह साम्राज्यवादी तो है ही. माथ ही माथ

इसके विचार बुजुवा है । फिर भी कभी-कभी इसमें जनसाधारण की वाणी भी ध्वनित हो जाती है । टाइम्स में एक बार किसी ने लिखा था कि जानबुल ने यह मान ही लिया है कि सरकार प्रजा के लिए नहीं है, बल्कि प्रजा ही राजा के लिए है, इसलिए ब्रिटिश सरकार इन बेकार राजाओं की राजागिरी की रक्षा कर देशी राजाओं के प्रति सम्राट् के कर्तव्य का पालन कर रही है ।

मैंने सोचा कि इस भले आदमी के लहजे को कुछ सुधारना चाहिए, नहीं तो लोग क्या सोचेंगे । इसलिए मैंने कहा—अब तो भारत सरकार ने सार्वभौम सत्ता की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है । अब सब कुछ ठीक हो जायेगा । अब आप क्यों सीच में पड़े हैं ?

वात सच थी । उन महाशय को अकस्मात् स्मरण आया कि अब वे १९४७ के पहले के राजस्थान में नहीं हैं । जिस बाँस की बाँसुरी में वह अबतक राग छेड़ते थे सभा आदि करते थे तथा राजनीतिक प्रचार करते थे, अब न वह बाँस ही रहा, और न वह बाँसुरी । देश में जो बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ था, उसके कारण बाँसुरी का पुराना राग फटे बाँस की तरह जान पड़ता था ।

अंग्रेज चले गये थे, पर सुललित अंग्रेजी भाषा और साहित्य का प्रभाव मन से नहीं गया था ।

इधर उन महाशय ने जहाँ से प्रसंग शुरू किया था, याने राजसी-ठाट से अतिथि-सेवा, फिर वही सूत्र पकड़ लिया । विश्वास के स्वर में कहा रजवाड़ों के राजकार्य में अतिथि-सेवा को सबसे अधिक मर्यादा दी जाती थी । क्या आप इसका प्रमाण चाहते हैं ? आप पता लेकर देखिये कि रजवाड़ों के प्रत्येक राज्य में एक मिनिस्टर ऑव एन्टरटेनमेन्ट्स याने अतिथि-मनोरंजन मंत्री भी होता है, और यही मंत्री वहाँ का सब से बुद्धिमान और प्रभावशाली मंत्री होता है । शायद सबसे धनी भी ।

उन महाशय की बातचीत से एक इंगित तेज छुरी की तरह चमक गया ।

पर अतिथिगण यह कहेंगे कि राजाओं के उदार और मित्रता करने के लिए उत्सुक मन का परिचय इस अतिथि-सेवा में प्राप्त होता है, और यदि अतिथियों का मनोरंजन नहीं किया गया, तो फिर अतिथि-सेवा क्या हुई ? यदि बाहर-बाहर होटल में रहकर, राजमहल के बाहरी हिस्से को और मन्दिर के कंगूरे को देखकर वापस जाना पड़ा, या अधिक से अधिक कुछ पत्थर की मूर्तियों तथा गालीचों को खरोदकर जाना पड़ा, तो वैसा देश-भ्रमण तो घर में बैठकर गाइड बुक या भ्रमण-कहानी पढ़कर समाप्त किया जा सकता है । उसके लिए डाइग इण्डिया शब्द का प्रयोग तो नहीं हो सकता । उसके लिए शिकार पार्टी, दरबारी मुजरा, हांथी या ऊँट पर चढ़कर अभिसार के ढंग पर मनोरंजक सफ़र, जरी और जवाहरात से मुँदे हुए राजा और महाराजाओं

के साथ फोटो उतरवाना, राह चलते किसी तपेरे, साधु या बरात के साथ दो-चार यों ही शराफत की बातें करना जरूरी है। और इसके बाद फिर फोटो उतरवाना।

यह सब न करके क्या समुद्र-पार के सम्मानित अतिथि होटल के बरामदे में घैठकर कतार में आने वाले व्यापारियों का माल देखकर दिन काटें? क्या वे इस प्रकार बैठकर नगूने के तौर पर कान के पास अदब से लगाये हुए 'शाहजहाँ चमेली इत्र' को सूँघकर परेशान हों, और फिर पुरानी तलवार, पिचकी हुई ढाल और टूटी हुई मूर्ति का सौदा करते रहें? जरा सोचिये कि यह कितनी हृदय-विदारक घटना होगी। मेरी वगल में कमरे के एक फ्रान्सीसी पर्यटक (उन्होंने अपना नाम गुप्त रखने को कहा है) कई बार रजवाड़ों में इस देश की अतिथि-सेवा देख गये हैं। उन्होंने जब पहले-पहल देखा कि सफेद राजपूती दाढ़ी फँलाकर व्यापारी नकली जवाहरात और चमकहीन पत्थर अपने टीन के बक्स के पास फँलाकर बैठे हैं, और उनको कोई पूछने वाला नहीं, तब उनको ऐसा प्रतीत हुआ मानो अपने मरे हुए लड़कों को सामने रखकर शोकांत पिता बैठा हो। न वे बात ही करते थे, और न अपनी चीजें जबरदस्ती किसी के मत्ते मढ़ना चाहते थे। अब वे गम्भीरतापूर्वक मोन बैठे इसकी प्रतीक्षा में थे कि कोई साहब इन्हें खरीदना चाहें, तो वे बेचें।

धिक्कार है, यह कोई समय काटने का तरीका है? इसके बजाय बाथ साल्ट में मजे से स्नान करके मिड नाइट ब्लू (आधी रात जैसी नीली) डिनर जंकेट और सुधा-धवल कमीज की चमक से प्रकाशमान सन्ध्या के समय महाराजा के क्लब में सभासद और मंत्रीमंडल के साथ उठना-बैठना कितना मोहक है? उसमें काकटेल के साथ जो खोलकर बातचीत होगी। केवल यही नहीं, अगले दिन की शिकार पार्टी के लिए निमंत्रण की सम्भावना भी उसी में रहेगी। वही ठीक है। अमरसिंह, चन्द्रसिंह, रणजीतसिंह और न मालूम कौन-कौन वहाँ होंगे। वहाँ सब-के-सब नर के रूप में सिंह होंगे, और समुद्र पार से आर्य अतिथि होंगे सिंहराज।

इन शिकार पार्टियों की उपेक्षा करना गलती होगी। इन्हें राजपुरुषों के मनो-विनोद या युद्ध के अभाव में दूसरी दिशा में अपनी कमशक्ति लगाने के रूप में देखना ठीक न होगा। राजस्थान की मरुभूमि में भी जंगल है, और ऐसे जानवरों की कमी नहीं, जो मनुष्य और उसकी फसल के शत्रु हैं। जंगल के किनारे जो बसते हैं, वे यही मनाते रहते हैं कि कब शिकारी आयें, और उन्हें इन जानवरों से मुक्त करायें, तभी वे किसी नये शेर, चीता या अन्य पशु से बिना परिश्रम किये छुटकारा पायेंगे। इसके अलावा शिकारी जब जाते हैं, तो खूब खर्च करते हैं, जिनसे जिस इलाके में वे पधारते हैं, उसमें खुशी की लहर दौड़ जाती है। इसके अलावा रुपया-आना-पाई से ही उस आनन्द को नापना ठीक न होगा, जो उन्हें इन अवसरों पर प्राप्त होता है। शिकार

में साधारण ग्रामवासियों, यहाँ तक कि स्त्रियों और लड़कियों को हूँक्यों के रूप में अच्छी बख्शीश मिल जाती है।

इसका परिणाम क्या होता है, इसका पता इससे चल जायगा कि खान देश में जेम्स उटराम को किस प्रकार याद किया जाता है। यह सौ वर्ष पहले की बात है। दस वर्ष तक उटराम यहाँ शासक रहे। इसी बीच उन्होंने उस युग की तोड़ेदार बन्दूक से ६ बाघ और चीते, २५ भालू और १२ जंगली भैंसों से असहाय आदिवासियों को छुटकारा दिलाया। हर साल वह महाराजाओं की तरह सभासदों और अतिथियों से घिरकर शिकार के लिए निकलते। आदिवासी अब भी उन सेवाओं के कारण उटराम साहब को देवता की तरह मानते हैं। उन्हीं की सेवाओं का परिणाम है कि आदिवासियों ने खुशी से सभ्य शासन यंत्र के सामने सिर झुका दिया, और ब्रिटेन का झंडा अपने कंधों पर ले लिया। अब भी वे उस सेवा के लिए कृतज्ञ हैं।

इसी प्रकार मारवाड़ के आदिवासी मेड़ों को भी पशु शत्रुओं से छुटकारा मिला था। जब सवाई माधोपुर या चित्तौड़ के किसी पड़ोसी जंगल में महाराजा के शिकार का तम्बू बन जाता है, उस समय न केवल प्रजा के साथ महाराजा की सरकार का सम्पर्क स्थापित होता है, बल्कि राज्य का प्रधान कर्तव्य सुरक्षा भी सिद्ध होता है। आज गणराज्य के युग में राजतंत्र के उज्ज्वल पहलू को भुला देना उचित न होगा।

इन शिकारों की सार्थकता का एक उदाहरण मैं देना चाहूँगा। जिस समय की बात मैं लिख रहा था, यह घटना उसके बाद की यानी राजस्थान के भारतीयकरण के बाद की है। इस इलाके में बाघ का अत्याचार बहुत भयानक हो गया। गाँव के इर्द-गिर्द जो शिकारी बसते थे, उन्होंने घुटने टेक दिये, और कहा कि यह रोग उनके वंश का नहीं। गायें, भैंसें, आदमी सब मारे जा रहे थे। इस युग की जनता के मुख-पात्र विधान सभा के सदस्य होते हैं, न कि राजा। उनके प्रयास से राजस्थान की सरकार इस सम्बन्ध में कुछ करने के लिए तैयार हो गई। सरकार की ओर से पुरस्कारों की घोषणा होती रही, और शिकारियों को प्रलोभन दिये जाते रहे, पर कोई भी बाघों को बाल बाँका न कर सका, और विपत्ति ज्यों की त्यों बनी रही।

तब राजस्थान सरकार ने वहाँ के सब सामन्त राजाओं से यह अनुरोध किया कि वे इस बाघ-विपत्ति से देश को छुटकारा दिलायें। पर अब इन सामन्तों को प्रजा से लगान वसूल करने या सेवा प्राप्त करने का अधिकार था। राजा सिर्फ़ मासिक भत्ता पाते थे, और जितने जागीरदार थे, उनकी हालत खराब थी और भविष्य अनिश्चित था। इसलिए बाघ अपना काम करते रहे। सामन्त राजाओं ने अपनी बन्दूकों और राइफलों को बेचने का विज्ञापन निकलवा दिया, और सरकारी जिला मजिस्ट्रेट यह हिसाब लगाते रहे कि जितनी बन्दूकों का लाइसेंस मिला हुआ है, उनकी फीस

पूरी-पूरी वसूल हो रही है या नहीं ।

पहले के जमाने के सैक्रेटरी ऑफ स्टेट माटेग्यू साहब जिन दिनों १८१७-१८ का नया शासन चलाने के सिलसिले में भारत आये थे, उन दिनों के उनके रोज़नामचे को देखने पर ज्ञात होता है कि अक्सर सप्ताह के अन्त में अर्थात् शनिवार और रविवार की छुट्टी में वह दिल्ली से किसी राजपूत राजा के इलाके में विश्राम के लिए चले जाते थे । विश्राम क्या था, वे शिकार के लिए परिश्रम करते थे । बात यह है कि उद्योगी पुरुषों का विश्राम भी और ढंग का होता है । साग और भर्त्ता खाने के बाद सोकर डकार लेते-लेते ताश और चौपड़ में जो विश्राम होता है, उससे न तो वीर उत्पन्न हो सकते हैं, और न साम्राज्य बन सकते हैं ।

माटेग्यू को सूर्योदय से सूर्यास्त तक दिमाग और कलम चलानी पड़ती थी, ठीक उसी प्रकार जैसे सभी सरकारी उच्च कर्मचारी करते हैं, या उनसे भी अधिक । पर उनके विश्राम का ढंग ऐसा था, जिससे शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहें, और साथ ही साथ गरीब प्रजा का भी उपकार हो । सुदूर मुफस्सिलों में ब्रिटिश क्रमचारियों के लिए अपनी जनप्रियता और घाक कायम रखने, साथ ही अपनी जाति के शासन को जारी रखने के लिए इस तरह का मनोरंजन बहुत सुविधाजनक था, इसमें सन्देह नहीं ।

पर उन्हीं की कुर्सियों पर आज जो देशी कर्मचारी बैठे हैं, उनमें से अधिकांश बिल्कुल बेष्णुव या निरीह हैं ।

हम लोगों का शासन-यंत्र पहले के जमाने की तरह एक यंत्र है, पर इस समय जो उसके यंत्री बने हुए हैं, उन्हें ब्रिटिश यंत्रियों के गुणों को अपनाना पड़ेगा । नहीं तो यंत्र और यंत्री यदि दोनों ठीक भी रहें, तो भी इसे चलाने के लिए जिस लुब्रिकेशन या चिकनाई की जरूरत है, वह नहीं मिलेगी । इसका परिणाम यह होगा कि कल-पुल्ले चिरं-चिरं की आवाज़ करते रहेंगे ।

माटेग्यू की उक्त शिकार पार्टियों में जो अंग्रेज़ शिकारी होते थे, उनमें से कौन पहले जंगल में घुसेगा, और कौन पहले गोली चलायेगा, इन बातों के सम्बन्ध में बड़ी होड़ रहती थी । बात यह है, कि जिस हाथ से बाध मारा जाता है, उसी की सम्पत्ति हो जाता है ।

शिकार में हमेशा यही नियम चला है । इसलिए होड़ करके बहादुरी दिखलाना राजपूतों के शिकार में बराबर देखा जाता था । परदेशी की तुलना में अपने को बड़ा करके देखने के फलस्वरूप बहादुरी सम्बन्धी यह होड़ अक्सर विरोध का कारण भी बन जाती थी । सम्राट् अकबर ने महाराणा प्रताप के विरुद्ध न केवल बड़े-बड़े राजाओं को खड़ा कर दिया था, बल्कि उनके सगे भाई शक्तिसिंह को भी उनके विरुद्ध खड़ा किया

था। दो महावीर भाइयों में भगड़े का सूत्रपात शिकार से ही हुआ था। दोनों एक साथ घोड़े दौड़ा रहे थे, शिकार के समय इस बात पर भगड़ा हो गया कि कौन अधिक दक्ष है।

पर भगड़ों से क्या फायदा ? छत पर पतंग उड़ाते समय पड़ीस की दो छतों में से किस से सुतली में डेला बांधकर पतंग को काट दिया गया, इस पर कई बार हम दुर्बल लड़कों में भगड़े हुआ करते हैं। हमारा यह वचकाना भगड़ा भी मुगल और राजपूतों की लड़ाई की तरह होता है, उसमें क्षमा का कोई स्थान नहीं होता। अन्त में हम लोग मुहल्ले के मोड़ पर मुक्के तान-तानकर दूसरे गुट के लड़कों को ललकारते हैं कि अगर मर्द हो, तो उतर आओ, हो जायें दो-दो हाथ ! ऐसे गाल बजाने से क्या फायदा ?

तब दूसरे पक्ष के लड़के मजबूर होकर मैदान में आते हैं, और गालियों और तू-तू, मैं-मैं के बदले घूसे और थप्पड़ चलते हैं। कुछ भी हो, परन्तु हम इस भगड़े को इस हद तक नहीं ले जाते कि अखाड़े में जा बाकायदा डंड-बैठक करते या कुश्ती लड़ें। हाँ, हमारे गुरुजन यह देखकर थोड़े दिनों के लिए अप्रसन्न अवश्य हो जाते हैं कि अच्छे लड़के बनने के मार्ग में अड़चनें पैदा हो गई हैं।

पर उस ऐतिहासिक भाइयों के भगड़े में यह तय हुआ कि कौन अधिक बहादुर है, यह सम्मुख युद्ध में तय हो जाय। इसलिए दोनों भाई बछियाँ लेकर एक दूसरे पर टूट पड़े।

बड़ी भयंकर बात थी। अपने बाप के चौबीस बेटों में प्रतापसिंह और शक्तिरसिंह सबसे साहसी और युद्धकुशल थे। मेवाड़ के पहाड़ों के ऐन उस पार मुगल सेना देश पर कूद पड़ने के लिए तैयार खड़ी थी, पर यहाँ शिकार को लेकर भाई-भाई में लड़ाई शुरू हो गई।

द्वन्द्व युद्ध के लिए जिन नियमों का निभाना आवश्यक था, वे भी ठीक कर लिये गये। जितनी दूरी से बछीं लेकर हमला करने का नियम था, वह पैरों से नाप ली गई। सामन्तगण साँस रोककर देख रहे थे कि अब क्या होगा ? लड़ाई रोकने का कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता था। कहते हैं कि वीरधर्म में ऐसे मीकों पर क्षमा का कोई स्थान नहीं होता।

इतने में दोनों भाइयों के बीच में राजपुरोहित आकर खड़े हो गये। उन्होंने अनुरोध किया कि वे युद्ध से वाज आवें। पर युद्ध का नशा सवार था, एक भाई को मरना ही था।

पुरोहित ने जब यह हाल देखा, तो उसने अपने सीने में छुरी भोंककर आत्म-हत्या करली। ब्रह्महत्या से राजरक्त की पिपासा शान्त हो गई।

पर शक्तिसिंह को भेवाड़ छोड़कर चला जाना पड़ा। वह कहाँ गये ? वह अपने भाई और अपने देश के शत्रु सम्राट् शकवर के शिविर में चले गये।

इसी प्रकार एक परिस्थिति सैकड़ों वर्ष बाद मांटैग्यू साहब की शिकार पार्टी में उत्पन्न हुई। भगड़ा इस बात पर हुआ कि किसके हाथ से शिकार मारा गया। इस पर बुद्धिमान् मांटैग्यू साहब ने हँसकर यह फैसला किया कि चिट्ठी डाल दी जाय। जिसका नाम निकल आयेगा, उसे शिकार का सम्मान दिया जायगा।

दोनों अंग्रेजों ने इस फैसले को खुशी-खुशी मान लिया। इसी को रिपोर्ट (खेल) कहते हैं।

व्यक्तिगत वीरता में हम भारतीय कभी किसी से पीछे नहीं थे। पर हम लोगों ने देश को छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त कर रखा था। जब बाहर के आक्रमणकारी एक-एक कर सारे देश को अपने पंजे में कर लिया और अंग्रेजों ने ऐसा सबसे बड़ा साम्राज्य क़ायम कर लिया। जिसमें सूर्य कभी अस्त नहीं होता था। क्या हमने इतिहास से वह सबक सीखा ?

शिकारी और स्वप्नदर्शी

उस शिकार पार्टी की बात में कभी नहीं भूल सकता ।

उन दिनों में राजस्थान के जिस इलाके में था, उस पर बाघ महाराज ने दया करना शुरू कर दिया था । उसी प्रकार की दया जैसी बंगाल में ओला बीबी (हैजा) की होती है । कोई उसके हाथ से बच नहीं सकता । शेर एक ही था, पर चार सौ आदमियों का जीवन दूभर किये था । कोई भी किसी दिन उसके मुँह का कौर बन सकता था । तीस भैंसों के कंकाल तथा टेढ़े-मेढ़े सींग जंगल में उसके अस्तित्व की गवाही देते थे ।

हम लोग एक लड़खड़ाती हुई कार पर सवार थे । रास्ते के नाम पर कुछ भी नहीं था । केवल पगडंडी की रेखा थी । कभी तो हम कार पर सवार रहते, और कभी कार हम पर इस अर्थ में सवार रहती कि हमें उसको ठेलकर आगे बढ़ाना पड़ता । इस रास्ते से शायद कभी कोई भैंसागाड़ी जैसे-तैसे जाती हो, पर कार कभी नहीं चली होगी । इंग्लैंड या अमेरिका में जो लोग कारें बनाते हैं, उन्हें अगर यह मालूम हो जाय कि इस प्रकार की पगडंडी में वे चलेगी, तो शायद कारें बनाना ही छोड़ दें ।

—यह भी तो हो सकता है कि कारों की भाँग बढ़ने की आशा में वे उत्साहित होकर और अधिक कारें बनाते । मेरे मजाकपसन्द मेशवान ने उत्तर दिया ।

उनकी राय यह थी कि हँकाई करने वालों की सहायता से शेर के शिकार में क्या बहादुरी ? उससे कहीं अधिक आनन्द और बहादुरी मचान बनाकर शेर के आगमन की प्रतीक्षा करने में है । जैसे देवताओं को अर्घ्य देकर उनका आह्वान किया जाता है, उसी प्रकार शेर को खाना देकर लुभाया जाता है । यदि शेर कृपा करके उस दान को स्वीकार करने आये, तभी मुलाकात हो तो सबसे अच्छा है ।

और पूजा का मंगलघट कहाँ स्थापित करना पड़ेगा ? जहाँ इसके पहले उनका आविर्भाव हुआ था । सम्भव हो तो इसके पूर्व जिस पर उन्होंने दया की थी, उसी के वच्चे-पूच्चे हिस्से को लेकर घट बनाया जाय ।

गत तीन महीनों से शेरसिंह (राजपूतों के देश में बाघ को भी सिंह कहने को जी चाहता है) प्रतिदिन या बीच में एक आध दिन का अंभा देकर एक भैंस का बलिदान ग्रहण करते थे । और गत दो दिनों से, मैं भूल गया था कि दो रातों से हम

लोग उनका बलिदान करने के लिए वनवासी हो चुके थे ।

यह तरु-तल-वास नहीं था, बल्कि हम तरु-गिर-वास कर रहे थे । मैं विलकुल अनाड़ी, अनभ्यस्त और असहिष्णु तरीके से एक पेड़ पर बैठे हुए मचान से हिलगा हुआ था, और मेरे साथ थे मेरे वृक्षसाथी राव किशनलाल जी । मैं जो वचन से सब तरह के नटखटपन से दूर रखा जाता था, जिसे छीक, छिपकली और बायीं आँख फड़काने के शुभाशुभ लक्षणों के संस्कार मिले थे, भले ही वह इन विधि-निषेधों की लक्ष्मण-रेखा से बाहर आने को सदा उत्सुक, साथ ही अक्षय रहा हो, जो तेल और पानी में बनी दाल-भात और चड़चड़ी^१ से पाला गया हो, उसके जीवन में ऐसे साहसिक काम या ऐडवेंचर का मौका आयेगा, यह कौन जानता था । नये ढंग की बन्दूक जब-तब हाथों की शोभा बढ़ाती थी, पर यह कभी सार्थक भी होगी, इसका पता न धर्मतल्ला स्ट्रीट के उस बन्दूक बेचने वाले को था, न खरीदने वाले को ।

हमारी पार्टी इस बीच तीन रात आकर लौट गई है, क्योंकि बाघ महाराज के दर्शन नहीं हुए । आज अन्तिम चेष्टा थी, और हमारे मेजबान महोदय यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि यदि आज शिकार हाथ न लगा, तो कोई भयंकर घटना घट जायगी । यह भयंकर घटना क्या होगी, इस पर भी साथियों में आलोचना हो चुकी थी । मुझे 'चन्द्र टरे सूरज टरे' वाली राजा हरिश्चन्द्र की प्रतिज्ञा याद आ गई ।

जब तक धरती पर बाघ का वच्चा चलेगा, तब तक धरती पर पैर न रखेंगे, शायद प्रतिज्ञा यही हो । वचन में गिल्ली-डण्डा खेलते समय जिस तरह पेड़ की डालों से लटके रहते थे, उसी तरह मचान पर बैठे रहना होगा । यही प्रतिज्ञा का परिणाम था ।

संस्कृत काव्यों में निर्वात निष्कंप प्रदीप की बात पढ़ी थी, पर रात्रि के अंधेरे में हमारी हालत सिर्फ इतनी ही न थी । हम तो पूरी तरह से बुझे दीयों की भाँति बैठे थे । पेड़ की सबसे ऊँची डालों पर बाँस की खपच्चियों और लता-पत्र के सहारे यह घोंसला बना था । इसे डोगी भी कह सकते हैं । वहाँ हम खामोश बैठे थे—इस प्रकार चुप जिससे साँस लेने का शब्द तक नीचे न पहुँचे । हम इस प्रकार इन्तज़ार कर रहे थे, और इस इन्तज़ार की उन इन्तज़ारों से तुलना कर रहे थे, जिनका वर्णन पुस्तकों में पढ़ा था ।

सामने बेचारी भैंस बैठी थी । पता नहीं, उसे मालूम भी था या नहीं कि किस लिए उसे यहाँ बांध रखा गया है । क्या उसे अपने भविष्य का कुछ आभास था ? किनके मनोरंजन या कल्याण के लिए उसका यह अनचाहा बलिदान था, इसका उसे

१. बंगालियों की एक प्रकार की तरकारी जिसमें हर चीज़ खप जाती है ।

क्या पता ? संध्या समय कुछ कौवे उसके सींगों पर अन्तिम बार बैठ इधर-उधर देख 'कां कां' करते उस पात्र से पानी पीकर उड़ गये, जो शेर के लिए रखा था । क्या इन कौवों को कुछ पता था ?

नहीं, शवरी की प्रतीक्षा में ऐसी बेवसी न थी, क्योंकि उसके आराध्य तो उसके हृदय में ही बसे हुए थे । वह बाहर आकर कब दर्शन देंगे, प्रतीक्षा बस इसकी थी । उमा की तपस्या में भी नहीं, क्योंकि देवाधिदेव तो उसकी आँखों के सामने ही थे । वह आँखें खोलें या न खोलें, उमा तो जी भरकर देख रही थी । साथ ही आशा थी कि कभी न कभी तो समाधि टूटेगी ही ।

और यह बेचारी भैस कई रातों से मृत्यु के द्वार पर बैठी हुई थी । वह उसी पथ की पथिक थी, जिस पर तीस भैस पहले जा चुकी थी । आत्मरक्षा या पलायन करने का भी कोई रास्ता नहीं ।

अन्तिम कौवे की कांव-कांव बहुत पहले ही रात्रि के आगमन की घोषणा कर पहाड़ की आड़ में विलीन हो गई थी । उस बेचारी भैस का काला रंग रात की कालिमा में मिल गया । शायद उसके मन में बाहर से भी अधिक अंधेरा था । ऐसा लगता था जैसे उसकी आँखों के सफेद कोने अंधेरे को चीरकर व्याकुलता के साथ मकान की ओर ताक रहे थे, और मौन भाव से प्राणों की भीख माँग रहे थे ।

नहीं, मैं शिकारी नहीं हो सकता ।

मचान में प्रथम कुछ घण्टे बुरे नहीं कटते । कैसे (पतति पतत्रे विचलित पत्रे) पत्ता गिरने से होने वाली आवाज तक न कर पैरो को फैलाया या सिकोड़ा जाता है, कैसे चुपचाप थर्मस खोलकर चुस्की लेने की आवाज किये बिना काँफ़ी पीकर शरीर और मन को ताजा किया जाता है, इन कौशलों को मैंने जल्द ही सीख लिया । यह भी समझ में आगया कि स्यारों के हुवा, हुवा सहगान की तरफ़ ध्यान देने से खाँसी कम आती है । तारों को गिनने में कितना समय कट सकता है, वह घन्नियाँ गिनने से आसान हैं या कठिन, इन समस्याओं को सुलभाने में कुछ समय कटा । आँखें कड़वा रही थीं, जैसे कोई पलकों को सी रहा हो ।

बचपन में कलकत्ते के पास रात भर जगकर मैंने बंगला नौटंकी या यात्रा देखी थी । कंसवध या कालीय-दमन इस प्रकार का कोई खेल था । उस समय किस कौशल से मैंने नौद को अँगूठा दिखाया था, याद करने लगा । वह यात्रा तो सियार को भगाने मात्र की थी, पर इस बार तो शेर मारने की यात्रा है । बहुत अधिक मूल्यवान और बहुत अधिक रोमांचकारी, फिर भी नौद नहीं मानती ।

मन ही मन मैंने सब मित्रों को पत्र लिख डाले—भृष्वन्तु विश्वे मेरे सब मित्राः । पत्र का सिरनामा और सम्बोधन तो ठीक हो गया, पर लिखूँ तो क्या लिखूँ ?

ऐसी कोई बात लिखनी चाहिए, जो शरत् वायू के श्रीकान्त की रात्रिकालीन यात्रा की तरह दिलचस्प हो.....

इतने न, इतने में क्या हुआ, जैसे कुछ हिला। हाँ, साँस सीने के भीतर ही थम गई।

छींह, छींह, राव किशनलाल अपने को सम्हाल न सके और उनकी छींक एक मचान से दूसरे मचान में होती हुई सारे जंगल में गूँज गई। कुछ सियार जोर से भागे, पर भैस ज्यों की त्यों खड़ी पगूरा रही थी।

बगल के पेड़ से एक मचान से मेरे मेजवान की बहुत दबी हुई, पर तीखी आवाज आई—उल्लू को सम्हालो !

भागती हुई हिरनी पर भपटता शेर भी इतने जोर से न दहाड़ता होगा। फिर वही भीष्म-प्रतिज्ञा याद आ गई कि धरती पर जब तक बाध का बच्चा चलेगा, तब तक धरती पर पैर नहीं रखेंगे।

पता नहीं कल राव जी की तरुदीर में क्या बदा है ? इधर मेरा खून जोरों से दौड़ रहा था। साथ ही साथ मन में खुशी की लहर भी तेजी से उठ रही थी।

नीचे के गमले में कोई जानवर पानी पी रहा था, और भैस बेचारी डर के मारे छटपटा और हाँफ रही थी। मैंने बहुत ही धीरे से राइफल को हाथ में लिया, और पत्तों के परदे को जरा हटाया।

अब भैस न तो हाँफ ही रही थी, और न रस्सी तुड़ाने की ही कोशिश कर रही थी। शायद डर से सुन्न हो गई हो। उधर शेर महोदय पानी से निपटकर नाक से धरं-धरं कर पानी निकालने लगे।

एकाएक अंधेरे की छाती चीरकर विशाल शक्तिशाली टाच की रोशनी शेर पर फैल गई। मेरे वृक्षसाथी ने अनेक शिकारों के अभ्यस्त हाथों से राइफल चलाई। बड़े जोर से गरजकर शेर भागने के लिए तड़पा। साथ ही एक दूसरे मचान से बिजली की एक रेखा कौंध गई। शेर और भी जोर से गरजा, पर क्षण भर गरज कर ही चुप हो गया। थोड़ी देर तक उसके सीने को चीरकर एक धरं-धरं आवाज निकली, फिर सन्नाटा छा गया।

रात के उस अन्तिम पहर में मैंने जरा भपकी से लेने की कोशिश की। परांशिया में ही देवी अपर्णा की कृपा हो गई। पाँच सौ साल का परदा उठकर विलीन होने लगा। राजपूत जीवन के एक न्यारे अध्याय में मेरा मन बहक गया। उन दिनों फागुन का महीना था। राजपूतों का वसन्तोत्सव फूलों के हारों तथा रंग की फुहारों से ही समाप्त नहीं हो जाता था। इस बात का उल्लेख कर उदयपुर के महाराणा ने मुस्कराकर कहा—चलो, आज तुम्हें एक नये वसन्तोत्सव में दीक्षित करें।

देश में जाकर तुम अपने कवि जयदेव से कहना कि अब 'रण छोड़' कन्हैया के गीत न लिख गौरी के गीत लिखें । तुमने तो शायद इम्तहान पास करने के लिए घुड़सवारी सीखी थी, जल्दी से इस पहाड़ी घोड़े पर सवार हो जाओ । अहेरिया उत्सव में चलना है ।

ज्योतिषी ने विचारकर शुभ घड़ी बता दी । महाराणा ने सब सामन्तों और साथियों को हरे रंग की पोशाक उपहार में दी थी । उन पोशाको को पहनकर लोगों ने माथे पर केसरिया रंग का चंदन लगाया और उसके बीच में लाल चन्दन का एक तिलक लगाया । इसके बाद वमन्त के फूलों से लदे वृक्षों के बीच से हम लोग जंगल में दाखिल हुए । बात यह है कि गौरी देवी के चरणों में चढ़ाने के लिए एक बन-सूअर की जरूरत थी । आज के शिकार की सफलता पर सारे साल का भाग्य निर्भर समझा जाता था । इसलिए कोई भी राजपूत योद्धा शिकार पाने में कोई कसर नहीं रखता था । सब लोग घोड़े दौड़ाकर एक दूसरे से होड़ करते हुए शिकार की तलाश करते थे । आज के दिन यदि वहाँ शिकार पर न लगकर शिकारी पर लग जाय, तो इसकी शिकायत महाराणा के दरबार में नहीं आती थी । यदि कोई बुरी नियत से भी ऐसा करे, तो उसकी हत्या की बात गुप्त रह जाती थी ।

राजपूत घरानों में प्रायः पुश्तैनी दुश्मनी चलती है । इन दुश्मनियों से बराबर ही न केवल अपने को नुकसान रहा, बल्कि राज्य भी कमजोर पड़ते रहे । पर अहेरिया वाले शिकार में यदि किसी का तीर जाकर दुश्मन घराने के किसी व्यक्ति को लगता था, तो उसमें कोई प्रतिहिंसा की बू नहीं खोजता था । और यदि घोड़ा मय अपने शिकारी के पर्वतचूड़ा पर से किसी खाई में गिर पड़ता था, तो उस शिकारी की हँसी नहीं होती थी ।

तो वह देखिये, घोड़ा पहाड़ी नदी पार करता हुआ सँकरी घाटियों में दौड़ रहा है । सालुम्बर का चन्दावत रावत, बदेला के चौहानराव, वेदनोर के राठौर ठाकुर, सदरी के भालाराज जा रहे हैं । ये ही लोग मेवाड़ के महाराणा के संग्राम में साथी, और संन्यास में अनुगामी थे । जीवन स्वतन्त्र था, पर तरह-तरह के दुःख और कष्ट थे । इन्हीं लोगों के सम्बन्ध में कवीन्द्र ने कहा था कि जीवन और मृत्यु इनके चरणों के दास हैं, और इनका चित्त चिन्ताओं से मुक्त है । इन लोगों की आँखों में सुनहला स्वप्न था, और चेहरे पर सुखमय शान्ति ।

अभी यह चित्र उभर ही रहा था कि राव किशनलाल ने मुझे बगल से झुकभोरते हुए कहा—उठिये, उठिये, अब कितना सोइयेगा । सब लोग तम्बू में जमा हो चुके हैं ।

मैं जल्दी से उठ बैठा । पर राव साहब बोले—आपके चेहरे से हँसी फूटी

पड़ती है, क्या बात है ? सपने में शायद घर पहुँच गये थे ।

मैंने उनको स्वप्न की बात बताई । घर पहुँचने की नहीं, बल्कि घर छोड़कर स्वदेश के लिए, शत्रु पर जय प्राप्त करने के लिए विपत्तियों से भरे मार्ग पर मृत्यु से अभिसार की कहानी, जिसका अभिनय अरावली की एक-एक चोटी पर संकड़ों वर्षों तक होता आया है और जिसका स्वप्न हमने इतने दिनों तक गंगा और मेघना के किनारे बैठकर देखा है, जिसकी तेजोमय पुकार पर बंगाल के साहित्यकारों की कलम ने तोप की तरह आग उगनी है ।

राव साहब ने कहा—बंगाल के साहित्यकारों ने राजपूताने की बड़ी सेवा की है । पर मेरे दुर्भाग्य की बात मुनिये । जब आप स्वप्न में अहेरिया शिकार का मजा लूट रहे थे, उस समय मेरी क्या दुर्दशा हो रही थी, यह भी मुन लीजिये । उस दिन मचान पर जो छीक आई थी, वह तो याद होगी । वैसी एक छीक तीस साल पहले मुझे आई थी, तब मैं दरबार में नौकर हुआ ही था । हिज़ हाइनेस जैसे प्रतापी और तेज़मिजाज । रेसिडेंट के अलावा किसी का भी सिर घड़ से अलग कर सकते हैं । पहले ही दिन जब मैं शिकार में गया, तो मंच पर से ज्यों ही शेर दिखाई पड़ा, बड़े जोर से छीक आई । मैंने तेज़ी से सारी पगड़ी मुँह में ठूस ली । पर हाथ-पैर ठण्डे हो गये, क्योंकि छीक की आवाज़ तोप के गर्जन की तरह चारों तरफ़ फैल गई थी । महाराज ने उससे भी अधिक हँकार के साथ हुक्म दिया—फेंक दो उसको पेड़ से । कहना था कि सब लोग मुझे पेड़ से फेंकने के लिए तैयार मालूम पड़े । बात यह है कि मैं रियासत के बाहर का आदमी थी, और अभी बड़ी नौकरी लेकर आया था । मुझे लोग पहचानते भी कम थे । यदि मैं शेर के पेट में चला जाऊँ, तो इनकी कुछ भलाई ही होती थी, क्योंकि एक नौकरी खाली होती, और शायद वह किसी मुल्की को मिल जाती । इस प्रकार लोग शेर का गुणगान ही करते । दूसरी बात यह भी थी कि हिज़ हाइनेस ने शोध के आवेश में जो कुछ कह डाला, उसकी तामील करने पर किसी का कुछ विगड़ नहीं सकता था ।

अगले दिन मिजाज ठाक होने पर स्वयं हिज़ हाइनेस किसी को दोष नहीं दे सकते थे । हाँ, मचान से गिरकर शेर के पेट में जाने के कारण मेरी स्त्री का एक मासिक भत्ता बँध जाता, पर उससे मेरा क्या ?

राव साहब की कहानी सुनने में बड़ी मजेदार मालूम हो रही थी, पर उनके चेहरे को देखने पर पता लगता था कि तीस साल पहले उनको कितना भय लगा होगा । अब भी उस भय की झलक उनके चेहरे पर देखी जा सकती थी । कोई हानि तो नहीं हुई थी, पर घाव बड़ा गहरा था ।

राव साहब बोले—अब शायद आपको हँसी आवे, पर अगले दिन हिज़

हाइनेस ने सचमुच खबर ली थी कि उनके हुक्म की तामील की गई थी या नहीं। मैं क्रसम खाकर कहता हूँ कि अब भी मैं स्वप्न में कभी-कभी वह दृश्य देखता हूँ, और उस समय जिन्दा ही मर जाता हूँ। गालपट्टी बँधी दाढ़ी-भूँछों के बीच से निकला वह दहकता हुक्म यमदूत की तरह मेरा पीछा करता है।

इस बीच सभी काँच के ग्लासों में पड़ी बरफ को हिलाकर ठन-ठन का शब्द करते हुए तथा ग्लासों को सिर तक ले जाकर सम्मान दिखाते हुए हमारे मेज़वान को उनकी रात की सफलता पर अभिनन्दित कर रहे थे।

हमारे मेज़वान ने भी प्रतिज्ञा पूरी होने के उपलक्ष में पानी पीया। यह पानी सात समुद्र-पार से आया सुनहला पानी था।

विवाह और प्रथम प्रणय

प्रथम प्रेम की बात हो रही थी ।

इस सम्बन्ध में सबसे उत्साही थे कल रात के वही हिज्र हाइनेस महोदय । प्रेम की बात सुनते ही लोग सोचेंगे कि शाम के बाद बैठकखाने में जहाँ नीले और सुनहले वेल-बूटों वाले रेशमी परदे टंगे थे, सोफों पर आराम से लेटे शोरी का ग्लास हाथ में लिये गपशप कर रहे थे । बात ठीक ही है, राजे-महाराजे प्रथम प्रेम की बात और किस तरह कर सकते हैं ?

इसलिए उनके मुसाहब और संगी-साथी भी ऐसे ही वातावरण में बातचीत करेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या ? पर बात ऐसी नहीं थी । शिकार की सफलता पर हमारी पार्टी के सब लोग दिलफेंक बन चुके थे । नशे में विशेषकर कोई प्रिय नशा चढ़ने पर मनुष्य के हृदय के द्वार बेरोकटोक खुल जाते हैं । लाल डोंगी पर सवार होकर मन लहरों का मजा लेने लगता है, ऐसी लोगों की धारणा है । पर अफ़सोस है कि मैं तो लाल डोंगी क्या, किसी भी डोंगी की सवारी के सुख से वंचित था । इस पर अफ़सोस है भी और नहीं भी है, क्योंकि मैं कवि ब्राउनिंग का शिष्य हूँ । वह कह गये हैं कि जो कुछ दिल से करोगे या खुश होकर लोगे, वही तुम्हारे लिए सार्थक है । जो कुछ मिला है, उसी से सन्तुष्ट हूँ । दरियादिल उमरखय्याम की बात याद आ गई । उन्हें जो कुछ कहना था, पहली ख़्वाई में ही कह दिया है । जिसने इस लोक में ही सारे सुखों का ठौर-ठिकाना जान लिया है, वह परलोक की चिन्ता कर क्यों दुःखी होगा । वह तो प्रसन्न-मन वसन्त के गीत गायेगा ।

शिकार से लौटते समय हम लोगों ने भी अनुभव किया कि महुवे के बाग में वसन्त की बयार बहने लगी है । फागुन का पहला स्पर्श पाते ही महुवे की डालों में आग लग गई है । आकाश का एक-एक टुकड़ा लाल हो गया है । राजस्थान के इस प्रदेश में महुवे को केशोला कहते हैं । किशोर अवस्था में कलकत्ते में मैंने एक नाटक देखा था, जिसमें जंगली युवक-युवतियों ने नाचते हुए यह गाना गाया था—
किसने जूड़े में दिये महुआ के फूल ।

फूल किसने गूँथ दिये, इस पर मन में एक प्रश्न उठा था । फूल सखी ने गूँथ दिये थे, या सखा ने, या अशरीरी प्रकृति ने ही महुवे कीट हनियाँ तोड़-तोड़कर जूड़े में महुवे की डालियाँ रोप दी थी । आज महुवे के बाग की लाली देखकर पुरानी याद

ताजा हो गई थी और कविता की एक कड़ी भी गढ़ डाली थी कि शनीमत हुई पुरानी कार का उससे भी पुराना टायर फट गया। हिज हाइनेस का मन इस समय इतना प्रसन्न था कि वह बिलकुल नाखुश नहीं हुए। पर ड्राइवर आदि को जो इस समय काम आ सकते थे, उन्होंने जंजाल समझकर पहले ही एक स्टेशनवैगन में रवाना कर दिया था। उन्हें खबर भेजने की व्यवस्था की गई, और हम पाँच व्यक्ति फूलों से लदे केशोला के नीचे एक बड़े-से पत्थर की छाया में बैठ गये।

मेज़बान की ओर से प्रस्ताव हुआ कि एकमात्र बाहरी आदमी होने के कारण मैं ही बताऊँ कि यह वक्त कैसे काटा जाय ? मन ही मन में घबड़ा गया। कहूँ तो क्या कहूँ ? मुल्ला की दौड़ मसजिद तक, और बंगाली की दौड़ बैठक तक। गाँव-देहात के चण्डीमण्डप मिट जाने के कारण वैसी बैठकवाजी भी नहीं होती। अबतक उनकी जगह बैठकवाजी के कोई राष्ट्रीय अड्डे खुले नहीं। पढ़ाई और पण्डित जी की छड़ी—उस छड़ी का युग भी अब चला गया है, अब तो हमी पण्डित जी को मुक्का दिखाते हैं—इन दो दुश्मनों से आख बचाकर जो समय मिलता उसे भी मने काटा है। अपने नजदीक के मकान के बिना किराये के चबूतरे पर या गली के मोड़ वाले सार्वजनिक पार्क में, जो पार्क संन्यासी के सिर की भाँति सफावट है, घास की एक चकत्ती तक उसमें नहीं उगती।

ऐसी जगह कोई रसमय भाव पैदा होगा कैसे ? मुझे तो कुछ नहीं सूझा।

हमारे बचपन के साथियों में ऐसे लोग थे, जो ताश, चौपड़ आदि खेलते थे और सिनेमा-थियेटर के रसिक थे। अवश्य यह रसपान पिता की कमाई पर होता था। फिर भी उनके जीवन में कोई ऐसी मजेदार घटना नहीं घटी, जिसे याद कर में इन लोगों को सुनता और इस प्रकार इनका मनोरंजन कर सकता। आज मने बड़े दुःख के साथ अनुभव किया कि मने अपना फुसंत का समय यों ही गँवा दिया है, न खेल-कूद में हिस्सा लिया, न मेल-जोल पैदा किया। छुट्टियाँ भी बेकार जाती थीं। नतीजा यह है कि हम ही बेकार हो गये।

उधर सभी मुझ पर जोर डालने लगे कि बंगाली ढंग से समय काटा जाय। नयी किसी चीज के स्वाद की आशा से शेर के ये शिकारी चटखारे लेने लगे। राव किशनलाल ने मेरे कान में कहा—अरे भाई, जल्दी कुछ शुरू कीजिये, नहीं तो पलास्क की चाय आपको हिस्से में बिलकुल नहीं पड़ेगी।

मने देखा कि सबमुबं सब लोग जल्दी-जल्दी चाय समाप्त करने में लगे हैं। चाय कितनी बड़ी नियामत है, यह मने यहाँ बैठकर अनुभव किया। चाय मीठी है, चुम्बन से भी मीठी है, यह घोषणा नित्यानंद ने नीलकण्ठ केविन में चाय नाम से चलने वाला जहर पीते हुए की थी। उससे भी सन्तुष्ट न होकर उसने अन्तिम घूँट में

उसके तलछट को पीकर कहा था—चाय मीठी है, यहाँ तक कि प्रथम प्रेम से भी मीठी, यह बात याद आते ही मुझे प्रेरणा मिली। अन्त में इस बैठक की बातचीत का स्मरण ही मेरे काम आया। मैंने लम्बी-चोड़ी भूमिका बाँधते हुए कहा कि सबको अपने-अपने जीवन के प्रथम प्रेम की कहानी बिना किसी लाग-लपेट के बतानी पड़ेगी। और यहाँ जी कुछ बातचीत होगी, उसका सर्वाधिकार सुरक्षित रहेगा, यानी घर लौटने पर कोई उसका उल्लेख बताने वाले की पत्नी से न कर सकेगा। महुवे के नीचे होने वाली बात यही रह जायगी।

सुनते ही हँसी का वह फौवारा छूटा कि राजपूतों की गालपट्टियों में बँधी दाढ़ियाँ हिलने लगी। हिज्र हाइनेस तो पुलकित हो गये, और इस प्रस्ताव के नयेपन की तारीफ़ करने लगे। सब लोगों ने हामी भरी। न भरते, तो करते क्या ? पर उस सबसे मुझे क्या लेना-देना ? सब लोग खुश हो गये, यही क्या कम था। मैं अपनी प्रशंसा तो नहीं करता, पर हिज्र हाइनेस समर्थन न भी करते, तो भी और लोग मेरे प्रस्ताव को पसन्द करते, इतना मुझे विश्वास है।

अब प्रश्न यह आया कि कौन सबसे पहले अपने मन के भीतरी कमरे को खोलकर सामने रखे। प्रेम करने से अधिक उसको स्वीकार करना कठिन होता है। कहते हैं कि प्रेम के नाम से ही राजपूत शरमा जाता है। यह शरम लज्जा की पुलक के कारण है, या पत्नी के डर के कारण है, इतनी गहराई तक जाकर समझने की चेष्टा शायद वह नहीं करता।

ठाकुर करणसिंह ने पगड़ी उतारकर अपने सिर पर ज़रा हवा की, फिर उन्होंने मुझी से अनुरोध किया कि मैं ही इस शुभ विषय का श्रीगणेश कहूँ। बोले—हम राजपूतों को प्रेम से क्या मतलब ? घोड़े पर सवार होना, जान दे देना, दूसरे जागीरदारों से लड़कर उनको जागीर का कुछ हिस्सा ले लेना हमारा काम है। हम ऐसे बखेड़ों में भी रहते हैं, जिनमें चार-छः स्त्रियों का सम्बन्ध हो। पर प्रेम का सवाल कहाँ उठता है ?

इस बात को सुनकर सब लोगों ने जैसे शान्ति की साँस ली। सबने बड़े तपाक से वक्ता का समर्थन किया। छिः छिः राजपूत और प्रेम ? इससे तो कही अच्छा है कि जान दे दी जाय। पर मैंने भी कच्ची गोली नहीं खेली थी। मैंने कहा—ऐसी बातों से काम न चलेगा। भला, कोई ऐसा पुरुष हो सकता है, जो कभी न कभी प्रेम में न फँसा हो। कम से कम यह न सोचा हो कि वह इश्क में फँसा है। आप लोगों की मर्दानगी को यह कहते हुए लज्जा नहीं मालूम होती कि आप कही इश्क में नहीं पड़े ?

मर्दानगी का नाम लेकर चुनौती देते ही हिज्र हाइनेस बहुत विचलित हो उठे, मानो सारे राजस्थान की मर्यादा की रक्षा का भार उन पर पड़ा। वे बोल उठे—





आमेर के मन्दिर ।

मैंने एक बात यह समझ ली है कि यदि प्रेम करना है, तो बंगाल ही इसके लिए उपयुक्त क्षेत्र है। उस वार जब मैं वाइसराय साहब की घुड़दौड़ में कलकत्ता गया था, तो मैंने यह बात समझ ली थी। जहाँ लड़कियाँ, चोटी लटकाकर कालेज जाती हैं, ट्राम और बस में अकेली घूमती हैं, यहाँ तक कि सिनेमा में अकेली जाने से नहीं घबड़ातीं, वहाँ प्रेम की सम्भावना है। क्या आपने राजस्थान के किसी शहर में लड़कियों को बाहर घूमते देखा है? इस मरुभूमि में घास तक तो उगती नहीं, फिर प्रेम का पौधा कैसे जमे?

मैं इतनी आसानी से छोड़ने वाला नहीं था, मैंने कहा—स्त्रियाँ रास्ते में तो नहीं निकलतीं, पर भरोखों पर तो आती हैं। खुले मुँह भले ही न दिखाई पड़ें, पर घूँघट के अन्दर से तो दीखती हैं। जिसे अच्छी तरह देख नहीं पाते, भलक मात्र दिखती है, वह अधिक सुन्दर मालूम देती है। दूर के ढोल सुहावने होते हैं, प्रेम का यही पहला पाठ है।

—यानी? बनावटी शोध दिखलाते हुए हमारे मेजबान ने कहा—इसके माने यह है कि हम इश्क करते हैं? कहिए तो फिर से, क्या कहा?

मैंने कहा—यदि नहीं किया, तो आपको करना चाहिए था। परदे के मुल्क में इश्क, यह सुनते ही खून में हिलोरें आने लगती हैं। आप यह नहीं समझते कि बाधा जितनी अधिक होती है, राधा उतनी ही व्याकुल हो जाती है।

पर उन्होंने इस बात को मानने से इन्कार किया। बोले—यह सब कवियों की बातें हैं। हमारे देश में स्त्रियों से सावका ही नहीं पड़ता, फिर प्रेम कहाँ से हो? हम स्त्रियों की मर्यादा की रक्षा के लिए जान लड़ा देते हैं, पर उनसे इश्क नहीं करते। ऐसा करना तो विलकुल अशरारीय है।

अब की बार मैंने खुलकर यह बता दिया कि राजस्थान में स्त्रियों से कब-कब और किन-किन मौकों पर सावका पड़ता है। मैंने कहा—आपके यहाँ विवाह-सम्बन्धी बड़ी अच्छी प्रथाएँ हैं। उदयपुर में विवाह की जो तोरण-तोरणा प्रथा है, उसमें इश्क के लिए कितनी गुंजायश है। व्याह के समय दुल्हिन के घर पर तोरण तैयार किया जाता है। दोनों तरफ लकड़ी के खूंटें गाड़कर उन पर एक तीसरा खूंट लगाकर एक त्रिभुज बनाया जाता है। डरिये मत, मैं चिरन्तन त्रिभुज की तलाश में कुछ कहने नहीं जा रहा हूँ। हाँ, तो उस त्रिभुज पर विभिन्न रंग के कागज और रेशमी कपड़े लगाकर उसकी चोटी पर एक मोर की मूर्ति बैठायी जाती है। इसके बाद यह तोरण ऐन दुल्हिन के घर के फाटक के सामने रखा जाता है। इसके बाद दूल्हा ढोड़े पर सवार होकर हाथ में बछी लेकर वीर रूप में लड़ाई करता हुआ आता है। तोरण तोड़कर दुल्हिन को प्राप्त किया जाता है। आधारभूत बात वही है, जो एक अंग्रेजी

कहावत में कही गई है कि सुन्दरी वीर भोग्या होती है। दुल्हिन के पक्ष की स्त्रियाँ तोरण की रक्षा करती हैं। उनके पैरों में नूपुर बंधे रहते हैं, मानो युद्ध के लिए उत्साह बढ़ाने वाले हों। वे लोग रंगीन लहंगे, श्रोड़निर्या, चोलियाँ, कुतियाँ पहने होती हैं। यह रूप याद आते ही वसन्त की कोयलें कूक उठती हैं। और वे जिन अस्त्रों को धारण करती हैं, वे भी एक से एक पने और जानमाल होते हैं। वे मृटिठियों में पराग भर-भरकर बरातियों पर मार करती हैं। इस पर मनमोहक गाने गाये जाते हैं, जैसे—

तोरण आया रह बर,
धारा रारा काँपे राज।
नेगाँ का नेग चुकांसा,
तब मैं आग आसां।

अन्त तक बड़ी चहल-पहल और खुशी के साथ तोरण तोड़ा जाता है, और लड़कियाँ दूल्हे का रास्ता छोड़ देती हैं। मैंने इन सब बातों का उल्लेख कर कहा—अब बताइये योर हाइनेस, इसमें कितना मौका है ? हाँ, अब यह केवल रस्म ही रस्म रह गया है, फिर भी क्या इतना कम है ?

उधर से उत्तर मिला—फिर भी क्या ? मौका मान लीजिये है भी, तो हम राजपूत इतने छुई-मुई नहीं होते कि देखा और प्रेम में पड़ गये। फिर आप यह नहीं जानते कि तोरण-तोरणा के गीत अकसर द्वयर्थक होते हैं।

मैं मान नहीं सका, मैंने कहा—रानी पद्मिनी की सखियों के वर्णन में आपके कवियों ने जो लिखा है, वह तो कुछ और ही है—

जा सजं वेई हेरंहि चखु नारी,
बाकां नयन जनु हनहि कटारी।

रजवाड़े का जो थोड़ा-बहुत ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ, उससे यह समझ में आता है कि कवि का वर्णन गलत नहीं है।

मेरे मेजवान ने बात पकड़ ली, बोले—साहब, आप जब इश्क के इतने बड़े माहिर हैं, तो आप ही इश्क की कहानी सुना दीजिये—कहकर वे मूर्छों पर ताव देने लगे और सब ने उनका समर्थन किया। मैंने भी सोचा कि कब तक टालूंगा। मैंने ही तो प्रस्ताव रखा था, फिर मैं उसे कैसे टालता ? इन्होंने अतिथि-सत्कार में कोई कसर नहीं रखी, यहाँ तक कि शिकार खिलवाया, फिर मैं कैसे चुप रहूँ ? आफ़त यह थी कि इन लोगो ने बंगाली होने के नाते मुझे हवामख्वाह प्रेम का विगेषज्ञ करार दे दिया था। फिर भी मैंने बहुत कुछ हाथ-पैर मारे, अन्त में यह तब पाया कि मुझे प्रथम प्रेम की कहानी सुनानी पड़ेगी, पर अगर मेरी निजी कोई कहानी नहीं है, तो मैं किसी

और की कहानी सुना दूँ; पर हो कहानी दिलचस्प । मैंने शुरू कर दिया—

तो सुनिये । आप यह समझ सकते हैं कि शायद मैं आपको बना रहा हूँ, पर ऐसी बात नहीं है । एक थे राजकुमारे; नाम न पूछिये । पाँच साल की उम्र में ही उनकी शादी तय हो चुकी थी । उन दिनों वे अपने चाचा—एक अन्य राजा—के घर गये हुए थे । यहाँ दोनों पक्षों के अभिभावकों ने शादी पक्की कर ली । जिनकी लड़की से शादी तय हुई, वे रिश्ते में चाचा लगते थे । आप लोग तो जानते हैं, ऐसी शादी रजवाड़ों में होती है । ऐसी शादियों में जो बात होती है, वही हुई । वर्षों तक दूल्हा और दुलहिन में भेंट नहीं हुई । उधर राजकुमार का सिंहासन भी खतरे में था । उनके पिता मर चुके थे, और चारों तरफ़ गड़बड़ी मची हुई थी । पाँच साल की उम्र में जो शादी तय हुई हो, उसमें प्रेम की आशा कहाँ ? उधर राजकुमार की उम्र सत्रह वर्ष की हो गई । राजकुमारी भी पन्द्रह साल की एक किशोरी के रूप में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी । जब देखा गया कि राजकुमार को किसी बात की सुषबुध नहीं, तो राजकुमारी स्वयं अपने दूल्हे के पास पहुँची ।

यद्यपि विवाह-शास्त्र में यह कहा गया है कि कन्यायें विवाह का प्रस्ताव सुनने के लिए उत्पन्न हुई हैं, न कि करने के लिए । पर ज़माना खराब था । जब दूल्हा नहीं पहुँचा, तो दुलहिन या यों कह लीजिये, वाग्दत्ता प्रेमिका उसके पास पहुँची । व्याह हो गया, पर व्याह की कली खिली नहीं । पति को ऐसा प्रतीत हुआ कि पत्नी के प्रति कर्त्तव्य तो है, पर आकर्षण नहीं । देखने में अच्छी लगती थी, पर प्रेम नहीं था ।

क्या यह लज्जा अथवा साहस का अभाव था, इस बात को राजकुमार स्वयं ही नहीं समझ पाये । पहले-पहल दस-पन्द्रह दिन के अन्तर से भेंट होती थी, फिर यह अन्तर और भी बढ़ गया । इस बीच राजकुमार ने राज्य का भार सम्हाल लिया । राजमाता ने जब अपने बेटे की यह हालत देखी, तो वह बहुत चिन्तित हुई, और इस उदासीनता को साहस का अभाव समझ उसे जबरदस्ती पतोड़ के पास भेजने लगी । फिर भी वह महीने डेढ़ महीने में एक बार भेजने में समर्थ हुई ।

इसी समय राजकुमार के जीवन में बवूरी नाम की एक तरुणी का प्रवेश हुआ । वह विलकुल साधारण घर की साधारण लड़की थी । वह उस किस्म के फूलों में थी, जो सड़क के किनारे खिलते हैं, और लोग उनकी तरफ़ ध्यान भी नहीं देते, पर राजा के जीवन में वह चम्पा, चमेली से बढ़कर रूप लेकर सामने आई । पहली मुलाकात के बाद ही राजा ने अपने रोजनामचे में लिखा—मैं मर मिटा, मैं लुट गया, मैं कहीं का नहीं रहा, मैं उसके लिए मर रहा हूँ—

मन वा वह भेल पैदा करदम ।

बल्कि वागे खुदरा जार व शैदा करदम ॥

अब तक राजकुमारी के लिए उनके मन में जिस पैशन का अनुभव नहीं हुआ था, वह ववूरी के लिए अनुभूत होने लगा। सच तो यह है कि राजा का जीवन इतना डार्वाडोल हो रहा था कि उसे इन बातों का अवकाश नहीं था। अब उन्होंने लिखा—‘मैं प्रेम के आवेश में दीवाना हो गया, मेरा मन स्थिर नहीं रहा, कौन जानता था कि हुस्न हमें किसी मतलब का नहीं रखेगा ?’

एक दिन ववूरी राजा से मिलने आई, पर वे उससे इतना प्रेम करते हुए भी उसकी तरफ़ आँख उठाकर नहीं देख सके। उससे अच्छी तरह बात करके रिझाने की बात तो दूर रही, जाते समय उसे ढंग से विदा न कर सके। जब वह चली गई, तब उनका मन हाहाकार से भर गया कि वे पानी में रहकर भी प्यासे लौट आये। उनका मन अपने वश में नहीं था, फिर क्या करते ? वह सुन्दरी उनके मन को रंग कर चली गई। लौटकर राजा कविता लिखकर अपने मन को हलका करने लगे। एक दिन वे कुछ सभासदों के साथ एक पतली गली के अन्दर से निकल रहे थे, इतने में ववूरी से भेंट हो गई ? पर वे न तो उसकी तरफ़ झुलकर देख सके, और न उससे कुछ कह सके, दिल चूर-चूर हो गया। वे खूद ही शरमाकर अलग हट गये। एक फारसी कवि के वचनों को राजा ने स्मरण किया, जिसमें कवि ने कहा था—‘यदि प्रिया से भेंट हो जाय, तो मैं शरम से गड़ जाता हूँ। मेरे मित्र मेरी तरफ़ ताकते रहते हैं, और मैं दूसरी तरफ़ देखता हूँ।’

मैंने पैशन, इस अंग्रेजी शब्द, का व्यवहार इसलिए किया है कि मेरी धारणा है कि किसी भी देगी भाषा में इस शब्द की सारी व्यञ्जनाओं को भरना सम्भव नहीं है। इसका कारण शायद यह है कि हम प्रेम करते हैं, कामावेग का अनुभव भी करते हैं, पर पैशन में जो शरावोर होने का भाव, आधी रोशनी और आधा अंधेरा है, जो दीवाना बनाने वाला प्रेम है, उसे व्यक्त करने के बहुत कम मौके हमारे इस रक्ताल्पता-युक्त सभ्य सामाजिक जीवन में हैं। इसलिए जिस आवेग को व्यक्त करना ही सभ्य नहीं समझा जाता, साहित्य में व्यक्त करने की भाषा कहाँ से आवे ? जाने दीजिये उस बात को। राजा साहब प्रेम के प्रभाव में राजमहल और राजकीय पोशाक छोड़कर गलियों में और कुञ्जों में भटकने लगे। न उन्हें राजकार्य को समय मिलता और न मित्रों की तरफ़ वे ध्यान देते। जब अपनी ही सुघ नहीं, तब दूसरों को कौन पूछता ?

वह कविता पर कविता लिखने लगे, जिनमें वह कभी तो अपने हृदय को रक्त से सनी गुलाब की कली बताते, और यह कहते कि हजार बहारों की मजाल नहीं कि वे उस कली को खिला सकें, और कभी अपनी दशा पर तरस खाकर अपने हृदय को बुरा-भला कहते।

मैं राजा के प्रेम की कहानी कह ही रहा था कि सन्ध्या उतरने लगी, और महुवे का यह वाग मानो राजा के प्रेम के एक चित्र के रूप में आकाश में खिलकर सामने आया। सबके मन पर वही नशा छा गया, उस रंग ने सब को छू लिया।

इस बीच मैं हिज़ हाइनेस ने सिर से पगड़ी उतार ली थी। मैं भी दम मारने के लिए चाय की चुस्कियाँ लेने लगा। ऐसा मालूम होता था कि चाय में भी राजा के प्रेम का कुछ पुट आ गया है। सब लोग उत्सुक होकर पूछने लगे—फिर क्या हुआ ?

एक ने तो यहाँ तक पूछ डाला—जब इतना प्रेम था, तो शादी क्यों नहीं कर ली ? ज़रा दिमाग को ठिकाने करके वे उससे सांसारिक ढंग से प्रेम करते, तो भी थोड़े दिनों में यह दीवानगी दूर हो जाती।

राव किशनलाल जी को भी कुछ कहना था। वे बोल पड़े—यही है दुनिया। अच्छा साहब, इसके बाद क्या हुआ, यह तो बताइये।

मैंने कहा—होना क्या था ? राजा के जीवन से बबूरी मिट गई। केवल उनके रोज़नामचे के हरफों में उनके प्रेम की सुनहली कहानी गद्य और पद्य में रह गई। और वे क्या करते ?

किसी ने कहा—क्यों ? बबूरी राजवंश की नहीं थी, इसलिए क्या उससे शादी नहीं हो सकती थी ?

मैंने कहा—राजा उसे कभी नहीं भूले। यह प्रेम उनके जीवन में अकस्मात् घूमकेतु की तरह आगया था और उल्का की तरह हट गया, पर पाँच साल बाद राजा ने लिखने की एक नयी शैली चलाई, जिसका नाम उन्होंने बबूरी-शैली रखा।

—यह सब तो हुआ, पर उन्होंने उससे शादी क्यों नहीं की ? भला वह प्रेम कैसा था, जिसके वे दीवाने थे, पर उस लड़की से शादी न कर सके।

मैंने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—यह सम्भव नहीं था, क्योंकि बबूरी पुरुष था।

इस संक्षिप्त उत्तर से सब हतबुद्धि रह गये। किसी से कुछ कहते न बना। पर हमारे मेज़वान ने कहा—यह तो बताइये कि किस राजा ने ऐसा अद्भुत प्रेम किया था। मुझे भरोसा है कि मैं उसे पहचान लूँगा। पर यदि आपके लिए निषेध हो, तो न बतायें। आप पहाड़ और मरुभूमि आदि की बात कह रहे हैं, इससे मैं अनुमान करता हूँ कि यह राजस्थान की ही बात होगी।

इस पर मैंने कहा—नहीं, आपका अनुमान सही नहीं है। यह न तो राजस्थान की घटना है, और न इस युग की घटना है। मध्य एशिया के तुर्किस्तान के फरगना चखताई के तुर्की राजा बाबर की कहानी है। आज से साढ़े चार सौ वर्ष पहले की बात है। बाबर ने स्वयं अपनी आत्मजीवनी में इस घटना का वर्णन लिखा है।

—वाह ! आप तो खूब रहे । राजस्थान में आकर आपने राजस्थान के दुश्मन की कहानी सुना दी ।

मैंने कहा कि हाँ, ऐसा तो मैंने किया । मैंने यह भी कहा है कि राजस्थान में आकर उसके दुश्मनों की बात सबसे अधिक याद आ रही है । यहाँ आने पर ही यह पता लगता है कि क्यों राजस्थान भारत के इतिहास को पलटने में समर्थ नहीं हुआ । यदि बाबर को राजपूत हरा सकते, तो भारत का इतिहास और ही होता । हमें अपने को शत्रुओं के दृष्टिकोण की कसीटी पर कसना चाहिए ।

जिस युग, जिस देश, जिस समाज में नारी का स्थान बहुत नीचे था, विवाह एक सांसारिक जरूरत या राजनैतिक सुविधा मात्र थी । प्रेम अनावश्यक विलास या बहुत अधिक हुआ, तो पौरुष का परिचय मात्र था । उस देश तथा युग की परिस्थिति में इस कहानी को जाँचकर देखना पड़ेगा । यदि इसे अस्वाभाविक कहकर मुँह मोड़ लिया जाय, तो इसके काव्य-सौन्दर्य की उपेक्षा होगी । इस युग के आस्करवाइल्ड रचित 'होरियन ग्रे का चित्र' नामक पुस्तक में पुरुष के प्रति पुरुष के प्रेम की कहानी कही गई है । पर इन दोनों कहानियों की तुलना करने पर भारत के मुगल साम्राज्य के प्रतिष्ठाता बाबर की लेखनी की तारीफ़ करनी पड़ती है, यद्यपि उनके जीवन का अधिकांश भाग लेखनी नहीं हाथ में तलवार लेकर बीता ।

सवाई राजा जयसिंह की कहानी

सम्राट् औरंगजेब के चेहरे पर एक क्रूर हँसी खेल गई । पराक्रमशाली अम्बरवंश के भावी नरेश को बिना लड़ाई तथा बिना कुछ परिश्रम के अंकुर में ही नष्ट कर देने का अच्छा मौका हाथ लगा ।

उसके हाथ कुछ करने को व्याकुल हो उठे । उसकी राय में अम्बर राजवंश बढ़ा खराब और बढ़ा नमकहराम था । नासमझ परदादा अकबर इन लोगों को बहुत बढ़ा गये थे । सब बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में, आसाम से काबुल तक सर्वत्र मानसिंह को प्रधान सेनापति बनाकर भेजने की ज़रूरत क्या थी ? फिर उसको बंगाल, बिहार, उड़ीसा यहाँ तक कि दक्षिण में सूत्रेदार बनाकर क्यों भेजा गया ? मानसिंह को इतना अधिक बढ़ाने के कारण ही एक दिन इसकी नौबत आई थी कि उसे ज़हर देकर मारने की चेष्टा की गई । बूंदी के इतिहास में लिखा है कि हमारे नासमझ परदादा अकबर ने माजम में ज़हर मिलाकर मानसिंह को देना चाहा था । पर ग़लती से जो मिठाई मानसिंह को देनी थी, उसे वे स्वयं खा गये, और उसी से वे मरे । पर मुग़ल दरबार के इतिहासकारों ने ऐसा नहीं लिखा । फिर भी यह चाल हमारे लिए नयी नहीं ।

इसके अलावा राजा मानसिंह ने मेरे दादा सलीम को प्रायः तख़्ताऊस-हीन कर दिया था । खैरियत यह हुई कि राजपूतनी का बेटा खुसरू दिल्ली की गद्दी पर बैठ न पाया, नहीं तो कितना भारी अनर्थ हो जाता । हमारे इस पवित्र चरातई तुर्की वंश का क्या होता ?

औरंगजेब के चेहरे पर बादल छा गये ।

मानसिंह ने बुद्ध अकबर को खूब परेशान किया था । पर उनसे भी बुद्ध शाहजहाँ को अपनी राजपूत-तोषण-नीति के कारण बहुत कष्ट उठाने पड़े । यहाँ तक कि तमाम हिन्दुस्तान के मालिक मुझ शाहंशाह को भी इतने दिनों तक किसके कारण इतना दुःख भोगना पड़ा है ? मिर्जा राजा जयसिंह के कारण ही मुझे इतनी परेशानी उठानी पड़ी । इस राजा की बात सोचते ही इतनी खीभ होती है कि अपनी ही दाढ़ी उखाड़ डालूँ । मेरे वालिद के समय दरबार में इसकी कितनी चलती थी । इस शैतान ने काफ़िर दारा की सहायता की थी । गद्दी के लिए लड़ाई के समय एक इसी राजा का मुझे डर था । अल्लाह का शक्र है कि राजा ने अन्त तक मेरे विरुद्ध लड़ाई नहीं की । असली लड़ाई के समय चालाकी से छटक गया था । फिर भी क्या कम शैतान

है। पहाड़ी चूहा शिवा जी मेरे एंजे से छूट गया, इसके पीछे न सही उसकी साजिश, पर उसकी नालायकी जरूर है।

औरंगजेब का चेहरा तमतमा उठा।

इतना ही नहीं। राजा जयसिंह के पीछे बाईस हजार सवार और बाईस सरदार हैं, इसलिए वह अपने को न मालूम क्या समझता है? हिन्दुस्तान का बादशाह उसकी आंखों में कोई चीज नहीं, यद्यपि मैंने ही उसे छः हजार का मनसब दिया है। अम्बर के दरबार में बैठकर यह नमकहराम छः हजार का मनसबदार दो हाथों में काँच के दो गिलास नचाता और जैसे कहता रहता है कि इनमें से एक सत्तारा है, और दूसरा दिल्ली, जिसे जब जैसे चाहूँ, रखूँ, और जिसे जब चाहूँ चकनाचूर कर दूँ। कहता है कि ये दोनों कुछ नहीं हैं।

सोचकर औरंगजेब दाँत पीसने लगा। अच्छी बात है, इसका बदला लिया जायगा। राजा जयसिंह के छोटे लड़के को अम्बर की गद्दी का लोभ दिखाकर राजा को जहर दिलाया जायगा। पर अन्त तक मैं बड़े लड़के को ही गद्दी पर बैठाऊँगा, जिससे कि वह बाप की दुर्दशा की याद कर ठीक ढंग से चले। छोटे राजकुमार को भी अम्बर का एक टुकड़ा दे दूँगा, जिससे दोनों में वैमनस्य बना रहे, और राज्य कमजोर रहे। इस प्रकार मुगलों को किसी बात का डर नहीं रहेगा।

अम्बर वंश का यह वच्चा इस समय मेरी मुठ्ठी में है। चाहूँ तो इसे यमुना में डुबा दूँ, जिससे कछवाहा वंश के वच्चे कभी भी दिल्ली की राजगद्दी में रोड़ा न अटका सकें।

सम्राट् के चेहरे पर क्रूर हँसी भलकी। गर्जन और वर्षा के बदले केवल बिजली कौदने लगी।

आगरा के लाल किले की छाया में यमुना के नील जल पर सन्ध्या समय नौका विहार करते समय औरंगजेब इन बातों को सोच रहे थे। साथ में केवल कुछ विश्वस्त अमीर थे, और साथ ही उनके लाड़ले अम्बर-राजकुमार जयसिंह भी थे। वे उस बालक से और भी प्यार जताते हुए उसे पानी की तरफ लटकाकर पानी में भुलाते हुए बोले—अच्छा बेटा, अगर मैं तुम्हें इस समय छोड़ दूँ, तो क्या होगा?

बालक तैरने में पटु न था, पर दरबारदारी में पटु था। वह जानता था कि इस समय उसे लटकाने वाले दो तगड़े पर अविश्वासी हाथों के अतिरिक्त उसका कोई सहारा नहीं, नीचे है यमुना का काला पानी।

राजकुमार बोला—शाहशाह जब हम लोगों में शादी होती है, तो एक हाथ दुलहिन के हाथ में रहता है और हम यह समझते हैं कि दुनिया के सारे झमेलों से हमेशा के लिए छुट्टी मिल गई। पर मुझे तो एक हाथ के बजाय दो हाथों का आश्रय

मिला है, और वह भी किसके हाथ ? स्वयं दिल्लीश्वर के हाथ । दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों वा, फिर मुझे किस बात की फिक्र है ?

फौरन ही श्रीरंगजेव की आँखों में जो हिल चमक थी, वह जाती रही । मुगल सम्राट के मन में वीर की महत्ता का बोध जाग उठा । सम्राट ने लड़के को पानी पर लटकाये हुए कहा—बेटा ! तुम बच्चे नहीं हो, तुम तो आदमी से भी सवा हो । तुम जयसिंह नहीं, सवाई जयसिंह हो ।

उसी दिन से जयपुर के सब राजाओं के नाम के आगे सवाई की उपाधि लगती है । उस दिन पहले-पहल सवाई जयसिंह शब्द बना । क्या यह कहानी सच्ची है ?

मैंने अपने अध्यापक मित्र से पूछा कि असलियत क्या है ? वे प्रमाणिक जयपुरिया थे । पुस्त-दर-पुस्त यही रहते आये थे, और हाल ही में स्थापित राजपूताना विश्वविद्यालय के अध्यापक थे, पर इतिहास के नहीं ।

इसीलिए मैंने विशेषकर पूछा । उन्होंने हँसकर कहा—आप तो लगता है, हिसाब लगाकर इतिहास की सचाई को जाँचना चाहते हैं । आप तो जानते होंगे कि हम लोग यहाँ जिस शास्त्र की आलोचना करते थे, वह ज्योतिष था, अंकगणित नहीं ।

—पर ज्योतिष में भी तो अंकगणित की जरूरत पड़ती है ?

पढ़ने दीजिए, पर उस शास्त्र के बल पर नील आकाश में मुक्त विचरण किया जा सकता है । इस आकाश में न मालूम कितनी कहानियाँ तथा कितने चारणों के गान तँरते रहते हैं । वही राजस्थान की सत्य घटनाएँ हैं । जिस घटना से किसी क्रोम के मन का सच्चा परिचय मिलता है, वही उसका असली इतिहास है ।

—जो घटित होता है, वही एकमात्र सत्य नहीं है, आपने यह बहुत ठीक बात कही ।

ऐसा ही सुविधाजनक दार्शनिक मनोभाव बनाकर सवाई राजा जयसिंह अपने समय के अशान्तिमय वातावरण से दूर रह सकते थे । अठारहवीं सदी के भारत में कहीं शान्ति न थी । किसी भी राज्य में लोग बिना विपत्ति के शान्तिपूर्वक दिन नहीं काट सकते थे । राजा-प्रजा में बहुत अधिक प्रेम या सहानुभूति का सम्बन्ध न था । राजाओं में आपस में एक सम्बन्ध जरूर था, पर वह था साजिश कर के दूसरों को ठगने तथा पराये राज्य को लूटने या उसे जीतने का, भारत में कोई ऐसी सार्वभौमशक्ति न थी, जो दूसरों की रक्षा कर सकती । मुगलों का शासन बुझता हुआ चिराग था, और मराठाशाही एक ऐसे चिराग के रूप में थी, जिससे घर में आग लगती थी । भाइयों या रिश्तेदारों की लड़ाई बड़े-बड़े राजघरानों की कुलरीति थी । बाहर से बराबर विदेशी लुटेरे आते, और उत्तर भारत का तहस-नहस करके चल देते । इस वातावरण में शास्त्र या कला का अनुशीलन किस प्रकार हो सकता था, और कौन उसमें सिर खपाता ?

पर एक व्यक्ति इन समस्याओं पर विचार किया करता था। वह थे सवाई राजा जयसिंह। मराठा की उछल-कूद तथा नादिरशाही तूफान से उनके मानसरोवर में कोई उथल-पुथल नहीं मची। उन्होंने बड़ी चतुरता से जयपुर को इन झगड़ों से अलग रखा और वे स्वयं उस सरोवर में राजहंस की तरह विहार, और तरह-तरह की शास्त्र-चर्चा, समाज-सुधार, शोध और खोज तथा गिन्य को सहायता करते रहे। फिर भी वे राजनीति में किसी से कम प्रवीण न थे।

हम अम्बर में इस समय जिन विराट पहाड़ी किले और राजमहल को देखते हैं, और जिस आधुनिक जयपुर की हम प्रशंसा करते हैं, वे वास्तव में सवाई राजा जयसिंह के कीर्ति-स्तम्भ हैं। जयपुर, दिल्ली, मथुरा, काशी और उज्जयिनी में हम जो मान मन्दिर देखते हैं, जिनकी प्रशंसा आधुनिक ज्योतिर्विद्या विशारदों ने की है, वे भी सवाई जयसिंह की अमर कीर्ति हैं। उन्होंने ज्योतिर्विद्या में जिन सिद्धान्तों की स्थापना की थी, आज भी सभी भारतीय पंचांग तथा ज्योतिष-गणना में उन्हीं पर निर्भर करते हैं। उन्होंने यूनानी ज्यामिति-विद् यूक्लिड की रचनाओं से लेकर बहुत से पाश्चात्य गणितज्ञों की रचनाओं का संस्कृत में अनुवाद कराया। वे समरकन्द के राज्य-ज्योतिषी उलुगवेग के गणना सम्बन्धी सिद्धान्त में संतुष्ट न हो सके, इसलिए सात वर्षों तक स्वयं निरीक्षण करते रहे, और अन्त में गणना के सम्बन्ध में एक स्वतन्त्र सिद्धान्त स्थापित किया। उस अन्धकार युग में जब समझा जाता था कि समुद्रयात्रा करने से धर्म नष्ट होता है, उन्होंने पुर्तगाल के राजा इमैनुएल के दरबार में अपने यहाँ के शिक्षार्थी भेजे, और वहाँ से ज्योतिषी बुलवाये।

यह न समझा जाय कि उन्होंने विशुद्ध ज्ञान-विज्ञान की चर्चा में ही जीवन काट दिया। उन्होंने कई आवश्यक सामाजिक सुधारों के लिए भी प्रयत्न किये। हम अंग्रेजों के लिखे इतिहासों में पढ़ते हैं कि लॉर्ड वैन्टिक ने सती-दाह बन्द कराया, पर वैन्टिक से बहुत पहले गृह-युद्ध और बाहरी आक्रमण के अत्यन्त अशान्तिमय वातावरण में भी केवल अम्बर के राजा होते हुए भी इन्हीं सवाई पुरुष ने सारे राजस्वान में सती-दाह बन्द कराने के लिए एक नीति शास्त्र रचा और उसके प्रचलन का प्रयास किया। दहेज का परिमाण बहुत अधिक होने के कारण राजपूत अपनी लड़कियों को पैदा होते ही मार डालते थे। सवाई जयसिंह ने इसलिए विवाह-प्रथा में भी सुधार का प्रयास किया। श्रीरंगजेव ने हिन्दुओं पर जो जजिया कर लगाया था, वह उन्हीं के प्रयत्न तथा प्रभाव से हटा लिया गया था। नवजाग्रत मराठा शक्ति उन्हीं की सहायता से पहले-पहल उत्तर भारत में आने में समर्थ हुई थी।

बहुत से विदेशियों और विधर्मियों के सम्पर्क में आने पर भी सवाई राजा जयसिंह सोलहों आने हिन्दू थे, पर वे ऐसे हिन्दू नहीं थे कि दूसरों के मत या सिद्धान्त में अच्छी

चीज को देख न पावें। उनकी नजरों में जैनी, मुसलमान, ईसाई सब बराबर थे। सबके शास्त्रों में वे सत्य की खोज करते थे। असली ज्ञानी का लक्षण यही है। यूरोप में नगर-निर्माण-योजना का प्रारम्भ हो रहा था, पर उन्होंने बंगाल से विद्याधर भट्टाचार्य को बुलाकर उनकी सहायता से जो नगर बनवाया, उसमें रास्तों की परिधि तथा समान दूरी पर निर्माण का जो सिद्धान्त अपनाया गया है, उसके मुकाबले में अभी तक पाश्चात्य नगर-निर्माण इस दृष्टि से कुछ उन्नति नहीं कर सका। जयपुर के हल्के गुलाबी रंग के शिल्प में जहाँ सौन्दर्य है, वही व्यावहारिकता भी है, इसलिए वह आज भी दुनिया के लोगो का ध्यान खींचती है। नगर के बाजार के बीच हवा महल की कला ऐसी है मानो एक स्वप्न मूर्त हो गया हो।

राजपूतों की साड़ी और पगड़ी की सुन्दर रंगाई और पीतल तथा दूसरी धातुओं पर नक्काशी में जयपुर का नाम उसी समय से फैलने लगा। जयपुर अपने संगमरमर शिल्प के लिए बहुत पहले से प्रसिद्ध था, पर अम्बर के गढ़ और राजमहल के प्रसार और जयपुर के नये नगर के निर्माण में जो सवाई जयसिंह के समय हुआ, उसमें चार चाँद लग गये, और जयपुर शिल्प की एक नयी शैली बन गई।

जयपुर की दूरदर्शी राजनैतिक प्रतिभा के सम्बन्ध में हमारे अध्यापक मित्र ने जो कहानी सुनाई, उसकी परिपोषक एक घटना पहले-पहल सवाई राजा जयसिंह के राज्यकाल में ही घटित हुई थी। मुगलो ने बराबर भेद-नीति से हिन्दू राजाओं को परास्त किया, और हिन्दू राजाओं में राष्ट्रीयता तो दूर रही, हिन्दू भावना भी नहीं रही, इसलिए वे मुसलमानों की भेद-नीति में भी सहायक सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त बहु-विवाह की प्रथा होने के कारण सौतेले भाइयों में यहाँ तक कि सहोदर भाइयों में बराबर युद्ध होता रहा, और राजपूत राजा दुर्बल और अक्षम बने रहे। सवाई राजा के क्षेत्र में भी उसी कूटनीति की पुनरावृत्ति हुई।

जयसिंह और विजयसिंह सौतेले भाई थे। यदि छोटे भाई को चाणक्य प्रचारित साम, दाम, दण्ड और भेद-नीति ज्ञात हो, तो वह इस महाविद्या के भरोसे सिंहासन पर अधिकार जमा सकता था। मुगल सम्राटों के क्षेत्र में यही हुआ था, इस बात को विजयसिंह ने अच्छी तरह देख लिया था। इसलिए विजयसिंह ने सम्राट के दरबार में दाम-नीति से काम लिया और सम्राट के वजीर को जवाहरात भेंट कर अम्बर राज्य के एक-तिहाई सबसे उपजाऊ हिस्से पर अपना दावा दायर कर दिया। सवाई राजा ने जब देखा कि और कोई चारा नहीं, तो उसने वजीर के हुक्म को तामील किया। तब और भी पाँच करोड़ रुपये और पाँच हजार घुड़सवार सेना को देकर—विद्वान् पाठक इसे रिश्तेत न कहेंगे, ऐसी आशा है—विजयसिंह ने पूरे अम्बर पर ही अपना दावा पेश कर दिया, और मुगल दरबार में सनद तैयार होने लगी।

पर जयसिंह एक व्यक्ति नहीं, बल्कि सवा थे, इसलिए वे सहज बुद्धि से समझ गये कि दान के जवाब में दान देने से पांसा ठीक न पड़ेगा। अब चाणक्य की दूसरी नीति याने भेद-नीति चलनी चाहिए। उन्होंने सब सरदारों को निमंत्रण देकर बुलाया, और यह कहा कि मैं आप लोगों की इच्छा से ही गद्दी पर बैठूँ, और अब सम्राट् के वजीर साहब की यह इच्छा है कि मेरे भाई गद्दी पर बैठें, इसलिए अब जो प्रभु की मर्जी है, वही हो, मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं।

अम्बर के वारह प्रधान सामन्तों को यह आश्वासन मिला कि जयसिंह विजयसिंह के लिए एक-तिहाई राज्य छोड़ देगे। उन्होंने विजयसिंह के पास यह सदेशा भेजा, साथ ही यह भी कि यदि जयसिंह ने अपनी बात न रखी, तो वे खुद विजयसिंह को अम्बर की गद्दी पर बैठाने देंगे।

अन्त में काफ़ी फ़ौज-फाटे के साथ विजयसिंह को एक तिहाई राज्य पर अधिकार करने के लिए भेजा गया। सरदारों ने चाहा कि इस मौके से लाभ उठाकर दोनों भाइयों में सचमुच मेल करा दिया जाय। विजयसिंह को इस बात के लिए राजी होना पड़ा, क्योंकि विशाल हृदयता के उत्तर में विशाल हृदयता यह राजपूत धर्म था। फिर भी शेर की माँद में घुसकर सवाई सिंह के साथ दोस्ती और मिलन नहीं हो सकता। इसलिए कुछ मील की दूरी पर एक पहाड़ी किले के पास विजयसिंह ने तम्बू गाढ़े। जिस समय जयसिंह भाई से मिलने के लिए रवाना हो रहे थे, उस समय नाजिर ने आकर उनके हाथ में एक पत्र दिया। राजमाता ने इस पत्र में यह लिखा था कि वे दोनों लाल जी के मिलन का दृश्य अपनी आँखों से देखना चाहती हैं। इस पर डबडवायी आँखों से सवाई राजा ने सामन्तों की ओर देखा। रँधे हुए कण्ठों से सबने इस शुभ प्रस्ताव का स्वागत किया। सब लोगों ने कहा—ज़रूर-ज़रूर।

सवाई राजा के लोगों ने तैयारी शुरू की। बात यह है कि राजमाता की सखियों की सेना भी थोड़ी न थी। उनके लिए परदों से घिरे तीन सौ रथ सजाये गये। दो-दो स्त्रियाँ एक-एक रथ में थी। छः मील लम्बी डगर में प्रजा की भीड़ उमड़ी पड़ती थी। सब लोग इस बात के लिए दोनों भाइयों की जय बोल रहे थे कि अब भाइयों में मेल होगा। रांस्ते में जमा लोगों को रुपये-पैसे लुटाये जा रहे थे। अम्बर राज्य के इतिहास में आनन्द की ऐसी शुभ घड़ी कभी नहीं आई थी।

सन्देशवाहक दूत ने आकर जमीन तक झुककर, सीने पर हाथ रखकर यह निवेदन किया कि राजमाता गढ़ के राजमहल में आ पहुँची हैं। राजा और सामन्त वहाँ आने के लिए तैयार हो गये। दोनों भाई सँभ्रासे होकर प्रेमालिंगन में बैठ गये। जयसिंह ने भाई के हाथ में एक-तिहाई की सनद देते हुए रँधे हुए कण्ठ से कहा—भाई, यदि तुम्हारी इच्छा है, तो अम्बर का सिंहासन ले लो। हाँ, यदि चाहो, तो मेरे खर्च के

लिए एक जागीर दे दो ।

राजपूत होकर कोई किसी से उदारता में पीछे कैसे हटता ? विजयसिंह ने उससे भी अधिक उदारता दिखाकर कहा—मे कुछ नहीं चाहता, वस, मुझे तुम माफ कर दो ।

अब विदाई का समय आया । इतने में नाजिर ने आकर खबर दी कि यदि सामन्त हट जायें, तो राजमाता आकर दोनों भाइयों को आशीर्वाद दे जायें । जयसिंह अब-तक सैन्यासे बने हुए थे, बोले—बारह घरानों की जो राय होगी, वह उनके लिए शिरोधार्य है ।

बारह घरानों ने यह इच्छा प्रकट की कि दोनों भाई राजमाता के पास चले जायें, और आशीर्वाद लें । इस पर दोनों भाई हाथ पकड़कर चले । ड्योढ़ी के सामने जयसिंह ने कहा—माता से मिलते समय इसकी क्या जरूरत ? कहकर उन्होंने अपनी तलवार निकालकर एक खोजा सन्तरी को दे दी । विजयसिंह भी पीछे क्यों रहते । उन्होंने भी ऐसा ही किया ।

उनके पीछे नाजिर था, उसने दरवाजा भेड़ दिया । राजमाता और दो भाई, दो आपस में लड़ने वाले भाइयों का पुनर्मिलन, कितना सुन्दर दृश्य था ! राजा रामचन्द्र से अवतीर्ण कुशध्वज वंश के ऐतिहासिक राजपरिवार के भगड़े का अन्त होने वाला था । बाहर सामन्त प्रतीक्षा कर रहे थे । इस बीच राजमाता धीरे-धीरे अपनी छः सखियों के साथ अम्बर लौट चली ।

पर वह राजमाता नहीं थीं । राजमाता के भेष में मल्लवीर सेनापति था । और राजमाता की सहेलियों के रूप में जो लोग थे, वे पुररक्षक सिपाही थे । राजमाता के साथ याने राज सेनापति के साथ अब हाथ-पैर बँधे बन्दी विजयसिंह थे । विशाल शरीर वाले राज सेनापति ने पलक मारते ही विजयसिंह को गिराकर बन्दी कर लिया था ।

अम्बर के पहाड़ी किले में बन्दी के पहुँचने की खबर पाने के बाद जयसिंह अकेले सामन्तों के सामने आये । सब लोग पूछने लगे कि विजयसिंह कहाँ गये ? जयसिंह ने इसके उत्तर में कहा—वह मेरे पेट में हैं । स्वर्गीय महाराज के दो पुत्र हैं । मैं उनमें से ज्येष्ठ हूँ । यदि आप समझते हैं कि विजयसिंह को राजा बनना चाहिए, तो आप मुझे मार सकते हैं ।

सामन्तगण इसका कोई उत्तर नहीं दे पाये । फिर भी विश्वासघात से वे चिढ़े हुए हैं, इस बात को जयसिंह समझ गये, इसलिए उन्होंने कहा—मैंने आप लोगों के लिए ही यह पाप किया है । विजयसिंह के राजा होने पर उसके साथ आये हुए मुगल वज़ीर के छः हजार पठान देश को लूटते रहते, और आपके पल्ले कुछ न पड़ता ।

सामन्तगण परिस्थिति को समझकर लौट गये । दिल्ली की ओर से जयसिंह के साथ जो अन्याय किया गया था, उन्होंने अपनी कूटनीति से उसका निराकरण कर दिया । उनके इस कौशल के कारण जयपुर को कभी पछताना नहीं पड़ा । सच तो यह है कि उस युग में उनकी तरह का राजनीतिज्ञ, कानून बनाने वाला, शास्त्रज्ञ और वैज्ञानिक नहीं मिलता ।

हिन्दू केवल दार्शनिकता में डूबे रहते हैं । सांसारिक जीवन में वे तिलतिलकर मिटते रहते हैं, सशक्त होने पर भी शत्रु के मुकाबले में ठहर नहीं पाते । पर सवाई राजा जयसिंह में दार्शनिकता और व्यावहारिकता का अद्भुत सम्मिश्रण था । हिन्दुओं में इतिहास लिखने की प्रथा नहीं है, पर उन्होंने अपनी पुस्तक में सारी उल्लेखनीय घटनाएँ लिखवा दी हैं । जब वे मरे, तो तीन पत्नियाँ यहाँ तक कि कई उपपत्नियाँ उनके साथ चिता पर चढ़ीं । पर इस बात को राजस्थान के किसी व्यक्ति ने नहीं समझा कि उनकी मृत्यु के साथ-साथ बहुत-सी विद्याएँ भी चिता पर चढ़ गईं ।

राजपूत का युद्ध-वर्णन

अम्बर के साथ बंगालियों का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसीलिए शायद इसे राजपूतों के आभेर कहने पर भी बंगालियों ने अम्बर के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा।

मुगल युग में बंगाल बारह भुइयों में विभक्त था। वहाँ ऐसा कोई व्यक्ति पैदा नहीं हुआ, जो इन सब भुइयों को मिलाकर भागती पठान-शक्ति तथा उदीयमान मुगल-शक्ति को हटाकर बंगाल को स्वतन्त्र करता। मुगल पठानों के युग में एक-एक कर सभी भुइयों ने इन शक्तियों से लोहा लिया, पर वे हार गये। राजा प्रतापादित्य भी इसी प्रकार हार गये, और मानसिंह ने उनकी कुल प्रतिमा यशोरेखरी की मूर्ति को ले जाकर अम्बर में स्थापित किया।

एक अनुश्रुति यह भी है कि मानसिंह पहली बार प्रतापादित्य से हार गये, पर उन्होंने स्वप्न देखा कि पास ही में काली माई मिट्टी के नीचे गड़ी हुई है, और मानसिंह उन्हें निकालकर उनकी पूजा करें, तो वे युद्ध में सफल हो सकते हैं। मानसिंह ने ऐसा ही किया, और वे लड़ाई में जीत गये। बंगाल-विजय के बाद मानसिंह ने इस मूर्ति को अम्बर में प्रतिष्ठित किया। पर यहाँ मूर्ति का नाम यशोरेखरी नहीं, शिल्लादेवी है।

फिर भी यह ध्यान देने योग्य है कि मूर्ति के साथ बंगाली पुजारी आये, और उन्हीं के वंशधर अभी तक पहाड़ी किले के मन्दिर में पुजारी का काम करते हैं। अम्बर में इतने मन्दिर हैं कि यह स्थान गिरि-दुर्ग होने के साथ-साथ गिरि-मन्दिर भी है।

एक बंगाली और उसकी सहधर्मिणी जमीन तक झुककर बंगाल के बाहर आई हुई मूर्ति को प्रणाम कर रहे थे। दोनों गरद नामक लाल रेशमी वस्त्र पहिने थे। हाथ में ताम्रपात्र में लाल चन्दन, और लाल जवा फूल थे। चरणों पर मुट्ठियाँ भर-भर लाल जवा फूल पाकर क्या माँ को अपने श्यामल बंगाल की याद आ रही थी? इच्छा हुई कि मन ही मन पूछूँ, पर मन्दिर के दरवाजे की दीवार पर संगमरमर में बने हुए हरे केले के पौधों की तरफ़ में घूरता रह गया।

युद्ध के फलस्वरूप मूर्ति प्राप्त करने की और एक कहानी जयपुर के इतिहास में है।

सवाई राजा की प्रधान कमजोरी यह थी कि वे पियक्कड़ थे। अम्बर के

राजलेखकों ने उनकी प्रिय शराबो का तैयार करने के ढंग पर कुछ नहीं लिखा। यह कला भी बाकी सब सुकुमार कलाओं की तरह एक कला है। कोई एक हजार वर्ष पहले प्राच्य और पाश्चात्य अनेक विद्याओं में पारंगत गुराणी विद्वान् अलवरूनी ने हिन्दुओं की अपनी विद्याओं और कलाओं को छिपा रखने की मनोवृत्ति की तीव्र निन्दा की थी। अलवरूनी शब्द का अर्थ ही विदेशी है, वे यहाँ इसी नाम से पुकारे गये, और शिक्षार्थी होने पर भी भारतीयों ने उन्हें बहुत कम बातें सिखाई। कुछ हो, सर्वाई राजा जयसिंह ऐसी शराब पीते थे जिससे बढ़कर उत्तेजक शराब कहते हैं राजस्थान में भी नहीं मिलती थी। जिस समय राजा नशे में होते थे, उस समय उनके सामने कोई राजकाज लाना निषिद्ध था। कई बार ऐसा भी हुआ कि प्रार्थीगण राजा से साफ कह देते थे कि वे स्थिरमति राजा से फैसला चाहते हैं, न कि शराबी राजा से। शराबी राजा के बदले स्थिरमति राजा से आवेदन की कहानियाँ तो बहुत मिलती हैं। यहाँ इसके विपरीत स्थिरमति के बदले शराबी राजा से आवेदन की एक कहानी दी जाती है।

एक दिन की बात है कि जब राजा सर्वाई जयसिंह अम्बर के शीश महल में प्याले पर प्याले चढा रहे थे, वीकानेर के राजा भक्तसिंह के दूत ने आकर उनसे मिलना चाहा। पर ऐसे समय किसी को मिलने का अधिकार न था। हाँ, बंगाली प्रधान मंत्री विद्याधर का असीम प्रभाव था। उन्हीं की सहायता से दूत को यह मौका मिला कि वह राजा साहब के निकट अपनी अर्जी पेश करे। वह खड़े-खड़े कुछ निवेदन करना चाहता था।

निवेदन भी भक्तसिंह के पत्र में लिखा था। मारवाड़ के महाराजा अभयसिंह और वीकानेर के राजा भक्तसिंह भाई-भाई थे। वीकानेर मारवाड़ का ही छोटा अंश था। बंगाली जमींदारों में कुछ दिन पहले तक दो भाइयों में लड़ाई का फैसला लाठियों से होता था। इसलिए यदि राजपूतों के देश में राजाओं में यही तरीका प्रचलित था, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात ?

वीकानेर के भक्तसिंह मारवाड़ के राजा के प्रति यथेष्ट सम्मान प्रदर्शित कर रहे थे, इसीलिए अभयसिंह ने भाई के राज्य पर आक्रमण कर उस पर घेरा डाल दिया था। भक्तसिंह ने अपने निवेदन में लिखा था कि वे जयपुर के भगत राजा जयसिंह के अलावा और किसी के सामने सर नहीं झुका सकते। इसलिए यह अनुरोध किया गया था कि वे चलकर भक्तसिंह की सहायता करें।

शराब के साथ-साथ अहं ने जोर मारा, और जयसिंह ने पानपात्र (प्याला) छोड़कर मसीपात्र (दावात) पकड़ा, और अभयसिंह को लिखा कि वे फौरन वीकानेर का घेरा उठा लें। दावात सामने से हट गई, और प्याला फिर सामने गया, इतने में ने कहा—महाराज ! इसमें इतना और लिख दें कि मेरा नाम जयसिंह है।

फिर शराब ने जोर किया, और जयसिंह ने मूछो पर ताव देकर वही काम किया। पलक मारते ही दूत वहाँ से रवाना हो गया, और उसने अम्बर के बाहर जाकर ही साँस ली। सन्देश अभयसिंह तक पहुँचाया गया, तुरन्त उसने उत्तर भेजा— तुम कौन होते हो, मुझे हुक्म देने वाले। यह हमारे राज्य का अन्दरूनी भगड़ा है, इसके बीच में पड़ने वाले तुम कोई नहीं हो। यदि तुम्हारा नाम जयसिंह है, तो मेरा नाम भी अभयसिंह है।

वस, युद्ध के नगाड़े घोर रव करते मारवाड़, बीकानेर और अम्बर में वज उठे। अभयसिंह ने बीकानेर का घेरा उठा लिया, और वह जयसिंह के साथ लड़ने के लिए सन्नद्ध हो गया। सबसे मजे की बात यह हुई कि भक्तसिंह भी जयसिंह के साथ लड़ने के लिए आगे बढ़ आया। इसी को कहते हैं, होम करते हाथ जलना। ऐसी बात राजपूताने के लिए आश्चर्य की नहीं। राजपूतो में गोत्रों का प्रभाव और किस वन्धन से ज़बर्दस्त था। इसलिए एक राठौर के अपमान की सम्भावना से भक्तसिंह एकाएक भ्रातृभक्त बन गये, और बोले कि मैं अकेला ही जयसिंह को मारवाड़ के बाहर कर आऊँगा। पर अभयसिंह साजिश में कम नहीं थे, इसलिए उन्होंने इस प्रस्ताव को पहले तो नहीं माना, पर जब देखा कि भक्तसिंह युद्ध की सारी जिम्मेदारी उठाने को लालायित है, और राठौर वश के लिए लड़ना चाहता है, तो बात मान ली। महामुनि कौटिल्य के कंटकेनैव कटकम् वाक्य को मानकर ही अभयसिंह ने ऐसा किया, यह किसी को न सोचना चाहिए।

राजपूतो की युद्धयात्रा का एक सुन्दर नमूना इस कहानी में प्राप्त होता है। कोई दो सौ वर्ष पहले की घटना है, पर राजपूत इतिहास के आरम्भ से उनके योद्धा जीवन के अन्त तक इसी प्रकार युद्धयात्रा हुई। विशाल तोरण पर नगाड़ा वज उठा। 'खेर' यानी सामूहिक रूप से युद्ध करने का आह्वान किया गया। तोरण के पास भक्तसिंह आकर खड़े हो गये। दो तरफ़ ताँवे के दो बड़े पात्र रखे गये। एक में अफीम का अर्क था, और दूसरे में केसरिया पानी। तोरण के नीचे से जितने भी राजपूत निकले, उनको भक्तसिंह ने अपने हाथ से अफीम का अर्क पिलाया, और दाहिने हाथ से उनके सीने पर केसरिया पानी की छाप लगा दी। इस प्रकार से आठ हजार मृत्यु वरण वाले योद्धा जमा हो गये। तब भक्तसिंह ने कहा—जो लोग मरने से घबड़ाते हों, वे अब भी लौट सकते हैं, और किसी को कानोंकान पता नहीं चलेगा। हम लोग युद्धयात्रा के समय वाजरे के खेत के अन्दर से चलेंगे। उस समय वे लोग जो बिना जीते ही लौटना चाहते हैं, चुपचाप खेत के अन्दर खिसक जायें। मैं पीछे मुड़कर नहीं देखूँगा कि कौन साथ है, और कौन पीछे लौट रहा है ?

पाँच हजार से अधिक राजपूत मरने के लिए प्रस्तुत होकर आगे बढ़े, पर

विशाल शत्रु-सेना के सामने वे टिक न सके, और बहुत थोड़े सैनिक जिन्दा लौटे। इन लौटने वालों में एक भक्तसिंह भी थे। अपनी सेना की यह दशा देखकर वह रणवाँकुरा वीर जो शत्रु के व्यूह को बार-बार भेदकर आगे बढ़ चुका था, अश्रुधारा बहाने लगा। भक्तसिंह की वीरता का वर्णन शत्रुपक्ष के चारणों के गीतों में पाया जाता है। वीरता हो, तो ऐसी हो कि शत्रु भी प्रशंसा करे। जयसिंह के दरवारी चारणों ने राजस्थानी ढिगल भाषा में भक्तसिंह का यश गाया है। जिसका भाषार्थ इस प्रकार है—

काली का रण घोष है,
या हनुमत का हुँकारा है।
कपिल मुनि का रोष है,
या शेष की फुँकारा है ॥
नृसिंह अवतार धारा है,
या सूर्य किरण विस्तारा है।
डंकिनी की मृत्युदायिनी दृष्टि,
या शिव के तृतीय नेत्र की वृष्टि।

भक्तसिंह जब तलवार खींचते हैं तब उसकी ज्वाला को कौन रोक सकता है !

शत्रु वीर था, तो जयपुर वाले भी कम वीर नहीं थे, यह इन गीतों से ही स्पष्ट हो जाता है। वीरता का इस प्रकार सम्मान करना वीरधर्म के ही उपयुक्त है।

यहाँ पर स्वतः एक ऐसा प्रसंग याद आता है, जिसमें शत्रु की वीरता की प्रशंसा की गई है। इस प्रसंग में भी राजपूतों की वीरता का वर्णन किया गया है। किसने यह वर्णन प्रस्तुत किया यह भी सुन लीजिये। वर्णन प्रस्तुत करने वाले हैं, राजपूत जाति के उत्थान की आशा को जड़-मूल से नष्ट करने वाले, मुगल साम्राज्य के संस्थापक सम्राट् बाबर।

फतेहपुर-सीकरी की लड़ाई में मेवाड़ के राणा साँगा के नेतृत्व में सम्मिलित राजपूत सेनाओं ने जब मुगलों को घेर लिया था, उस समय का वर्णन बाबर ने तुर्की भाषा में अपनी आत्मकथा में किया है। यह वर्णन बहुत ही भाषिक है। इसका भावार्थ इस प्रकार है—

“मृत्यु की सस्था के समान शत्रु का दल बढ़ा चला आ रहा है। शत्रु नीच पिशाच है। वह रात्रि के घोर अँधकार के समान काला है। उनकी संख्या आसमान के तारों के समान अनगिनत है और आग की लपटों की तरह वे बढ़े आ रहे हैं। ऐसा मालूम होता है मानो धुएँ के नीले गुब्बारे हिंसा रूप धारण किये हुए सिर उठाये चले आ रहे हैं। हजारों घुड़सवार और पैदल चीटी दल की तरह दायें और बायें से उमड़ रहे हैं।”

इसी युद्ध के वर्णन में उन्होंने आगे चलकर खाइयों की सहायता ली है, और राजपूत सेना की तुलना वज्र और विजली से की है—

“समुद्र के गर्जन की तरह या भीषण तूफान के तर्जन की तरह आकाश में रेत के बादल बनकर क्षण मात्र में युद्धक्षेत्र पर शत्रु छा गया। उसकी तलवारों की चमक ने विजली की चमक को भी मात कर दिया और उसे देखकर सूर्य भी काला पड़ गया।”

यह कहा जा सकता है कि शत्रु की वीरता का तारीफ़ करना जरूरी इसलिए था कि अपनी वीरता उभरकर सामने आवे, क्योंकि आखिर राजपूत सेना हार गई, और विजय का सेहरा तो बाबर के ही सिर पर बाँधा। पर भक्तसिंह वाले प्रसंग में यह बात नहीं कही जा सकती। यह राजपूतों का गुण रहा है कि शत्रुता चाहे जैसी विकट क्यों न हो, शत्रु की वीरता का उन्होंने सम्मान किया है। जो खोलकर प्रशंसा की है, रंचमात्र कंजूसी नहीं दिखाई।

कुछ हो, राजपूतों की शिवेलरी (वीरता) बहुत ऊँचे दर्जे की थी। कहाँ तो भाई से लड़ाई, और कहाँ भाई पर विपत्ति आते ही स्वयं मर मिटे। वीरता में राजपूत ही प्रथम हैं। यूरोप का सारा इतिहास एक तरफ़ और राजपूतों की वीरता का इतिहास एक तरफ़।

सवाई राजा की बात पर लौटा जाय। उस युद्ध में भक्तसिंह की एक देवमूर्ति जयसिंह के हाथ लगी। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार राजा मानसिंह के हाथ पराजित वीर प्रतापादित्य की यशोresh्वरी देवी लगी थीं। जयसिंह ने अम्बर की एक देवी की मूर्ति के साथ उसका विवाह कर दिया, और बाद में सौगातों के साथ उस मूर्ति को भक्तसिंह को लौटा दिया।

राजपूत हृदय की इस विशालता को हम जयसिंह की राजनीति में भी विशेष रूप से प्रतिफलित देख सकते हैं। देशभक्ति मनुष्य को कुछ हद तक संकीर्ण बना देती है, इसीलिए अम्बर वंश की देशप्रीति अम्बर राज्य को पारकर समग्र भारत या समग्र राजस्थान में फैल न सकी। इसीलिए अम्बर ने कभी राजस्थान की स्वतन्त्रता के लिए मुग़ल सम्राटों से लोहा नहीं लिया। दिल्ली से केवल डेढ़ सौ मील की दूरी पर अरावली पर्वतमाला की आड़ में रहकर जयपुर और कर ही क्या सकता था? जहाँ राजशक्ति और जनता एकमन, एकप्राण नहीं, वहाँ इससे अधिक की क्या आशा की जा सकती थी? उन दिनों सामन्तवाद ही राजशक्ति का एकमात्र अवलम्ब था, फिर राजशक्ति किस तरह हृद से अधिक साहस दिखाती?

जयसिंह में यह शक्ति नहीं थी कि मुग़लों के पतनोन्मुख साम्राज्य को बचा सकें। नादिरशाह की तरह महापराक्रमी बाहरी शत्रु को रोकने या भगा देने की शक्ति

उनमें नहीं थी, और न उनका प्रभाव इतना अधिक था कि वे सब राजाओं को एकत्र करके किसी शक्ति से मोर्चा लेते। मराठी में उदीयमान शक्ति का स्फुरण हो रहा था, पर उनके सामने लूट-खसोट का ही एकमात्र उद्देश्य था। वे इसी के लोभ से उत्तर भारत में बढ़ रहे थे। उन्हें दक्षिण में ही रोक रखना सम्भव न था। फिर भी सवाई राजा जयसिंह जयपुर को इन विपत्तियों से सुरक्षित रख सके, केवल यही नहीं, वे अन्य राजपूत राजाओं को भी बचा सके, यह उनके लिए बड़ी प्रशंसा की बात है। भले ही वे बड़े योद्धा न माने जायें, पर उनकी राजनीति कुशलता के सम्बन्ध में दो राये नहीं हो सकती। विजय केवल युद्ध में ही नहीं होती, शान्ति की विजय उससे कम नहीं होती।

अम्बर के पहाड़ी किले या राजमहल के भीतर के सुन्दर चित्रों को तथा संगमरमर के काम को देखकर सवाई राजा जयसिंह की बात फिर याद आई। एक तरफ उन्होंने अम्बर को कलाकार की दक्षता से सुसज्जित किया, और दूसरी तरफ उन्होंने जयपुर का एक स्रष्टा की दूरदृष्टि से नयनिर्माण किया। उन्होंने प्राचीन प्राप्य विद्याओं का पुनरुद्धार किया, साथ-ही-साथ पाश्चात्य की तरफ से आने वाली हवाओं के लिए जयपुर के झरोखे खोल दिये। बहुत से लोग यह समझते होंगे कि अजायबघर, चिड़ियाखाना, ग्रस्त्रशाला, पोथीशाला आदि संस्थाएँ भारत में अंग्रेज के द्वारा स्थापित की गई हैं, पर अंग्रेजों से बहुत पहले ही सवाई राजा जयसिंह इन का बीज बो गये। सचमुच ही वे एक व्यक्ति नहीं, सवा थे।

यहाँ प्रश्न उठता है, विजयसिंह का क्या दुआ ?

किसी को मालूम नहीं।

अम्बर के पहाड़ी किले से भी ऊपर पहाड़ पर एक भयानक किला-सा दिखलाई पड़ता है। वह क्या है ? वहाँ कौन लोग रहते थे ? किन लोगों की लम्बी साँसें पैर की जजीरों की आवाज से मिलकर ऊपर उठ जाती थीं, पर नीचे के राजमहल से उठने वाली छमछम के मुकाबले में बीच रास्ते में ही परास्त हो जाती थीं, और किसी को कानोंकान इसकी खबर नहीं होती थी। पता नहीं वे कौन थे, जो उस किले की घुटन में घुल-घुलकर मर जाते थे।

जब सप्तम एडवर्ड प्रिंस ऑफ वेल्स के रूप में जयपुर पनारे थे, उस समय उन्होंने उस ऊपरी किले को, देखने की इच्छा प्रकट की थी, पर महाराजा साहब ने इतनी दृढ़ता के साथ बात बदल दी कि सप्त सागरा वृटानिया के भावी अधीश्वर को यह हिम्मत न हुई कि दोबारा उस प्रश्न को उठावे।

जयपुर की पर्वतमाला की चोटियों पर बनी चहारदीवारी के पीछे सूर्य डूब रहा था। बन्दरो के भूँड इस बीच न जाने कहाँ चले गये थे। चारों तरफ चिन्ता में

डवा अँधेरा घिरने लगा था । यशोरेश्वरी के मन्दिर में सन्ध्या समय की आरती का घण्टा बजने लगा था । मेरा मन अचानक बंगाल पहुँच गया । यशोर की इच्छामती नदी के किनारे क्या कभी यह ध्वनि पहुँचती है ? पर इन बातों को सोचने का मीका नहीं मिला, क्योंकि जल्दी उतर जाना था । दूर में किसी पालतू हिरन पर शायद चोता हमला कर रहा था उसके गले की घंटी की आवाज़ के साथ-साथ उसका आर्तनाद तैरता हुआ आ रहा था । अँधेरे में अम्बर के पहरे पर सियारों के दल डटे हुए थे ।

रसिक जीवन

रांधो बिना नूने,
नाजो बिना चूने पान ॥
टाका बिना बिये करे,
करो नाच - गान ॥

यह बँगला कवित्त मेने कही गुना था । इसका अर्थ है—'बिना नमक के रसोई करो, बिना चूने के पान लगाओ और बिना रप्यों के शादी करके नाचो-गाओ ।' मुझे यह कवित्त बहुत पनन्द आया था । एक नाहव ने मुझ से यह कवित्त सुना, तो उन्हें यह कवित्त इतना अच्छा लगा कि वह इसे तान-स्वर में बांधने की कोशिश करने लगे ।

सच तो यह है कि गाने के लिए इससे बड़ा प्रसंग और क्या हो सकता है ? इसमें यह नहीं कहा गया कि विश्व पर विजय प्राप्त करने के लिए चल पड़ो । न यही कहा गया कि अलाउद्दीन के चिराग की मदद ली जाय । यहाँ तक कि कोई मुश्किल हिसाब करने के लिए भी नहीं कहा गया । केवल अपने अभाव और अमुविधाओं को भुलाकर चैन की बांसुरी बजाने के लिए कहा गया है ।

हम लोगो के सोधे-सादे गुरीवी के जीवन में इससे हितकर उपदेश क्या हो सकता है ? मुहल्ले को चौपाल में बैठकर अखबारों के 'आवश्यकता हैं' वाले विज्ञापन-स्तम्भ पर आँख फेरते-फेरते अपनी अन्तिम बीड़ी का आराम से कश लेने हुए सभी लोग मान लेंगे कि यह सुन्दर कवित्त है । यदि इस कवित्त को अपना नारा बनाकर कोई उम्मीदवार यह घोषणा करे कि जीवन के प्रति उसका यही दृष्टिकोण है, तो उसे निर्वाचन की लड़ाई में सफलता अवश्य मिलेगी. ऐसा मैं हलफिया कहने को तैयार हूँ ।

चिन्ता और जिम्मेदारी से बचते हुए आराम कोन नहीं चाहता ।

पहले के ज़माने में राजाओं के सिर पर पगड़ी कितने दिन तक रहेगी, वह सिर राजछत्र के नीचे शोभायमान होगा या शत्रु की बर्छी की नोक पर दिखाई देगा, यह किसी को पता नहीं होता था । इसलिए राजाओं की मनोवृत्ति ऐसी बन जाती थी कि मौका लगे, तो मौज उड़ाओ । हम साधारण लोग तो यही समझते हैं कि दो दिन की दुनिया है, हँस-खेलकर बिता लो । जो ऊँचे दर्जे के लोग हैं, वे उमरखय्याम की भाषा में (कहते हैं कि असल में अह खाई हकीम तावा तावाई की लिखी हुई है, पर

रसिकों ने इसे उमरन्वय्याम के नाम से चला दिया है) कहते हैं—

रोजे कि गुजिस्ता अस्त आजो याद मकुन,
फुर्दा के न आमदा अस्त फरियाद मकुन,
पजह आमदा व वर गुजिस्ता बुनियाद मिने
हाले खुशवाश व उन्न वरवाद मकुन ।

इसका भावार्थ इस प्रकार है—बीती को विसारकर आगे की सुधि ले । पर बहुत आगे की भी सुध मत ले, क्योंकि भूतकाल और भविष्यकाल दोनों की कोई बुनियाद नहीं । वर्तमान समय में खुश रह, कल की चिन्ता करना बेकार है ।

यही हमारे राजाओं का चरित्र रहा ।

उनमें मौज उड़ाने की शक्ति भी बहुत थी, साथ ही अपने मन की वासना को रंगीन बनाकर वे उसे इन्द्र-धनुष की तरह आकाश में फैला सकते थे । न मालूम कब क्या हो जाय, सिर रहे या न रहे, इसलिए सुख-भोग के सम्बन्ध में उनकी नीति इस प्रकार रहती थी—

“बूढ़े बूढ़े लेत कमाय, आखिर जैहे सींग दिखाय ।”

सभी दरबारों में नाच और गाने की महफिलें लगी रहती थीं, इसका शायद यही कारण है । भविष्य पर जिसका भरोसा जितना कम होता है, वह वर्तमान को उतना ही अधिक महत्व देकर पकड़े रहता है । इसीलिए विलकुल हाथ के पास हर समय मौज के सब सामान रहते थे । मुसाहबों का भुंड राजाओं की सख-पिपासा की आग में घी का काम कर उसे भड़काता रहता था ।

यही हालत दिल्ली के सम्राट् अलाउद्दीन की थी । उन्होंने बड़ी मुश्किल से मुगल आक्रमणों को रोक रखा था । उनके सम-सामयिक इतिहास, ‘तारीख-ए-फ़ीरोजशाही’ में जियाउद्दीन बर्नी ने लिखा है कि किसी भी युग में, और किसी के राज्यकाल में इतनी बड़ी सेनायें परस्पर नहीं लड़ीं । ऐसी हालत हो रही थी कि न मालूम कब पठानों का सूर्यास्त हो जाय । पर जब पठान राज्य रह गया, तो अलाउद्दीन ने सुख भोगने के कार्यक्रम को इस हद तक पहुँचाया कि उसकी इति-श्री हो गई ।

अलाउद्दीन ने एक दीर जारी रखा जिसमें खाना-पीना, नाच-गाने, रंगरेलियाँ चला करती थी । इतिहासकार बर्नी ने लिखा है—‘विराट कामना और उच्चाकाक्षा इस प्रकार लहरें लेने लगी कि वह स्वयं उसमें डूब गया, और उसका दिमाग बेहूदगियों का खजाना बन गया ।’

अलाउद्दीन में सामर्थ्य थी, इसलिए उसने इस प्रकार जिन्दगी काटी, पर कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि बिना सामर्थ्य के भी लोग ऐसा करते रहते हैं । डॉक्टरों का कहना है कि खून में एक बार मलेरिया के कीटाण घुस जायें,

तो वे जल्दी पीछा नहीं छोड़ते । भोग की लालसा की भी मही हालत है । लत पड़ गई, तो फिर छूटती नहीं ।

मद्य आदि पन्थमकार मलेरिया की तरह है. वल्कि उससे भी नयकर । किसी तरह मुँह बनाकर, गले का थूक निगलकर शवकर में लिपटी कुर्नन की गोलिएयाँ खा सकती हैं । खाई कि मलेरिया ने छूटी मिली, पर पन्थमकार की लत की क्या दवा है ?

इस लत की दवा नहीं, इसका प्रमाण अलाउद्दीन के जीवन से ही मिलता है । अलाउद्दीन अन्तिम दिनों में ममभ गये थे कि उन्होंने जो-जो सुराफ्रात किये, उनसे अमीर-उमरा विगड़ गये हैं या निकम्मे बन चुके हैं । राज्य में जगह-जगह अशान्ति और विद्रोह भी इसी कारण हो रहे थे । इसलिये उन्होंने बड़े प्रयास से यह सब घटा दिया और शराब बन्द करदी । उन्होंने अपने दरबारियों के वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन में बहुत तरह के नियम और संयम जवदस्ती लागू कर दिये । एकाएक चरित्रवान् बनने के इस अभियान से दरबारियों के नाकों दम आ गया ।

उधर शरीर पर निरन्तर अत्याचार करने के कारण अलाउद्दीन जल्दी ही टें बोल गये । पर जिसे खून का चस्का पड़ जाता है, वह उसे भूलता थोड़े ही है । इसलिए उनके अनुचरो ने उनके अन्तिम दिनों के उपदेशो को बुड़भस मानकर महाजनो येन गतः स पन्थाः का अनुकरण किया । उनके विशेष प्रिय गुलाम मलिक काफूर ने अपने हाथ में सामर्थ्य रखने के लिए अलाउद्दीन की मृत्यु-शैया से हुबमनामा निकलवाकर बड़े शाहजादे को कैदखाने में डाल दिया था । अब उसने अपने नाई को दूसरे शाहजादे की आँखें फोड़ डालने को भेजा । इसके अलावा उसने अलाउद्दीन के सब लड़को तथा उत्तराधिकारियों को कैद में डलवा दिया, और अन्त में उन्हें मरवा भी दिया । उसे डर था कि कहीं भविष्य में ये तख्त के दावेदार न बन जायें । शाहजादा कुतुब को एक कमरे में कैद रखा गया, और यह तय हुआ कि मौका लगाकर उसको आँख भी उस्तरे से उसी प्रकार निकाल ली जायें, जिस प्रकार खरबूजा काटा जाता है ।

पर मौका लगने के पहले ही अलाउद्दीन के कुछ पुराने सिपाहियों ने प्रबल पखक्रमशाली गुलाम मलिक काफूर की रातोंरात हत्या कर डाली, और शाहजादा कुतुब को कैद से निकालकर सिंहासन पर बिठा दिया । इसके बाद से वे खुल्लमखुल्ला यह कहने लगे कि दो शाहजादे अब भी जिन्दा हैं, और जिसे चाहें उसे बादशाह बनाकर बाकी शाहजादों को मौत के घाट उतार सकते हैं ।

मे जिस बात को कहना चाह रहा था, उसका सूत्र फिर से पकड़ लिया जाय । अलाउद्दीन में सामर्थ्य थी वे महफिल और मजलिसों में समय काटते रहे, पर शाहजादा कुतुब बिलकुल निकम्मा था, लेकिन उसने भी वही रास्ता पकड़ा । मे इसी बात को कहना चाह रहा था कि यही इन लोगों की मनोवृत्ति थी ।

कुतुब ने अपने को विलासिता के स्रोत में डाल दिया। उसने केवल चार साल राज्य किया, पर इस घर्से में उसने शराब पीना, गाने सुनना, गारवाशी, चरित्रहीनता तथा अपनी कृप्रवृत्तियों को चरितार्थ करने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया।

हमारी जानकारी में इंग्लैण्ड के इतिहास में रिजेन्सी रेट्स नाम से कुछ छैलों ने राजघराने के इर्द-गिर्द रहकर तरह-तरह की उच्छृंखलताएँ की थी। इसके लिए उन्हें बहुत दुरा-भला कहा गया, पर जिस समय की दिल्ली का प्रसंग चल रहा है, उस समय जो कुछ हुआ, उसके मुकाबले में इंग्लैण्ड के वे शोहदे साँघू और ब्रह्मचारी थे।

उस युग में सम्राट् खुशक-इ-लाख याने लाल राजमहल में दिन-रात रंगरेलियाँ मनाते थे। शराब और दूसरे नशीले पदार्थों की दूकानें राजमहल में बराबर लगी रहती थीं, और स्त्रियाँ बेची और खरीदी जाती थी। ऐसी हालत हो गई कि सुन्दरियाँ कहीं नजर न आने लगी। किशोर बालक, खूबसूरत खोजे तथा सुन्दरी किशोरियाँ पाँच सौ, हजार या अधिक से अधिक दो हजार में विकती थी।

इससे केवल तीन सौ वर्ष पहले यानी १००० ई० के आसपास, जब मुसलमान आक्रमण करने लगे थे, सुल्तान महमूद गजनवी के सभा पण्डित अलबरूनी ने देखा था कि हिन्दू स्त्रियाँ सुशिक्षिता थी। वे खेलती थी, नाचती थी, चित्र बनाती थी। वे सब प्रकार के सार्वजनिक कामों में खुलकर भाग लेती थीं। १२०० ई० में मुहम्मद गौरी ने इस देश में पक्की बुनियाद पर राज्य स्थापित किया। इसके सौ वर्ष बाद दिल्ली के सुल्तान की नाक के सामने अन्धेरखाता चलने लगा। शराब से लेकर सभी तरह अपकर्म फैलने लगे।

अलाउद्दीन ने जिस प्रकार चित्तौड़ के साथ-साथ पद्मिनी को भी पाना चाहा था, और गुजरात के साथ-साथ वहाँ की रानी कमला देवी पर भी अधिकार जमाया था, उसका अनुकरण उसके अमीरों, मालिकों यहाँ तक कि साधारण सिपाहियों ने भी किया। अलाउद्दीन ने एक बार विद्रोहियों की स्त्रियों और कन्याओं को उसकी सामाजिक भर्थादा का ह्वाल किये बिना कैद में डाल रखा था। उस काल के मुसलमान इतिहासकारों का कहना है कि इससे पूर्व पुरुषों के अपराधों के लिए उनकी स्त्रियों या बच्चों पर कभी हाथ न उठाया जाता था। इस कारण यह हालत हो गई कि एक आदमी की हत्या का दण्ड देने के लिए हत्या से सम्बद्ध लोगों के पूरे परिवारों को जिनमें स्त्रियाँ भी शामिल रहती थी, बरबाद किया जाने लगा। खुलेआम उनकी स्त्रियों की बेइज्जती की जाती और अन्त में उन्हें बाजारू बेइया बनाने के लिए लफंगों के हाथ सौप दिया जाता था। माताओं के सिर पर बच्चों को रखकर उनके ठुकड़े-ठुकड़े कर दिये जाते थे। मुसलमान इतिहासकार ने भी दुःख करते हुए लिखा है कि किसी धर्म और किसी जाति में इस प्रकार अत्याचार करने का विधान नहीं है।

दिल्ली में पठान राज्य की स्थापना के मार्ग में नवमे पहले बाधक राजपूत राजा पृथ्वीराज हुए। वे अजमेर और दिल्ली के राजा थे। उसी प्रकार मुगल राज्य की स्थापना में सबसे बड़ा बाधक राणा संग्रामसिंह हुए, जिन्होंने मारे राजस्थान को साथ लेकर पतहपुर-सीकरी में बाबर को रोका।

उन्हीं बातों के कारण मुगल और पठान नवकी दृष्टि पृथ्वीनी राजस्थान पर पड़ी। उन्होंने राजस्थान की बराबर इसकी मजा दी, और उनके दरबारों में राजस्थानी नृत्यों की परदानशीली और शस्त्रत्वहीनता देखकर आश्चर्य करते थे। विशेषकर मेवाड़ में नृत्यों को जिस प्रकार रखा जाता है, वह बहुत ही लज्जाजनक है। पर उसके कारण को भी हम न भूलें। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे अप्रासंगिक न समझा जाय। दिल्ली के इतिहास में घुसे ब्रह्मण राजस्थान के इतिहास की चर्चा नहीं हो सकती। राजस्थान की कहानी का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसके लिए दिल्ली दूरस्थ नहीं। यह मेरी केवल कपोल कल्पना नहीं है, यह इस घटना से प्रमाणित होगा।

अकबर के समय राजस्थान-विजय पूरी हो चुकी थी। मेवाड़ के राणा ने भी सन्धि कर ली थी। जहाँगीर को राजस्थान का मिरदद बिलकुल नहीं था। वे उन दिनों नूरजहाँ के रूप महासागर में गोते लगा रहे थे, और उसकी बुद्धि की दीप्ति के सामने चकाचीध थे। ऐसे शान्ति के समय जहाँगीर का भोज कैसा होता था, इस का वर्णन पढ़िये।

नयी दिल्ली या कलकत्ते की कोई काकटेल पार्टी उन भोजों के सामने ऐसी रहेगी, जैसे वह साधु-सन्तों का कन्द-मूल-फल भोजन हो। उन भोजों में किसी प्रकार की कोई बाधा न थी। जो जिसके जी में आता था, वह वही करता था। सर टामस रो या इसी प्रकार के दो-एक संयमी नशेवाजों के अतिरिक्त कोई होश में न रहता था। जब तक नींद से बिलकुल बेसुध नहीं हो जाते थे, तब तक जहाँगीर पार्टी छोड़कर नहीं जाते थे।

यदि सम्राट् कभी नशे में सो जाते, तो वक्तियाँ बुझा दी जाती, और सब मेहमान चल देते। आगरे के सभी फिरंगियों को ऐसी पार्टियों में निर्भरण मिलता था, और उनमें से कई ने इसका वर्णन भी लिखा है। चलते हुए यह बतला दिया जाय कि जहाँगीर ने ही अपनी आत्मकथा में पहले-पहल इंग्लैण्ड निवासियों को अंग्रेज लिखा है।

इन मजलिसों के अवसर पर जहाँगीर बहुत ही उदार हो जाते थे। केवल दयालु ही हो जाते हो, ऐसी बात नहीं, उनके धार्मिक विचार भी सर्वधर्म समन्वय की कोटि तक पहुँच जाते थे। सब धर्मों की एकता पर भाषण करते हुए वे कई बार रो भी पड़ते थे।

ईसाई धर्म में सदाचारी जीवन के सम्बन्ध में दस अनुशासन हैं, पर जहाँगीर

ने बारह अनुशासन चलाने की कोशिश की। इनमें से चौथा अनुशासन शराब न पीने के सम्बन्ध में था। उस अनुशासन में उन्होंने कहा था कि कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार की शराब या कशीला आसव तैयार या बिक्री नहीं कर सकेगा। इसमें उन्होंने कहा था कि यह अनुशासन यह जानते हुए प्रस्तुत किया जा रहा है कि मैं स्वयं शराबी हूँ, और अठारह साल की उम्र से अब तक याने ३८ साल की उम्र तक बराबर शराब पी रहा हूँ। यह एक ऐतिहासिक घटना है।

वाक्यात-ए-जहाँगीरी में लिखा है कि एक बार शिकार खेलते हुए वे बहुत थक गये, और उन्होंने थकावट दूर करने के लिए अपने हकीम से कोई चीज माँगी। हकीम ने उन्हें कोई डेढ़ प्याला मीठी पीली शराब दी। उनकी थकावट दूर हो गई, पर तभी से वे शराब पीने लगे। शराब की मात्रा बढ़ाते-बढ़ाते ऐसा हुआ कि अंगूरी शराब से अब उन पर नशा नहीं चढ़ता था। इसलिए दो बार उतारा हुआ अर्क पीना पड़ता था। चौबीस घण्टे के अन्दर बीस प्याले शराब पेट में चली जाती। इनमें से चौदह प्याले यानी कोई ६ सेर तो दिन में ही साफ़ हो जाती।

जहाँगीर ने स्वयं लिखा है कि अन्त तक ऐसा हुआ कि हाथ थर-थर काँपते थे, और प्याला पकड़ना मुश्किल हो जाता था। अन्त में उन्होंने अर्क पीना घटा दिया, और फालुहा, शायद भंग की गरण ली। जब इसमें भी मजा जाता रहा, तो उन्होंने अफ़ीम शुरू कर दी। ४६ साल की उम्र में वे प्रतिदिन १४ रत्ती अफ़ीम खाते थे।

नूरजहाँ ने अन्त तक जहाँगीर की शराब की मात्रा घटाकर ६ प्याले कर दी थी। फिर भी जब-तब नृत्यगति के प्रवाह में वे इस मात्रा को पार कर जाते थे। एक दिन की कथा ऐसी है कि जहाँगीर मात्रा पार कर चुके थे, तब भारत की वास्तविक सर्वेसर्वा साम्राज्ञी नूरजहाँ ने आकर बाधा डाली। पर जहाँगीर ने उसकी बात भी नहीं मानी। कभी-कभी वे महल से सटककर किसी अज्ञात शराबखाने में घुस जाते, और साधारण शराबियों के साथ बैठकर शराब पीते थे। कहते हैं कि इस कारण अपनी प्रजा के निकट वह बहुत प्रिय थे। दीवान-ए-आम में राजकार्य या वादशाही शिष्टाचार के अलावा वे साधारण जनता में अकसर जाकर मिलते थे, इसलिए जब वे रात को ऐडवेन्चर करने निकलते थे तो लोग उन्हें पहिचान लेते थे। पर वे लोगों से कह देते थे कि वे ऐसे अवसरों पर उनसे कुछ न माँगे, इसका कारण यह है कि शराब के प्याले वाले सलीम उन्हें जो कुछ दे, शायद तख्त-ए-ताऊस के जहाँगीर उन्हें वह देने से इन्कार कर दें। उनमें इतनी समझदारी थी, फिर भी वे शराब और गुलछरें उड़ाने से बाज नहीं आते थे।

अंग्रेज़ राजदूत सर टामस रो ने लिखा है कि जहाँगीर अधिकांश राजकार्य

रात को करने थे, पर वे इतनी जल्दी नशे में आ जाते थे कि अक्सर उनमें बादशाही हुकमनामे प्राप्त करने का मौका नहीं आता था।

सेनापति महावतख़ां के हाथों कैद होने के बाद विजयी सेनापति ने जहाँगीर को एक वर मांगने के लिए कहा। कैदी सम्राट के प्रति इस प्रकार दया दिवाने का कारण यह था कि उन दिन वे नूरजहाँ को साम्राज्य की शासिका पद में हटाने का वादा कर चुके थे। पर जब उन्होंने मांगा, तो उमरखान्याम की भाषा में कहा कि मुझे शराब और मुल्ताना वापस कर दो। बुद्धिमान राजपूत सेनापति (यहाँ यह बता दिया जाय कि महावतख़ां सिसोदिया राजवंश के थे, और महाराणा प्रताप के भतीजे होते हुए भी मुमलमान हो गये थे) महावतख़ां ने दोनों चीजों को जहाँगीर ने दूर रखा, शराब को इसलिए दूर रखा कि वह इस्लाम में मना है, और मुल्ताना को इस कारण कि वह शराब से भी अधिक नशा लाने वाली है, और उसकी बुद्धि बहुत ही तीव्र है।

महावतख़ां इस बात को नहीं भूले थे कि जहाँगीर के समय की मोहरों में लिखा रहता था—‘जहाँगीर के हुकम से रानी बेगम नूरजहाँ के नाम का ठप्पा लगने से सोने की चमक भी गूनी हो गई है।’ महावतख़ां यह भी नहीं भूले थे कि बार-बार जहाँगीर ने यह घोषणा की थी कि नूरजहाँ साम्राज्य की सर्वेभवा है, वे तो सेर भर शराब और आध सेर गोस्त के अलावा किसी चीज के ह्वास्तगार नहीं (इक़बालनामा-ए-जहाँगीरी)।

राजकार्य से इतने बेखबर सम्राट जहाँगीर भी बराबर राजस्थान पर दृष्टि रखते थे। उनकी आत्म-जीवनी का सबसे बड़ा वह हिस्सा है, जिसमें उन्होंने राजपूत और राजस्थान के सम्बन्ध में लिखा है। वे इस बात को नहीं भूल सके थे कि उनकी माँ राजपूतनी थी, उनका प्रधान सेनापति धर्मान्तरित राजपूत था, और उनके सबसे बड़े सहायक राजपूत थे। साथ ही राजपूत उनके सबसे बड़े दुश्मन भी थे। इस प्रकार दिल्ली और राजस्थान का सम्बन्ध हमेशा बहुत गहरा रहा है।

यह तो केवल दिल्ली के उत्थान और विस्तार के समय की बात हुई। दिल्ली के पतन के समय में भी उसके इतिहास पर राजपूतों की छाया दिखाई पड़ती है। राजपूत जिसका साथ देते थे, व भाइयों और सम्बन्धियों को हराकर तख्त व ताज का मालिक बन जाता था। यदि राजपूत दिल्ली के सिंहासन के पीछे बने रहते, तो वह और कुछ दिन टिकता। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि राजस्थान की कहानी में दिल्ली कभी दूरस्त नहीं रही।

दरबारी नृत्य

बिना कौड़ी खर्च किये शादी करके नाचने-गाने की बात चल रही थी। उसी का एक आधुनिक यानी इसी शताब्दी का उदाहरण उस दिन बहुत पास ही मिल गया। किस दरबार का यह किस्सा है, यह महत्वपूर्ण नहीं।

उस युग के राजे-महाराजे जानते थे कि चार दिन की चाँदनी है, इसलिए गुलछरें उड़ा लेने चाहिएँ, पर इस युग के राजे यह समझते थे कि जब तक अंग्रेज बहादुर मौजूद हैं, तब तक उन्हें किस बात की चिन्ता ? और अंग्रेज तो हमेशा रहेगें, क्योंकि जब कैसर और हिटलर उनका बाल भी बाँका न कर सके, तो फिर और किसकी छाती में बाल हैं जो उनका सामना करेगा। वे सोचते थे कि हमेशा ऐसे ही दिन रहेंगे, और राजाओं की चाँदी रहेगी।

हाँ, एक बात यह जरूर थी कि ब्रिटिश रेजिडेंट या पोलिटिकल एजेन्ट से निभाकर चलना चाहिए।

पर ये रेजिडेंट भी कोई हीवा न थे। ऑक्सफोर्ड या केम्ब्रिज से पढ़कर आते थे, उधर ऊँची सरकारी नौकरी की जंजीर उन्हें पालतू बना देती थी। फिर अंग्रेजों के जातिभाई होने के कारण प्रजातन्त्र की हवा में पले होते थे। इसलिए यदि खामख्वाह उनसे रार मोल न ली जाय, तो उनसे कोई डर न था। वे अपना काम करें, तुम अपना करो। कोई किसी की छाया न छूओ। पख्तुनिस्तान में लोग शुभेच्छा व्यक्त करते हुए कहते हैं—आपकी छाया न घटे। यानी आपका मोटा-ताजा शरीर रोग-ग्रस्त होकर काँटा न हो जाय। उसी दृष्टि से ये राजे-महाराजे जब तक रेजिडेंटों की राह में न आ जायें, तब तक उनकी छाया को किसी प्रकार खतरा न था।

इसलिए राजाओं के दरबारों में महफ़िलें बराबर जमती थीं। कभी-कभी इस सूत्र से गुरिणियों का भी पालन होता था। हम कलकत्ता, बम्बई आदि स्थानों में संगीत-सम्मेलनों के टिकट खरीदकर पीछे की बेंचों में बैठकर जिन उस्तादों के गानों की तारीफ़ करते हैं, हमें नहीं मालूम कि उनमें से बहुतेरे किसी-न-किसी राजा के दरबार में पलते हैं, और यदि उन्हें इन दरबारों का आश्रय न मिलता, और केवल जनता की गुण-ग्राहकता पर निर्भर रहना पड़ता, तो उनका कलाकार जीवन समाप्त हो जाता। अकबर की नौरत्न सभा के तानसेन से लेकर इस युग की छोटी-सी मैहर दरबार के बंगाली उस्ताद अलाउद्दीनखाँ आदि बहुत से बड़े-बड़े गुराँ दरबारों में ही पलते रहे

है। कलकत्ते में हर गली में गाने के ट्यूशन करने वाले लोग मौजूद हैं, पर इस प्रकार ट्यूशन करके किसी प्रकार गुजारा भले ही चल जाय, कला की देवी को प्रसन्न नहीं किया जा सकता। रोटी-दाल कमाकर किसी तरह गुजारा करना और बात है, और कला की साधना करना और बात। बंगाल में भद्र समाज के शिक्षित परिवारों में संगीत की चर्चा लगभग पचास वर्ष से शुरू हुई है। बंगाल के बाहर तो इस प्रकार के ट्यूशन अब दस साल से शुरू हुए हैं। गुणियों के लिए जिन्दा रहने का यह तिनके का सहारा भी तब न था।

पर धन्यवाद है राजाओं को कि उन्होंने अपने दरबारों में संगीतज्ञों के लिए बड़ी गुंजाइश रखी थी। इस सम्बन्ध में मुसलमान राजा हिन्दू राजाओं से कहीं आगे थे, और वे देश को बहुत कुछ दे गये हैं। मुसलमान राजाओं के द्वारा संगीत का पृष्ठपोषण और भी सराहनीय इस कारण हो जाता है कि उनकी शरह या शास्त्रों में ललित कलाओं का अनुशीलन कतई निषिद्ध था।

फिर भी मुसलमान और हिन्दुओं में एक मौलिक प्रभेद दिखाई पड़ता है। हिन्दुओं ने दुनिया पर विचार मस्तिष्क से किया है, पर मुसलमानों ने उसका वरण हृदय से किया। हिन्दुओं के सामने परलोक की आशा थी, पर मुसलमानों की आँखों में इहलोक का नशा था। हिन्दुओं ने शास्त्र अपनाये, जब कि मुसलमानों ने शस्त्र अपनाये।

इसी भिन्नता के फलस्वरूप हिन्दुओं ने तिल-तिल संगमरमर पर सुई से भी पतली जालियाँ बनाई, और मूर्तियों की रचना की, इस प्रकार दिलवाड़ा मन्दिर बना। पर मुसलमानों ने रंग-विरंगे पत्थरों से मीनाकारों करके रंगमहल बनाया। इसी कारण हम हिन्दू युग में वैभव का दर्शन करते हैं, और मुसलमानों के युग में विलासिता के दर्शन होते हैं।

इसी कारण से जब विदेश से भ्रमणकारी आते हैं, तो वे दक्षिण में जाकर मन्दिर और गोपुरम् देखते हैं, और उत्तर भारत में जहाँ हिन्दू युग के स्थापत्य-कला के चित्र कम हो गये हैं, वे दिल्ली का लाल किला और ताजमहल देखते हैं।

राजस्थान दिल्ली और आगरे के इतना निकट है, और साथ ही उसका सम्बन्ध इतना घनिष्ठ रहा है कि बार-बार दिल्ली के साथ युद्ध करने पर भी राजस्थान के राजाओं ने अपने दरबारों में दिल्ली का ही अनुकरण किया।

इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि दक्षिण में हिन्दू राजाओं की सभा में भारत नाट्यम् और कथाकली की कद्र हुई। उस इलाके में सूक्ष्म मुद्राओं और स्पष्ट रूपकों के जरिये नृत्यकला का आन्तरिक मर्म उद्घाटित किया गया। पर उत्तर भारत में जहाँ मुसलमानी प्रभाव का अच्छी तरह विस्तार हुआ, वहाँ कथक नृत्य के साथ-साथ बाजारू नर्तकियों का नृत्य भी चलने लगा। बात यह है कि रामायण के रूपक से

कामायन का रूप निखारना सम्भव नहीं था। चरणामृत से नशा थोड़े ही हो सकता है।

हम बंगाल में बाजारू नाच को सेमटा नाच कहते हैं, पर राज-दरवार की जगमग रोगनी में आँखों को चकाचौंध कर देने वाले अलकारों से सजकर जिस समय नर्तकियाँ नाचती हैं, उस समय उसे इतना साधारण नाम नहीं दिया जा सकता।

जो कुछ भी हो हिज हाइनेस ने मुझे नाच के लिए जो दावत दी थी, उसकी बात की जाय। नाम और धाम से क्या आता जाता है, नाच ही असली चीज है।

उस समय तक भोजन का पर्व समाप्त नहीं हुआ था। अभी तक दरवारी लोग मेज के दोनों तरफ कतार बाँधकर बैठे थे। उनकी पोशाकें दूर से जगमगा रही थीं। कोई जरा हिल भी जाता था, तो उसकी पोशाक के हीरे तथा जवाहरात चमक उठते थे, मानो खिलखिला उठते हो। हीरो का खिलखिलाना, उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

ये वही लोग हैं, जिनके पुरखे जब लाम पर चलते थे, तो उनकी तलवारें हँस उठती थी, और उनसे विजली कौंध जाती थी। राजस्थान के चारण कवियों ने इस हँसी का वर्णन किया है। पर इस समय तो इनके हीरे और जवाहरात ही हँसते हैं, और शायद उनकी हँसी भी जगमगाहट से बढ़कर होती है। अणुवम की जगमाहट पर इन बातों को जाने दीजिये।

जिस मेज पर यह भोजन-महायज्ञ चल रहा था, उसके नीचे जो कालीन बिछा हुआ था, उसमें रंगों की बाढ़-सी आई हुई थी। केंसरिया पीला या अवीर का लाल या उज्ज्वल सुनहरे रंग के साथ मोती की तरह सफेद रंग मिल गये थे, और इस मेल से न मालूम कितने सुन्दर नक्शे बने हुए थे। शायद उत्साह के कारण कुछ पहले ही पहुँच गया था। पर प्रभुभक्ति के भार से झुके हुए सरदार कुछ कह नहीं रहे थे। कोई कुछ बोलता ही न था। राजा साहब अभी तक बगल के कमरे में थे। मैंने मन ही मन कल्पना की कि ऐसी परिस्थिति में यूरोप में क्या होता। चुटकुले, हँसी-दिल्लीगी का दौर-दौरा होता, और सब लोगो की बाँछें खिली हुई होती। थोड़ी समय के लिए ही सही, सब लोग एक दूसरे के पास आ जाते। शायद एक तरफ़ या सौभाग्य अधिक होने पर दोनों तरफ़ महिलायें बैठती। सब लोग उन महिलाओं के मनोरंजन को पुरुषार्थ मानकर बातचीत करते। जिसका व्यक्तित्व जितना दिलचस्प होता, वह उतनी ही आसानी से बाजी मार ले जाता। इसके साथ किसी प्रकार के चरित्र सम्बन्धी कृत्सा भरी बातें या दिल देने का सम्बन्ध न होता।

ऐसी बातचीत सिर्फ़ मनोरंजन के लिए होती।

दोनों कानों में हीरे की बालियाँ पहने हुए हिज हाइनेस आगे बढ़ आये। इस

बीच नाच देखने के लिए निमन्त्रित श्रीर भी कुछ व्यक्तित्व आ गये। जो लोग खाने की मेज पर बैठे हुए थे, यदि उनके नाम गिनाये जायें, तो वह रजवाड़ों का एक छोटा-मोटा नक्शा हो जायगा। पर जाने दीजिये। आज की रात नाच ही का कार्यक्रम सबसे मुख्य था।

काँफ़ी श्रीर लिक्वर यानी हल्की शराब लेकर बटलरों की सेना अभ्यागतों में दीडने लगी। लोगो ने लतीफे शुरू किये। मैं समझ गया कि अंग्रेजी में जिसे बरफ तोड़ना कहते हैं, वह प्रक्रिया शुरू हो गई। खाने की मेज पर सिप्ताचार की जो बरफ जम गई थी, वह अब गलने लगी। अब लोग नाच की प्रतीक्षा करने लगे।

इस कमरे को सजाने में न मालूम कितना खर्च हुआ होगा। टिकोरेटरों यानी पेशेवर कमरा सजाने वालों की तारीफ करनी पडगी। दीवार पर मुन्दर तसवीरें टेंगी हुई थी, जिनमें शिकार, घुड़दौड़, दिल्ली दरबार में पहले जमाने के हाथी नगीन राजाओं के चित्र थे। मॅन्टल पीस पर, मेज पर, काँच की अलमारियों में तरह-तरह की सगमरमर और चीनी जेड पत्थर की मूर्तियाँ रखी हुई थी। इनमें से कई नंगी स्त्रियों की मूर्तियाँ थी।

इस बीच डाइनिंग रूम की लम्बी मेज हट गई थी। सजे कमरे में सफ़ेद चद्दर बिछ गई थी, और दीवार से सटाकर मखमल की गद्देदार कुर्सियाँ बिछ गई थीं। हिज़ हाइनेस ने एक अंग्रेज अतिथि की मेम साहबा को अपने पास बैठाया। इसी प्रकार उन्होंने श्रीर दो-चार व्यक्तियों को भी पास बुलाकर बैठाया। बाकी लोगो के लिए यह कहा कि जिससे जहाँ बन पड़े, बैठो।

देशी राजाओं के दरबार का क्लासिकल अनुष्ठान अब शुरू हुआ।

मेहदी से रचाये हुए पैरों को ठुमक ठुमककर डालती हुई नर्तकियाँ आ पहुँची। कोई पन्द्रह-सोलह नर्तकियाँ थी, एक-से-एक बढ़िया साड़ी या सलवार पहने हुए। पैरों में धूँधर बंधे थे। उनकी आँखों में सहमी हुई हिरनी की चितवन थी। वे आकर सफ़ेद चादर के किनारे बैठ गई। पास हंा बाजे वाले बैठ गये। पहले तो ये लोग चुप रहे, पर धीरे-धीरे फुसफुसाकर बातचीत चल पड़ी। एक नर्तकी आँखों से बिजली-सी कौदाती हिज़ हाइनेस के पैरों के पास घुटने टेककर बैठ गई।

एक सरदार ने मेरे कान में कहा—यही आजकल की पटरानी है।

यानी आजकल इसी नर्तकी पर महाराजा की कृपा है। पर बड़ों की कृपा का क्या कहना! वह तो बादल की छाँह की तरह है; अभी है, अभी नहीं। कहा भी है कि बड़ों की प्रीत बालू की भीत की तरह है; आज हथकड़ी है, तो कल हाथ में चाँद है।

बडर पिरीति वालिर बाँध।

खण्णके हाते दाड़ खण्ण के चाँद।।

जो कुछ भी हो, यह तो साफ़ था कि कथित पटरानी इस मौके का फ़ायदा काफ़ी उठा चुकी थी। जितने दिन काम बने उतना ही अच्छा, दूसरी नर्तकियों की तुलना में इस नर्तकी की पोशाक इस बात की प्रमाण थी।

हिज़ हाइनेस उस नर्तकी के साथ ठठोली कर रहे थे, और दिल खोलकर हँस रहे थे। अट्टहास किसे कहते हैं, यह पहली बार देखने में आया। वे हँसकर लोटपोट हो रहे थे। मखमल की कुर्सी में उनका शरीर अँट नहीं रहा था। कालिदास की शकुन्तला की याद आई। एक स्थान पर कालिदास ने यह लिखा है कि शकुन्तला का जीवन बल्कल में अँट नहीं रहा था।

यह उपमा याद तो आई, पर प्रसंग को देखते हुए लज्जा मालूम हुई। ऐसा लगा, जैसे कोई चरणामृत पी रहा हो, और उसके मुँह में हड्डी का टुकड़ा आ जाय। कहीं कण्व मुनि का तपोवन, और कहीं स्वेच्छाचारी राजा का दरवार। मैंने देखा कि हिज़ हाइनेस खुशी के मारे पैरों से कालीन के फूलों को रोद रहे थे, और दूसरी तरफ़ एक हाथ से अपनी बगल में बैठे हुए एक अन्य हिज़ हाइनेस का कन्धा सहला रहे थे। ऐसा मालूम हो रहा था कि वे माई डियर-मनोवृत्ति दिखाना चाहते थे। या पता नहीं बड़ो की बात कौन जाने, शायद इस तरह वे अपने को सम्भाल रहे थे।

उधर नाच शुरू हो गया। केवल नाच नहीं, साथ ही गाना भी शुरू हुआ। एक नाच कोई आध घण्टे तक होता रहा। साथ में यह गाना भी—

यह हरदम कैसी होरी !

भर पिचकारी मुख पर डारी,

भीग गई चूनर सारी।

यह हरदम कैसी होरी !

अन्त तक हिज़ हाइनेस ने हाथ के इशारे से इस नाच को रोक दिया। कई और नर्तकियाँ थी। मानो विभिन्न प्रान्तों से फूल चुनकर माला बनाई थी। हिमाचल की तन्वी पहाड़िन, काश्मीर की रसीली आँखोंवाली युवती, दुबली और वालों में फूल लगाये हुए दक्षिणी स्त्री, सब महाराजा के मनोरंजन के लिए तैयार थीं।

लंका की साड़ी और चोली, साथ ही सिर में फूल की माला वाली दक्षिणी तरुणी के बाद काश्मीरन की बारी आई। उसने साटन की चूड़ीदार सलवार, मखमल की फुर्ती, कंधे पर रेशमी दुपट्टा, सिर पर सोने की जंजीर लगा रखी थी। उसने मधुर कण्ठ से ग़ज़ल गाई—

दीवाना बनाना है तो पैमाना बना दे।

×

×

×

मेँ हँद रही सारा बनवा, मेरा श्याम कहाँ है ?

उसने फिरकियाँ लगा-लगाकर इस गजल को गाया । लोग विभे हुए तो ने ही, भूम-भूमकर दाद देने लगे । क्याम किस वन में छिपे थे, यह तो कोई न बता सका, हाँ दीवाना बनाने के लिए बटलर नये ग्लास लेकर हाजिर हो गये ।

इस बीच एक राजपूतनी का नम्र आया । उसका लहंगा मानो रंगों का फौवारा बनकर उड़ रहा था, उसकी अँगिया घूम रही थी, और उसकी ओढ़नी दसो दिशाओं में व्याप्त हो रही थी । उसके हाथों में हाथीदाँत की चूड़ियाँ, सिर पर बुरका, गले में सोने का ट्योटा और कानों में हीरे की बालियाँ थीं । पर उनमें जो चीज सबसे अधिक शोभायमान हो रही थी, वह थे उसके मुगलचरण । पैरों की उँगलियाँ चाँदी के विछियो से करीब-करीब ढकी हुई थीं । इन पर एड़ियों के पास से कितने ही और गहने शुरू हुए थे, एक पर एक । कल्ला, ओला, नेवरी, टंका, पँजोर । इतने अलंकार धे, तिस पर नूपुर की मीठी बोली थी । सोने में सुगन्ध ।

उम समय गाना क्या चल रहा था, यह सुनिये । उस समय क्याम ने राधा के हाथ पकड़ लिये थे, और पानी भरने नहीं जाने दे रहे थे । इसलिए राधा ठुमरी गा रही थी—

रोके मेरी गैल, कैसे भरूँ पानी रे !

ऐसो री निडर, भकभोरी मोरी बहियाँ रे !

राधा जा नहीं पा रही थी, इसलिए वह नाच रही थी । यह भी खूब रहा ।

इस बीच मैंने देखा सभी निमंत्रित व्यक्ति चले जाने के लिए व्यग्र हो रहे थे, पर जब तक स्वयं दरवार न उठे, तब तक निमंत्रितों के उठने का नियम नहीं । भला इस तरह धण्टो नाच कैसे देखा जाता ! हर बात की हद तो होती ही है ।

अन्त में वाजा रुक गया, और वाजे की ध्वनि देर तक कमरे में गूँजती रही । न मालूम हिज हाइनेस कब खिसक गये थे । अब सब लोग उन्हीं का अनुसरण करने लगे । अंग्रेजी ढंग पर हाथ से हाथ मिलाकर हम लोग एक दूसरे से विदाई लेने लगे । नर्तकियों को मैंने दूर से नमस्कार कर दिया । नर्तकियों ने राजपूत-प्रथा से सीने पर हाथ रखकर सिर झुकाकर विदाई ली । उनमें अब मुझे जो छन्द और सूर का स्पन्दन प्राप्त हुआ, वह नाच में नहीं मिला । नाच का वर्णन उसी प्रकार किया जा सकता है, जिस प्रकार किसी से जब पूछा गया था कि तुमने यह चित्र पसन्द किया, तो उसने बहुत सोच-समझकर, जान बचाकर कहा था—इसका चौखटा बहुत बढ़िया है । रवीन्द्रनाथ ने नारी के दो रूप बताये हैं, एक उर्वशी का और दूसरा लक्ष्मी का । यहाँ लक्ष्मी की आशा तो थी ही नहीं, उर्वशी का दर्शन भी नहीं मिला ।

नयी पीढ़ी का विकास

दरवारी नाच से मन नहीं भरा ।

ऐसा लगा जैसे नकली मणियों और मोतियों की चमक देखकर लौट आये हैं । यद्यपि मैं कोई जाँहरी नहीं, फिर भी इतना समझना कठिन न था । केवल मैं ही क्यों, जो लोग इस देशी नाच के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते, जो बॉल डान्स के साधारण पैतरे करते रहते हैं, केवल उसकी सामाजिकता में रस लेना ही यथेष्ट समझते हैं, वे भी इस सहज सत्य को समझते हैं ।

पर क्या मालूम ? मुझे बंगाल के नवजागरण के युग की संस्कृति का रस लेने का उतना मौका नहीं मिला, फिर भी मैंने बहुतों को उसका रस लेते देखा तो है, इसी कारण शायद मुझे यह नाच अच्छा नहीं लगा । शायद आधुनिक सभ्यता की पॉलिश से जगमग हल्के नाच देखने के बाद ये पुराने गुरुत्वपूर्ण नाच अनभ्यस्त आँखों को अच्छे नहीं जँचते । यह उसी प्रकार है जैसे फ्यूचरिस्ट डिजाइन के सोने के हल्के ब्रेसलेट के मुकाबिले में पुराने जमाने के भारी बाजूबन्द अब अच्छे नहीं लगते । नाइलन के हवाईयन हवा शर्ट के मुकाबले में क्या अब मोटे रेशम का कुर्ता अच्छा लगता है ?

पर इन दोनों में असली माल कौनसा है ? मन में यह प्रश्न बना ही रहा और चुभता रहा । समझ गया कि इसे सुलझाना ही पड़ेगा । स्मरण हो आया कि तीसरे साल पहले ब्रिटिश युग के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स मॉन्टेग्यू साहब ने इस नाच की बात अपने गुप्त रोजनामचे में लिखी थी । भविष्य में कोई इन्हें छापे के हर्कों में पढ़ेगा, इस उद्देश्य से यह रोजनामचे में सभी बातें दिल खोलकर लिखी गई थी । महमूदाबाद के राजा ने उन्हें एक बार दरवारी नाच दिखलाया था । इसे देखकर उन्होंने लिखा था—“भट्टी स्त्रियाँ अजीबोगरीब पोशाक पहनकर स्वार की तरह शोर मचाकर मिर्गी-रोगी की तरह बार-बार हाथ-पैर पटक रही थी । वे (भारतीय) कहते हैं कि हम लोगों का गाना-बजाना भी उनके लिए इसी प्रकार कठिन है । मेरी भी यही अनुभूति है, फिर भी मैं इतना समझता हूँ कि हमारा संगीत कहीं पर शुरु होता है और फिर कहीं उसका किसी प्रकार अन्त भी होता है । प्राणवान् और हँसासे भारी और हल्के संगीत के फर्क को मैं समझता हूँ ।”

संगीत के सम्बन्ध में मेरा भी ज्ञान इससे अधिक नहीं है । फिर भी इस महाजन की राय स्मरण कर इतनी सान्त्वना मिली कि जो लोग दरवारी नाच के आशिक हैं,

वे भले ही मुझे भरसिक करार दें, पर इस अपराध के कारण मुझे मनुष्य-समाज के बाहर निकाल देने की राय नहीं दोगे। मनुष्य-समाज में बैठकर ही मैं इन बातों पर विचार कर रहा था, और तो भी पुराने रजवाड़े के यगन में जो नवीन राजस्थान उत्पन्न हो रहा है, उसी के वातावरण में यह भालोचना चल रही थी।

जयपुर के उत्कर्ष का चरम है अजायबघर वाली इमारत। उसी के पास राजपूताना विदनविद्यालय बन रहा है। चारों तरफ से विद्वान् अध्यापक एकत्र किये गये थे, और चेहरों पर विलायती डिग्नियों की आभा थी। जिन साधारण छात्रों को राजकुमारों के मेयो कालेज में स्थान नहीं मिलता था, उन्हें दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद आदि स्थानों में भटकना पड़ता था, पर अब उन्हें यहीं विद्या मिलेगी।

उस विद्यादान के कर्णधार डॉक्टर महाजनी थे। अब वे दिल्ली विश्वविद्यालय में आ गये हैं, पर पहले वे ही थे। वे जाति से महाराष्ट्रीय, विद्या में ब्राह्मण और यश में अन्तर्राष्ट्रीय हैं। वे गणित के एक प्रसिद्ध रंगलर हैं। यदि वे चाहते, तो शिक्षा-विभाग का बड़े से बड़ा पद उन्हें मिल सकता था, पर डेकन एजुकेशन सोसाइटी के एक सदस्य के रूप में वे तिलक और गोखले के मार्ग का अनुसरण कर नाममात्र वेतन लेकर फर्गुसन कालेज के अध्यापक-पद पर बने रहे। अब वे नये राजस्थान में नया विश्वविद्यालय बनाने के लिए आये थे। वे यहाँ के उपकुलपति थे।

स्मरण हो आया कि इसी राजस्थान में, विशेषकर जयपुर में मराठे चाय लेने आते थे, और देश को तबाह करके छोड़ देते थे। आज एक मराठा नये राजस्थान के निर्माण में हाथ बँटाने के लिए आया था। बन्दूक के बदले कलम लाया था, और बसूली के बदले दान कर रहा था। इसी प्रक्रिया में देश के भविष्य का चित्र छिपा हुआ था। इन्हीं बातों को सोचते-सोचते मैं डॉक्टर महाजनी की चाय की मेज के सामने बैठकर कुछ धन्यमनस्क हो गया था।

श्रीमती महाजनी शिक्षा के साथ-साथ सुरुचि का समन्वय करती हुई देख पड़ीं। पति प्रसिद्ध विद्वान् हैं, और कन्या अमेरिकन विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति लेकर जल्दी ही अमेरिका जा रही थी। पर इस कारण श्रीमती महाजनी का दिमाग विगड़ नहीं गया था, और वे घर के काम-काज से भागती न थी। उन्हीं की बनाई हुई मिठाई तेजी से मेरे मुँह में जा रही थी। इस पर वे मुस्कराकर बोली, ऐसा मालूम होता है कि आज सवेरे आपने हमारे घर के सामने नाचते हुए मोर देखे हैं, इसलिए आप खुश हैं। सचमुच यह खुशी की बात थी, क्योंकि कलकत्ते में मोर का नाच देखने के लिए चिड़ियाखाने की सैर करनी पड़ती है। बंगाल के किसी गाँव में भटकते-भटकते एकाएक नाचते हुए मोर देखना सम्भव नहीं था। इसीलिए खुशी थी और बहुत थी।

पर जो कुछ भी हो, इस समय मैं मराठों की प्राचीन क्षात्रवृत्ति और इस समय



अभिसार कला (प्राचीन चित्र) ।



मरुभूमि की उष्ट्र-सेना ।



प्राचीन स्थापत्य-कला (आमेर) ।

प्रेमयोगिनी मीरा ।



की ब्राह्मण-वृत्ति की बात सोच रहा था। पर यह बात श्रीमती महाजनी से कैसे कहता इसलिए मैंने तीन साल पहले देखे हुए दरबारी नाच की बात छड़दी। उसमें चमत्कार था, पर स्वतः स्फूर्ति न थी जैसी कि मोर के नाच में रहती है। मोरनी की तरह इस से अनुप्रेरणा भी उसे नहीं मिलती।

जो लोग दरबारी रसों में आकण्ठ डूबे रहते हैं, उनके लिए वह नाच शायद उपभोग्य हो। बात यह है कि वे कई रसों के रसिक होते हैं, बिलकुल दूसरी दुनिया के जीव।

और हम लोग जो इस निरामिष चाय की मेज पर जमा हुए थे, उनकी बात ही न्यायी थी। इसी मेज पर अर्थशास्त्र के दिग्गज विद्वान् कोलम्बिया विश्वविद्यालय के सर्वोच्च उपाधिधारी डॉक्टर मुकुट बिहारी माथुर भी विराजमान थे। अध्यापक गुप्त भी थे, जो तन-मन से जयपुरी होते हुए भी विद्या की टोह में सारी दुनिया मंभार चुके थे। उनकी नीली आँखें खुशी से नाच रही थीं। ऐसा मालूम होता था जैसे उन्होंने नीली आँखों के जरिये मन के वातायन खोल दिये हों।

नीली आँखें, हाँ, सचमुच आँखें नीली थीं। राजपूतों के आदिम पुरखों में आयों के साथ-साथ शकों और हूणों का भी मिश्रण था। गहराई के साथ विचार करने पर उनका आदिम इतिहास, आचार-विचार और धर्म बहुत कुछ प्राचीन जर्मन, स्कैन्डिनेवियन लोगों जैसे गाय, केल्ट, गैल आदि के साथ मिलेंगे। तातार और मुग़लों के इतिहासज्ञ अबुलगाजी ने लिखा है कि तातारों से हमें जो द्वेष है, वह बहुत कुछ लुप्त हो जाता, यदि हम यह जानते कि तातार देश याने उत्तरमध्य एशिया से ही स्वीड, फ़्रेंच, हूण आदि जातियाँ सारे एशिया और यूरोप में फैल गई हैं उन्हीं को लोग आर्य कहते हैं। हिटलर ने इसी आधार पर स्वीड आदि नाडिक जातियों को आर्यों के कुलीन ब्राह्मणरूप में घोषित किया। पर इन ब्राह्मणों को जनेऊ की जरूरत इस कारण नहीं है कि उनके सुनहले बाल, नीली आँखें और उज्ज्वल रंग उनके ब्राह्मणत्व का परिचय देते हैं।

हमने यह देखा है कि बिलकुल विशुद्ध अंग्रेज अफ़सर यहाँ एक पुस्त में ही काफ़ी बदल जाते हैं। कुछ सालों में ही उनका रंग मटमैला हो जाता है और आँखों का रंग बदल जाता है। भारत में इन लोगों के चमड़े का रंग तो बदल गया, पर आँखें कुछ हद तक वैसी ही हैं, और बाल अभी तक हम लोगों की तरह काले नहीं हुए।

अब एक हजार वर्ष की यवनिका उठाकर अध्यापक गुप्त की नीली आँखें प्रकट हुईं। उनके कन्धे के पास के रंग में और चेहरे के रंग में जो भेद था, उससे भी अनुमान की सत्यता ज्ञात होती थी। क्या इनको ठण्डे देश की आबहवा में दस-बीस पुस्त तक रखा जाय, तो ये फिर अपना मौलिक रंग प्राप्त नहीं कर सकते? बहुत से

क्षत्रिय राजपूतों को देखकर यह प्रश्न स्वतः उदित होता है। पर मैं जो बात सोच रहा था, उसे किसी गाँव के ठाकुर साहब या, जागीरदार ने कहा जाय, तो कहीं तक, उसे रचिकर होगी, इसमें सन्देह है।

एक दूसरी मेज पर अध्यापक रुचिराम बैठे थे। वे उम्र से नौजवान थे, पर बार-बार लज्जा से लाल पड़ रहे थे। स्त्री-पुरुषों का इस प्रकार बैठना और हल्की बात-चीत करना शायद उनके लिए नई अभिज्ञता थी। वे खास उदयपुर, अरावली गिरिमाला के घूँघट में छिपे हुए उदयपुर, से आये थे। वहाँ अभी ऊँचे घरानों की क्षत्रिय ललनायें साव्यजनिक मार्ग में अपने पदचिह्नों से कमल के फूल खिलाती हुई नहीं फिरती, और न सन्ध्या के समय वे रुग्ण कर्त्तु हुई पनियाँ भरने जाती हैं। वे लोग व्यर्थ में ही राधा-कृष्ण के अभिसार के गीत गाते हैं। इनके जीवन में उस प्रकार की परिस्थितियों की कोई गुंजाइश नहीं। चारों तरफ़ भील स्त्रियों को स्वतन्त्रतापूर्वक पुरुषों के साथ-साथ सब कामों में भाग लेता हुआ देखकर भी राजपूत अपनी स्त्रियों को बाहर निकलने नहीं देते, और एक अजीबो-गरीब श्रमविभाजन बनाये हुए हैं।

पहले-पहल अध्यापक गुप्त आदि मित्र रुचिराम जी को पूछते थे कि उनकी पत्नी पार्टी में क्यों नहीं आई, तो इसके उत्तर में वे बीमारी आदि का बहाना कर देते थे। पर धीरे-धीरे अब लोग जान गये थे कि जिस दिन भी पुरुषों और स्त्रियों की सम्मिलित पार्टी होगी, उस दिन वे अवश्य बीमार पड़ जायेंगी। फिर भी लोग, विशेषकर महिलायें, उनकी बीमारी पर सहानुभूति प्रकट करती थी। यह समाज के लिए न तो कोई नयी बात थी, और न कोई आश्चर्य की ही बात। पर क्या रुचिराम जी भी ऐसे स्वाभाविक समझते थे? या भीतर-भीतर कुछ दुखी या परेशान होते थे?

और उस गृहपालिता हिरणी का क्या हाल था, जिसे अन्तःपुर की चहारदीवारी में बन्द रखा गया था? क्या वह कभी बाहर की दुनिया में आने के लिए छटपटाती नहीं? कौतूहल यह होता था कि यह जो कहा गया है कि पत्नी गृहिणी, सचिव और सखा होती है, वह इस क्षेत्र में कहाँ तक सत्य था? क्या विवाह के बाद उनका मिलन उच्च से उच्चतर होता गया है। वह दाम्पत्य मिलन ही रह गया है? राजस्थान में पहली बार आने के पहले नयी दिल्ली के इण्डिया गेट के मैदान में लेटकर आधुनिक राजपूत रमणी पद्मा के विद्रोही मन का जो परिचय मिला था, क्या उसकी छाया श्रीमती रुचिराम पर पड़ रही थी?

बात तो मोर के नाच पर चल रही थी। अध्यापक गुप्त बोले—मोर से नृत्य में प्रेरणा मिलती है, पर मोर के नाच में और दरबारी नाच में बहुत फ़र्क़ है। दरबारी नाच कृत्रिम शिक्षा का परिणाम है, और वह सिन्थेटिक नाच है।

मैंने कहा—मैं इतनी छानबीन करने के लिए तैयार नहीं। जो नृत्य मन में

हिलोरें उत्पन्न करे, वही असली नृत्य है। क्या मोरनी को भरत के नाट्यशास्त्र की शिक्षा किसी ने दी है? फिर भी जब मोर नाच उठता है, मोरनी स्वयं ही फिरकियाँ देने लगती है।

महाजनी की कन्या ने कहा—आप इस इलाके में नये-नये आये हैं, आपको सभी चीजें अच्छी लगेंगी, नहीं तो टूरिस्ट क्या हुए। आपको तो दरवारी राजपूत नाच भी अच्छा लगेगा।

श्रीमती जी ने भी यही पक्ष लिया, इसलिए आत्मरक्षा का कोई मार्ग ही नहीं रहा। वे बोलीं—ये तो जब से राजस्थान आये हैं, तब से लोक-संस्कृति के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। टोडरमल के कितने हाथी थे और शाहजहाँ के कितने नाती थे, इन बहुमूल्य तथ्यों के अतिरिक्त टुटे हुए पत्थर में राजपूत कला, जंग लगी तलवार की उम्र, गंडे के पिचके चर्मखण्ड में हल्दीघाटी का इतिहास ढूँढ़ते रहते हैं।

दूसरी तरफ़ से भी हमला हुआ। रचिराम जी सिर झुकाकर ही बोले—आपने मोरों में जब नाच का इतिहास ढूँढ़ निकाला है, तो आप मोरपंखी पोशाक वाली नर्तकियों में उसका विकास भी ढूँढ़ डालिये।

मैंने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा कि मेरे साथ कुछ अन्याय हो रहा है। मेरा इतना कहना था कि सब लोगों की तरफ़ इसका और भी प्रतिवाद हुआ। क्या करता, मैंने अपराध मान लिया। पर साथ ही साथ मैंने यह भी अर्जी पेश कर दी कि हम रजवाड़ों के अतिथि हैं, इसलिए मेजवान के नाते दूसरों को चाहिए कि मुझे विशुद्ध नृत्य कहां देखने को मिलेगा, इसका पता दें। यहाँ तक कि जरूरत पड़ने पर स्वयं नाचकर प्रदर्शित करना भी राजस्थानियों का कर्तव्य है।

श्रीमती महाजनी चट से इस जिम्मेदारी का ब्यूह भेदकर बाहर निकल आईं, बोलीं—हम भी यहाँ नये-नये हैं, और असली जयपुरी नाच देखने की उत्सुकता हमें भी है।

मैंने अपने धनुष से दूसरा बाण छोड़ते हुए कहा—कथक नृत्य जयपुर का विख्यात नृत्य है, पर यह पता नहीं लगा कि कहां का जयपुरी कथक उत्कृष्ट और विशुद्ध है। अध्यापक गुप्त जयपुरी हैं, इसलिए उन्हें यह बताना पड़ेगा।

राजपूत सवार जैसे रकाव पर पैर रखे बिना ही घोड़े पर चढ़ जाता है, उसी प्रकार वे कुर्सी छोड़कर एकदम उठ पड़े और बोले—यूरेका। गंगोरी दरवाजे के पास से गली में जाते हुए मैंने एक दिन कथक के बोल सुने थे। विलकुल मोर की आवाज़ की तरह शायद यह नृत्य मोर का ही नृत्य हो। अभी मेरे साथ चलिए। पहले जगह देख लें, फिर सब लोग चलेंगे।

मैं परम उत्साह से कथक नृत्य की खोज में चल पड़ा। उस समय मन-मोर नाच उठा।

कथक नृत्य की कहानी

सिर पर लपलपाते हुए छुरे को एक बार घुमाकर तबलची ने दिखा दिया। उस समय मेरा प्राण-पखेरू प्रारम्भिक छटपटाना भूलकर छुरे की मार खाने के लिए तैयार हो चुका था।

हीरावाई के मुँह से आधी दबी हुई चीख निकली। मजलिस जमने के बाद भगड़े-वखड़े और मनमुटाव हो जाना मामूली बात थी, पर आँख के सामने सरेआम कत्ल हो जायगा, यह वह भी नहीं सोच सकी थी।

हीरावाई के घर में तीन दिन तक मास्टर सोहनलाल छिपे रहे। नीचे उतरे कि छुरे से उनका काम तमाम कर दिया जायगा, यह कहकर तबलची साहब नीचे चले गये थे। महज धोती और वन्डी पहनकर वाई जी की मजलिस में साहनलाल नाच देखने आये थे, पर उन्हें तीन दिन वाई जी की साड़ी पहनकर काटने पड़े।

इस दुर्घटना की बात कहते हुए सोहनलाल के माथे पर शिकन नहीं आई। वल्कि लापरवाह बहादुरी की भावना सजग हो गई। फिर भी उन्होंने यह माना कि उनके जीवन में ऐसी बहादुरी बस एक ही बार हुई थी। मास्टर जी याने सोहनलाल ने उस घटना की रात में ऐसा नाच नाचा था कि तबलची सम्हाल नहीं सका। इसी से वह तबला छोड़कर कत्ल का भय दिखाकर नीचे उतर गया था। नाच और तबले की संगत को हम देखने वाले खूब उपभोग करन हैं, पर भीतर ही भीतर दो उस्तादों की होड़ चला करती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ये नाच भयंकर होते हैं।

कंदूकट भिज खेलते-खेलते पति और पत्नी में मनमुटाव होते देखा है, यहाँ तक कि यह भी सुना गया है कि तलाक की दरखवास्त पड़ गई है, पर नाच की मजलिस में इस प्रकार की स्पर्धा कल्पना के बाहर है।

उन दिनों मास्टर जी कम उम्र थे। लम्बा इकहरा वदन था। श्यामरंग के अन्दर से विशिष्ट राजपूती ढाँचा उभरकर सामने आता था। शरीर ऐसा लचीला था कि कथक, राधाकृष्ण का लास्य नृत्य या नृमुण्डमालिनी नृत्य सबके लिए उपयुक्त था।

उनके हाथों और पैरों की उँगलियों को देखकर समझने में देरी नहीं हुई कि उनके द्वारा कला और शस्त्रविद्या दोनों की साधना समानरूप से सम्भव है। महीन मलमल के कुर्ते की आस्तीन उठाकर लम्बे कले की तरह उँगलियों की मुट्ठी बांधकर

मास्टर जी ने, हमें नमस्कार करते हुए, दरी पर बैठने के लिए आह्वान किया। बंगला में दरी को शतरंजी कहते हैं। यह नाम राजपूताने की सुन्दर कलामय दरियों के लिए अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। दरी से कोई ध्वनि नहीं निकलती।

इतना तो मानना ही होगा कि नामकरण में बंगाली अभी तक भारत में सबसे आगे हैं। जूतों की दूकान का नाम 'श्री चरणेषु', मिठाई की दूकान का नाम 'मिष्टिमुख' (मीठा मुँह) और परचून की दूकान का नाम 'पण्यश्री' केवल बंगला भाषा में ही सम्भव है। बंगाल की मिट्टी कुछ ऐसी है कि धान की बालों में कनिता उगती है। पवन के झकोरे से धान के पौधे अप्सरों के नाच की भगिमा दिखा देते हैं। एक ओर से पपीहे की हूकभरी पी कहाँ सुनाई पड़ती है? पपीहे का गाना ही जैसे बतला देता है कि इस गाँव का नाम मधुवनी वनस्थली या नयनजोड होगा। इसी का फल है कि गलीचे का जन्म होने पर उसका नाम यहाँ रखा गया दरी, परन्तु रसहीन व्यवसायी के हाथ से मुक्त होकर जब वह बंगाली गृहिणी के मधुर हाथों में पहुँचा, तो उसका नाम रखा गया शतरंजी।

शेक्सपियर ने यह प्रश्न उठाया है कि नाम से क्या आता-जाता है, पर हमें ऐसा लगता है कि सुन्दर भीनेवृत्त पर शिथिल साज में खड़ी चमेली को रोडोडेन्ड्रन नाम से पुकारना क्या अच्छा लगेगा? क्या उससे उसकी सुगन्ध का कुछ पता चलेगा।

मान लीजिए, अगल बगल दो दूकानें हैं। एक में हर तरह की फ़ायरिस्ट कला की चीजों के नमूने सजाकर (निन्दुकों का कहना है कि ऐसी दूकान का भविष्य अन्धकारमय है, इसलिए) साइनबोर्ड लगाया गया है, इसका नाम मनोहारी है। दूसरी दूकान पर सीधे-सीधे काले मोटे हफ़ों में लिखा है—'हिकमत राय साहब की दूकान'। और उसके नीचे और भी लिखा है ब्रदर फ़ेल्ड बी० ए०। अब आप यह बताइए कि आप किस दुकान की तरफ़ झुकेगे? कहना न होगा कि कम से कम प्रथम दर्शन में आप मनोहारी नामक दूकान से प्रेम करेंगे।

फिर भी मैंने सोहनलाल से प्रश्न किया—जिस नाच की इतनी ख्याति है, उसे आप कथक क्यों कहते हैं? पेशावर के आगे अफ़ग़ानिस्तान के पास जो पठान उपजातियाँ रहती हैं, उनमें घटक नाम से एक नाच प्रचलित है। इस घटक नृत्य में नर्तकों के हाथ में तलवार इस प्रकार से लपलपाती रहती है कि नाचने वाले तो कम, तलवार की लपलप ही अधिक दिखाई पड़ती है। अब पूछा जाय कि घटक का क्या अर्थ है?

उधर से उत्तर आया—नहीं, कथक, उस प्रकार का कोई नृत्य नहीं है। फिर भी यह बता दिया जाय कि कथक में घटक से कम परिश्रम या प्राणशक्ति नहीं लगेगी। जो लोग हमारे सामने पूर्वी देशों के दूसरे कोमल नाचों के अभ्यस्त हैं, कथक उनके वश की बात नहीं।

उन्होंने बताया—जो बात बतानी है, उसे सुन्दर चरणाक्षेप से इस नृत्य में बताया जाता है, इसीलिए इसका नाम कथक है। चरणों की इस कारीगरी को बोल कहते हैं।

बात यह है कि सिर्फ चरणों की गति में ही किसी बात को प्रकट करना बहुत ही कठिन कार्य है, विशेषकर यह उस समय और भी कठिन हो जाता है जबकि एक ही व्यक्ति को एक ही साथ राधा, कृष्ण, शिव और पार्वती का नृत्य दिखाना पड़ता है। इनको इस ढंग से दिखाना पड़ता है कि दर्शकों को मालूम पड़ जाय कि कहाँ किसका नृत्य समाप्त होता है, और कहाँ किमका नृत्य आरम्भ होता है ?

भंगिमा और मुद्रा के द्वारा किसी बात को कहना फिर भी आसान होता है, पर केवल चरणाक्षेप से किसी बात को प्रकट करना बहुत ही कठिन है। भारत नाट्यम में रूपक और भंगिमा के द्वारा किसी बात को प्रकट किया जाता है। कथाकली में किसी बात को प्रकट करने में मुख्यतः हाव की मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। मरिणपुरी में सारे शरीर की भावभंगिमाओं द्वारा अभीष्ट बात कही जाती है। इन बातों को बताकर सोहनलाल बोले—अब आप समझ लीजिये कि किस नाच में बात करना सबसे कठिन है, और किस में सबसे अधिक साधना की आवश्यकता है।

सोहनलाल का यह भी कहना था कि सब भारतीय नाचों की मूल बात कथक में सीखी जा सकती है। बात यह है कि इस नाच के द्वारा गाने और छन्द की शिक्षा पक्की हो जाने पर ही दूसरे नृत्य सीखे जा सकते हैं। जिस प्रकार से पक्के गानों के द्वारा गले को ठीक कर लेने पर ही आधुनिक संगीत अच्छा गाया जा सकता है।

सोहनलाल के मतानुसार उदयशंकर के विश्वविजयी नृत्य के मूल में यही बात है। राजस्थान में उदयशंकर का जन्म हुआ था, इस कारण राजस्थानी उनके सम्बन्ध में विशेष गौरव की भावना रखते हैं।

• उदयशंकर के नूपुर राजस्थानी कथकनृत्य के ढंग पर बँधे हुए थे, पर सिर पर बंगाल के नवजागरण की आभा थी, साथ ही उनकी आँखें सारी दुनिया के रंगमंच में दर्शकों की रुचि और रूप-साधना पर लगी हुई थी। उदयशंकर ने नृत्यभारती के लिए समस्त विश्व से पुष्पहार और सम्मान प्राप्त किया। उनके नृत्य की नींव कथक पर थी, किन्तु उन्होंने उस नींव पर नाना प्रकार के नृत्यों से सुन्दर भवन निर्माण किया। मैं न तो पण्डित था, न पण्डित, इसलिए मेरे लिए यह कहना सम्भव नहीं था कि उस महान् कलाकार ने कहाँ से कितना लिया और कितना स्वीकार किया। मैंने सोहनलाल जी से यह तर्क नहीं किया कि किसा हीरे को ज्यों का त्यों रख देने में अधिक कृतित्व है या उसमें नया शिल्प उत्पन्न कर उसमें नयी खूबियाँ ले आने में ? मन ही मन मैंने कहा कि उदयशंकर ने जो कुछ किया है, वह शायद रूप बदलकर पेश करना है। पर रूप बदलने का अर्थ न तो बनावटी चीज़ मिलाना है, और न ग़लत मार्ग पर चलना। रूप बदलना सर्जन

या नवसृष्टि है, जब कि मिलावट करना विनाश है। रुढ़िवादी नृत्यकारों के नृत्य शुष्क व्याकरण हैं, किन्तु उदयशंकर का नृत्य तो साक्षात् काव्य है।

पर इस देश के गुणी सारी दुनिया की प्रशंसा और निन्दा की हवा से बचाकर अपनी कला के दीये की रक्षा करते हैं। रंगमंच की फुटलाइट से उनकी आँखें चकाचौंध नहीं होती। सिनेमा की स्पष्ट रोशनी के सामने आने के लिए उनमें कोई व्याकुलता नहीं है। सोहनलाल जी इसी प्रकार के गुणियों में से थे। इनकी संख्या बराबर घटती जा रही है, पर यह भी सत्य है कि कथक-कला का भविष्य इन्हीं लोगों के हाथों में है। देश भी इस बात को स्वीकार करता है।

उत्तर भारत में तीन केन्द्रों यानी लखनऊ, दिल्ली और जयपुर से कथक नृत्य का प्रचार हुआ था। कहना न होगा कि इनमें लखनऊ का दबदबा सबसे अधिक रहा। यहाँ का नृत्य सबसे अधिक मीठा भी है। लखनऊ में सभी बातें मीठी हो जाती हैं। यहाँ की उर्दू मंजी हुई है, यहाँ का तकल्लुफ़ और शिष्टाचार तो मशहूर ही है। बताया जाता है कि यहाँ के लोगों की चितवन भी बड़ी बाँकी होती है। महीन और मीठे की साधना में यह नगर सबसे आगे पहुँच गया था। नृत्य और गति की चर्चा लखनऊ में जिस प्रकार हुई, वैसी कहीं नहीं हुई। लखनऊ का नवाब तो सौ वर्ष पहले ही मिट गया, पर नवाबी नहीं मिटी। विलासिता के उपकरण तो चले गये, पर विलासी मन रह गया। इसीलिए यहाँ कला मरी नहीं, यद्यपि उसे अब नवाबी पृष्ठ-पोषण नहीं मिल रहा। कथक के एक से एक बड़े उस्ताद लखनऊ में पैदा हुए। यह तांता बराबर जारी रहा।

कथक नृत्य के द्वारा पहले राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती या सीता-राम की उपासना को रूप दिया गया। हैबलक एलिस ने यह लिखा है कि दार्शनिकों के विचार भी छन्दों का रूप लेकर चलते हैं। प्रत्येक माता ने देखा होगा कि बच्चे विशेष प्रकार के ताल-स्वर में नाचते हुए अपने मन के भाव व्यक्त करते हैं। इसलिए भक्त अपनी भावुकता के प्रवाह में नाच उठेगा और नृत्य के रूप में अपने मन के आवेश को निवेदित करेगा, इसमें आश्चर्य क्या ?

हमारे देश में वैरागी या वाउल इकतारा बजाकर नाच-नाचकर सन्ध्या समय तुलसीवृक्ष के सामने कीर्तन करते हैं। उत्तर भारत में भी इसी प्रकार कथक नृत्य की सृष्टि हुई होगी। पर कालक्रम से इस नृत्य का प्रवेश दरबारों और हरमों में हुआ और जब भक्ति घटी तब आसक्ति के कारण यह नृत्य जीवित रहा।

फिर भी विन्दादीन नामक एक गरीब भक्त ने दरबार का आश्रय न लेकर, कृष्ण भगवान् की शरण में नाचकर सारी उम्र काट दी। वे नाच असंख्य ठुमरी-बोलों की रचना कर गये हैं। शायद कथक-शैली का वही सबसे मूल्यवान् ऐश्वर्य है।

लखनऊ के अच्छन महाराज का नाम भी सब नृत्य-रसिकों की जीभ पर बना रहता है। रहा जयपुर का कथक नृत्य, सो वह राज-दरवार के कारण ही जीवित है। जैसे उत्तर प्रदेश में अच्छन महाराज ने नाम पैदा किया था, उसी प्रकार जयपुर में जियालाल ने अखण्ड ख्याति प्राप्त की थी। सोहनलाल जी इसी जियालाल के शागिर्द हैं।

एक कथक मजनिम की कल्पना कीजिये। कथक-नृत्यकार चूड़ीदार चुस्त पायजामा, टोपी और अंगरखा धारण किए हुए है। सारंगी और तबले पर संगत हो रही है। संगत शुरू होते ही कथक नृत्यकार आकर खड़ा हो जाता है। उसके कपड़े जगमगा रहे हैं। पैर में बंधा हुआ नूपुर तबलें के साथ बज रहा है। कथक पहले बोल की आवृत्ति करता है, शायद गाने की एक कड़ी भी गाता है। इसके बाद नाच शुरू होता है, शिव का ताण्डव नृत्य—

जटा टवी गलज्जलं प्रवाह पावितस्यले,

गले वलंब लवितां भुजंगतुंग मालिकाम्।

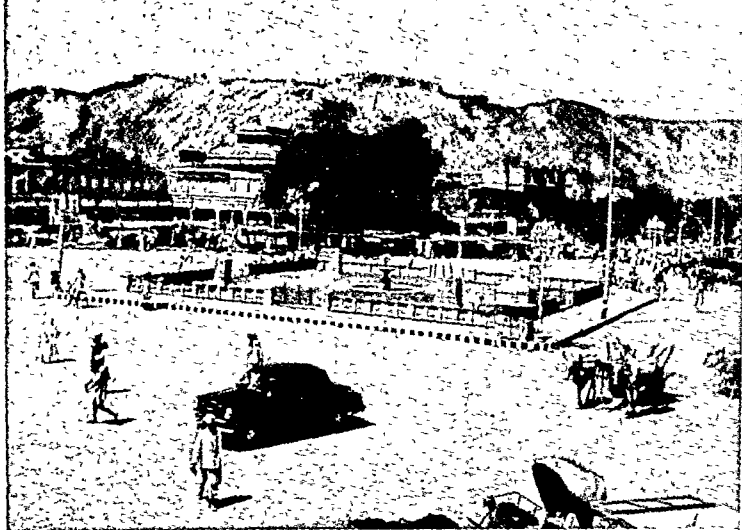
डम डम डम मारोन्निनाद बड़ भवंयम,

चकार चंड ताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम्॥

अपने गुरु जियालाल की बात कहते कहते सोहनलाल बिलकुल मुग्ध-बुध भूल जाते थे। कहते थे कि न तो किसी गुरु ने इतनी मार मारी, और न किसी ने इतना स्नेह किया। मार के साथ-ही-साथ निःस्वार्थ रूप से विद्या की शिक्षा चलती थी।

कहते हैं कि उड़ीसा के एक राजा साहब ने जियालाल को अपने दरवार में लाकर कुछ दिन रखा। राजा साहब स्वयं कथक के अच्छे ज्ञाता थे, और अच्छन महाराज आदि बहुत से कलाकारों के पृष्ठपोषक थे। जियालाल वहाँ बड़े आराम से रहे। प्रतिदिन दोनों जून दस सेर दूध की खड़ी ओटाई जाती थी और वे तथा उनके शागिर्द उसका सेवन करते थे। खड़ी की प्रेरणा से कह लीजिए या शिक्षा के फलस्वरूप, कार्तिक नाम का चेला बहुत अच्छा नर्तक बन गया। कहते हैं कि धा-तेइ-ई-ता इतने में ही चेला सत्ताईस चक्कर कर लेता था। कथक का मूल तो उसका बोल है। उस्ताद जिस प्रकार से बोल बताता है, उसी प्रकार चेला सीखता है। जब उस्ताद सिखाना नहीं चाहते, तो तबला इस प्रकार बजाते हैं कि बोल पकड़ में न आवें। पर जियालाल ने कार्तिक को सारे गुप्त सरगम भी सिखाये थे।

शागिर्द अच्छा सीखता है, तो गुरु को खुशी होती है। एक मुल्तानी गाय, एक गाँव और एक थाल रुपये पाकर जियालाल बहुत प्रसन्न हुए, और अपनी कला की चर्चा करते रहे। इतने में राजा को यह सूझा कि अपने राज्य में पोलिटिकल एजेण्ट को निमंत्रण दिया जाय। ब्रिटिश जमाने का पोलिटिकल एजेण्ट खालिस साहब होता था, सो भी या तो आई० सी० एस० या आर्मी आफिसर। ऐसे लोगों का मिज़ाज हर



जयपुर की चौपड़ ।

सपरिवार किसान ।





उदयपुर राजप्रसाद के सामने शाही सवांगी की तैयारी ।

समय सातवें आसमान पर रहता था। बात यह है कि राजाओं को हर समय लगाम में रखा जाता था। इन राजाओं की रियासतों से सटे हुए ब्रिटिश इलाकों में हर दस साल बाद एक आन्दोलन चलता था, और उससे ब्रिटिश सिंहासन का एक हिस्सा घँस जाता था। कम से कम नक्शे में जो स्थान पीले दिखलाये गये थे, उन्हें इन आन्दोलनों से बचाना पोलिटिकल एजेण्ट का काम था। इसलिए ये एजेण्ट बहुत सतर्क रहते थे। इनको अधिकार भी बहुत थे। उसकी इच्छामात्र से राजा साहब का स्वर्ण मुकुट जमीन पर लोट सकता था। उसकी उँगलियों का इशारा ब्रिटिश सिंह की दुम का हिलना होता था।

ये एजेण्ट राजा के ऊपर राजा हांते थे। यद्यपि ब्रिटिश लोकतन्त्र का तामझाम इन्हें घेरे रहता था, पर इनका तृतीय नेत्र हर समय सावधान रहता था, और किसी भी समय वह प्रयत्न रूप में जल सकता था।

मार्ई-वाप सरकार के इस प्रतिनिधि के आने पर राज्य में जोरों की धूम-धाम होने लगती थी। इस बार भी उनके आने पर रियासत में उत्सव होने लगा, क्योंकि, तस्मिन् तुष्टे जगततुष्टम्। भोज, शिकार, दरबार सभी हुआ। अन्तिम दिन नृत्य के लिए रखा गया। राजा साहब ने जियालाल का परिचय एजेण्ट साहब के साथ कराया। जियालाल कृतकृत्य हो गये। कार्तिक के नाच पर बहुत बाहवाही हुई, यहाँ तक कि एजेण्ट की मेमसाहब ने इस सुन्दर किशोर को पास बुलाकर बहुत तारीफ़ की, और अन्त तक आँख से चश्मा उतारते हुए उन्होंने राजा साहब को कृतार्थ करते हुए पूछा—आप तो राजा साहब बड़े गुणी मालूम होते हैं। इसे इस अद्भुत नृत्य की शिक्षा किसने दी ?

राजा साहब की बाँछें खिल गईं, और वह ऐसे हो गये, मानो उनके सामने स्वयं भगवान् शिव खड़े होकर वर माँगने को कह रहे हों। शिव भी कैसे कि कोई कात्पनिक नहीं, बल्कि साक्षात् पोलिटिकल एजेण्ट की मेमसाहेब।

राजा साहब ने बटलरों को इशारा कर दिया कि और शैम्पेन की बोतलें ले आयें। फिर क्या था, शैम्पेन बहने लगी पानी की तरह। दिल हलका हो गया और सातवें आसमान पर उड़ने लगा। ऐसे समय में सुनहरी शैम्पेन की कलकल ध्वनि के के समान और क्या था ?

कहानी सुनते-सुनते उमरखय्याम का यह शेर याद आ गया—

मै लाल् मूजा वस्त ओ सुराही कानस्त।

जीगमस्त पियाला ओ शराब अस जावस्त ॥

अंजामे बलाभरिन के जे मैं खन्दानस्त।

आइकी अस्त के खुन दिलदार ओ पिनहानस्त ॥

क्या गीराजी हाथ में लिए वहिश्त की हूँ आ गई ? या इस दुनिया का साकी आ गया ?

फ़ारसी कविता मानो हृदय में नुपूर की भंकार बनकर भनभना उठी थी। हृदय-तन्त्री के तार आनन्द और वेदना के स्वरों में भंकृत हो उठे थे।

मैं कुछ अन्यमनस्क हो गया। इस पर सोहनलाल ने मुझ से प्रश्न किया कि क्या आप और कुछ सोच रहे हैं ?

जो कुछ भी हो, मैं सम्हल गया, और कहानी आगे बढ़ी। प्याले की फ़ौज शराव अश्रुविन्दु की तरह छलक रही थी। राजा साहब ने श्रेय लेने के लिए मेमसाहब से कहा—मैंने सिखाया है।

उधर जियालाल शिरोपा पहने पास ही बैठे थे। सुनकर वे लाल पड़ गये, और धीरे से वे अपनी जगह से खिसक गये, और किसी को कानोंकान पता नहीं चला कि वे कहाँ गये ?

तब तक प्याले में और शैम्पेन उँडेल दी गई। किस की वेदना का प्याला भरपूर हो रहा था, यह सोचने का किसी को अवकाश नहीं था।

‘संगीत जारी रखा जाय’ ऐसी अंग्रेजी में एक कहावत है। वास्तव में संगीत ही सत्य है। जीवन का संगीत जिसमें हास्य और रुदन हीरे और काँच की तरह एक साथ जड़े हुए हैं।

जियालाल अब एक नया शागिर्द बनाने लगे और अब की बार एक किशोर के बजाय एक किशोरी को अपनी शिष्या इसलिए बनाया कि यह एक ऐसा नाच सीखेगी जिससे कि कार्तिक इसके सामने पानी भरे। नवीन उत्साह से वे नये बोल की रचना करने लगे। इस लड़की का नाम जयकुमारी था।

जो ललित-कलाप्रो से एक बार प्रेम कर लेता है, वह उन्हें फिर नहीं छोड़ पाता। मनुष्य के प्रति प्रेम में आदि भी है और अन्त भी, पर कलाकार के प्रेम में आदि तो है पर अन्त नहीं। उसके हृदय पर चोट लग सकती है, यहाँ तक कि उसे हानि भी पहुँच सकती है, पर उसका हृदय चोट भले ही खा जाय, मर नहीं सकता। उमर-खय्याम ने एक शेर में कहा है कि वह हृदय व्यर्थ ही है, जिसमें प्रेम नहीं है, जिसमें हर्ष नहीं है और जो दिन प्रेम के बगैर कट जाता है, वह भी व्यर्थ ही है और उसमें हाहाकार ही रहता है। इसीलिए जियालाल फिर नयी उमरों से अपना हृदय बाँधकर काम में जुट पड़े, पर दुःख है कि उनका हृदय फिर भरा नहीं।

जयपुर में जब वर्षा होती है, तो बड़ा शुभ अवसर समझा जाता है। बात यह है कि साल भर में कुछ हजार बूँदें ही गिरती हैं। चारों तरफ लता और पौधों से भरी हुई पहाड़ियों की कतारें हैं, जिनके लिए वर्षा कितनी लाभदायक हो सकती है ?

इसलिए जियालाल वर्षा के बोल तैयार करने लगे । भूला-पूरिमा के लिए उन्होंने यह बोल बनाया—

उमड़ घुमड़ घटा, उमड़ घुमड़ घटा
घरियर घरियर गरजियो,
ना दिग दिग ना दिग दिग
जो दिग दिग जो दिग दिग
बुने कि अटपटा बुने कि अटपटा
इनघिने इनघिने ओ गरियो ।
पड़त बूंद पड़ताल जा पर तर तर
हर सागर तट भरियो, थरंर तट ।

इसी गीत के साथ जयकुमारी को पंख पसारकर नाचना था, पर जयकुमारी उस्ताद के अनुशासन को सहने में असमर्थ होकर भाग खड़ी हुई, इसलिए बोल बनने पर भी वह भूला-पूरिमा खाली चली गई ।

यह कहानी सुनते-सुनते अज्ञात और अपरिचित जियालाल के प्रति सहानुभूति जगी । अभी चार-पाँच साल पहले भी जियालाल एक के बाद दूसरे कथक नृत्य की रचना कर गये हैं । उपन्यास या चित्रपट में करुण कहानी अच्छी लगती है, पर प्रतिदिन के सादे जीवन में वह उतनी प्रिय नहीं होती, इसलिए मैंने सोहनलाल की जीवनी जाननी चाही । वे हँसकर बोले—आप मोर का नाच देखकर खुश हुए थे, मैं मोर के नाच की कहानी आपको सुनाता हूँ । जियालाल की तरह मैंने भी वर्षा के एक बोल की रचना की—

उमड़ घटा घनघोर, दामिनी मोर
मचाये शोर, दामिनी दमके, थरंर छक् ।

सिर्फ, थरंर छक् के अन्दर मोर की तरह चार फिरकियाँ लगानी पड़ती हैं । इसके साथ तबला बजाना भी एक ही मुसीबत है । सच तो यह है कि उस दिन जब मैं हीराबाई नागरी की मजलिस में बाह-बाही लेने के लिए उतर पड़ा (तब मेरी उम्र कम थी) तो कोई तबलची इस बोल को तबले पर उतार न सका । मैंने तरस खाकर तबलची से कहा—इस बोल को तुम उँगलियों से नहीं उतार पाओगे, इसके लिए छुरी से तबले का चमड़ा काटकर बोल निकालना पड़ेगा । शर्म से सुर्ख पड़कर तबलची ने सचमुच तबले के चमड़े को गोल करके काट डाला, और फिर बोल निकला । मुझ पर भी सनक सवार हो चुकी थी, इसलिए मैंने फिर से वही बोल उतारा, लेकिन चार साल के बदले आठ साल में । तबलची ने दूसरा तबला काटकर फिर बोल निकाले । मैं जो पीछे हटने वाला न था । मैंने नृत्य की गति बढ़ाकर सोलह मात्रा कर दी ।

मजलिस में बाह-बाह होने लगा । तबन्ची दायें-बायें गिर हिजाते-हिजाते तबला छोट-कर उठ गया हुआ और हाथ में छुरी लिये हुए बोला—अगर आ नीचे, अन्य तैरा चमटा काटकर बोल निकालूंगा ।

नाच बंद हो गया । तबन्ची का शोध उतारने के लिए मुझे तीन दिन तक घाई जी की माड़ी पहिनकर छिपा रहना पड़ा ।

इस कहानी के बाद सोहनलाल ने जो नृत्य दिखाया, उमते मेरा मोर-नृत्य देखना सार्थक हो गया ।

रूपसी रानी पद्मिनी

एकाएक मैं ठिठककर खड़ा हो गया, क्योंकि बंगाल का बाउल गाना सुनाई पड़ गया । साथ में एकतारा बज रहा था । सुदूर चित्तौड़गढ़ के पास की एक शाम की घटना थी । चारों तरफ़ सन्नाटा था, यहाँ तक कि मेरे ताँगा वाला भी कहीं दूर था ।

यह चित्तौड़ की अग्रगणित वीरताओं और जौहर-व्रत की लपटों से निकले किसी मायावी पुरुष की लीला न थी । जीते-जागते मनुष्य का स्वर था—बँगला गान । गीत यह था—

रूप सायरेर घाट बड़ पिछल,

घाट नाम ते गो करे टल मल, रे, रे. ए. ए.

अभी इसका सुर विलीन नहीं हुआ था कि मैं गेरुवा वस्त्र पहिने बाउल महाराज के पास आकर बैठ गया । गेरुवा वस्त्रधारिणी सन्ध्या बहुत पहले ही चित्तौड़ की घूसर पहाड़ी चोटी पर आकर बैठ गई थी । मैंने संकोच के साथ बाउल महाराज से कहा—महाराज ! आप शायद बंगाल से आये हैं ?

उन्होंने कहा—जी हाँ, क्या आप कलकत्ते से आये हैं ?

मैंने कहा—मैं दिल्ली में रहता हूँ, पर पूर्वी बंगाल का रहने वाला हूँ ।

शायद जो कुछ मैंने कहा उससे बाउल महाराज की पूर्व-स्मृतियाँ जाग उठी । उन्होंने भावुकता के समुद्र में गोता-सा लगाया । केवल उँगलियाँ अन्यमनस्क ढंग से एकतारे पर धीरे-धीरे चलने लगी । उस भंकार के साथ मानो ताल मिलाकर पद्मिनी-महल के सरोवर का जल हिलोरें लेने लगा ।

मानो नींद से बाउल महाराज जगे, बोले—पूर्वी बंगाल की बात जाने दीजिये, जो बीत गया, उसकी बात जाने दीजिये । पद्मिनी की तरह रूप-लावण्यवती हमारी मातृभूमि है । ग्रामीण कवि गायकों के दल के साथ सारे देश में गाता फिरता था । बाद में बाउल के भेष में बाहर निकल भागा । तब से बाउल बनकर ही सारे भारत का भ्रमण कर रहा हूँ ।

बहुत से प्रश्न जगे, पर मैं चुप रहा और बाउल की बात सुनता रहा । वह बोले—कुतुब मीनार के पास जो अलाउद्दीन की मीनार है, उसे देखने के बाद पद्मिनी के इस महल को देखकर आपके मन में क्या विचार आते हैं ? आपने तो दिल्ली

और चित्तौड़ दोनों ही देखे हैं ।

दिल्ली और चित्तौड़, थलाउद्दीन और पद्मिनी, लालसा और लावण्य । सोचते-सोचते मन हिलोरें लेने लगा, ठीक उसी प्रकार जैसे पद्मिनी को देखकर सरोवर का दिल हुआ था—

सरवर तीर पद्मिनी आई । खोपा छोड़ि केश मुख लाई ॥

शशि मुख अंग मलयगिरिरानी । नागिनि भाँपि लीन्ह अरधानी ॥

उनए मेघ परी जग छाँहा । शशि के गरन लीन जनु राहा ॥

छपि गै दिनहि भानु कै दशा । लेइ निशि नखत चाँद परगसा ॥

मुहम्मद जायसी की यह कविता भी इसी अर्थ की है—

सरवर रूप विमोहा, हियइ हिलोर करेई,

पाव छुवइ मकु पावई, यहि मिस लहरइ देई ।

जिस जलराशि में पद्मिनी के खंजन-नयनों का प्रतिबिम्ब झलकता था उसकी ओर एकटक निहारते हुए, उस पहाड़ी की चोटी पर, मेरा मन भी हिलोरें लेने लगा ।

चित्तौड़ आने के पहले मेरे एक इतिहासज्ञ मित्र ने यह शिकायत की थी कि पद्मिनी उपाख्यान में इतिहास का कोई भी अंश नहीं है । पर मैं तो इतिहास की खोज करने नहीं आया था, इसलिए मुझ पर इस शिकायत का कोई असर नहीं हुआ । रजवाड़ा तो वीरतापूर्ण कहानियों का देश है । इन कहानियों में सत्य, सौन्दर्य, इतिहास, उपकथा इस तरह से मिली हुई है कि साधारण व्यक्ति के लिए राजहंस की तरह नीर-क्षीर का विवेक करना सम्भव नहीं । दूध को दूध के रूप में लेकर चखकर जाँचना पड़ेगा न कि लेक्टोमीटर से । अरावली पर्वत की चूड़ाओं में जो नीलाभ माया व्याप्त है, उससे दस्तावेज लिखने की नीली स्याही बनाई नहीं जा सकती । पर इस कारण अरावली की माया केवल माया या स्वप्न नहीं, वह मोहिनी रूप है, जिसमें मधुर रस का अतीन्द्रिय प्रकाश है ।

वाउल महाराज ने ठीक ही गाया था कि रूप सागर के घाट में फिसलाहट बहुत रहती है । गणित और नापने के फीते से रूप की नाप नहीं हो सकती ।

जियाउद्दीन बर्नी लिखित तारीख-ए-फीरोजशाही में केवल इतना ही लिखा है कि चित्तौड़ पर बहुत दिनों तक घेरा पड़ा रहा, और उसमें बहुत सैनिक मारे गये । पद्मिनी की प्राप्ति के लिए यह युद्ध हुआ था, ऐसा उल्लेख कहीं नहीं है । इसकी सफाई में यह कहा जा सकता है कि यह मामला इतना लज्जाजनक था कि इतिहास में इसका उल्लेख न किया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । अवश्य इसी इतिहास में यह लिखा है कि चित्तौड़ पर घेरे के कुछ समय पहले देवगिरि के राजा रामदेव की स्त्री और पुत्र आदि का हरण किया गया था, और वाद में उन्हें लौटा दिया गया ।

सम-सामायिक कवि अमीर खस्रू की रचना में भी चित्तौड़-विजय बहुत संक्षेप में लिखी है, यद्यपि शाहजादा खिज़रखाँ और देवला देवी की प्रेम-कहानी को बड़े विस्तार के साथ काव्य के रूप में लिखा गया है। पर इस कहानी में यह दिखलाया गया है कि देवला देवी स्वयं प्रेम में पड़ीं। इसलिए इस कहानी में और रूप से आकृष्ट होकर चित्तौड़ पर आक्रमण करने में अन्तर है। पद्मिनी की कहानी की पहले-पहल रचना मुस्लिम धर्मगुरु मलिक मुहम्मद जायसी ने की।

ऐसा कहा जा सकता है कि सम्राट् शेरशाह के दरबारी कवि और विख्यात मुसलमान धर्मगुरु निजामुद्दीन औलिया के पुस्तैनी शिष्य मलिक मुहम्मद व्यर्थ ही कोई ऐसी बात न लिखेंगे, जिससे एक मुसलमान सम्राट् की मानहानि होती हो। भारतीय देशज भाषा में उनकी लिखी 'पद्मावत' नामक पुस्तक बहुत महत्त्वपूर्ण प्राचीन रचना है। इनसे प्राचीनतर कवियों में राजस्थानी कवि चन्द बरदाई और मैथिल तथा बँगला के कवि विद्यापति गिने जा सकते हैं। पर उनकी रचनाओं की मूल प्रतिलिपियाँ कहीं प्राप्त नहीं हैं, इस कारण वे बदलती गईं। जायसी ने फ़ारसी हफ़ों में अपनी रचना लिखी, इसलिए उनकी रचना के हिज्जे और उच्चारण संस्कृत के अनुकरण में बदले नहीं। उन दिनों जिस प्रकार के हिज्जे और उच्चारण थे वही हूबहू मिलते हैं; और इसी में हमें पद्मिनी की कहानी पढ़ने को मिलती है।

कवि और धर्मगुरु जायसी ने 'अस्तुतिखंड' में लिखा है कि आदि से अन्त तक गाथा जैसी थी, उसी को उन्होंने चौपाइयों में लिखा है—

सिंहल द्वीप पद्मिनी रानी । रतनसेन चितउर गढ़ आनी ॥

अलउदीन देहली सुलतानू । राघव चेतन कीन्ह बखानू ॥

सुन साही गढ़ छेका आई । हिन्दू तुरकन्ह भई लराई ॥

इसी प्रकार चित्तौड़/की रानी पद्मिनी को लेकर राजस्थानी डिंगल भाषा में 'खोमान रासो' नामक काव्य लिखा गया है। इनके अतिरिक्त कुछ फ़ारसी पुस्तकों में भी इस कहानी का उल्लेख मिलता है। हुसेन गजनवी नाम के एक लेखक ने 'किस्सा पद्मावत' में यह कहानी लिखी है। इसके अलावा 'तुक्कातुल कुतुब' नामक एक गद्य पुस्तक में भी पद्मिनी की कहानी आती है। दो सौ वर्ष के पहले के उर्दू कवि मीर जियाउद्दीन इशरत और गुलामअली इशरत ने इसी कहानी पर उर्दू काव्य लिखे। विरोधी के राज्य को जीतकर उसकी स्त्री-कन्या को हड़प लेना, इतिहास में कोई अनहोनी बात नहीं, पर किसी रानी के रूप की प्रशंसा सुनकर उसे पाने के लिए सर्वस्व बलिदान करने के लिए तैयार हो जाना और एकाधिक बार युद्ध करना यह इतिहास में कम है।

लगातार युद्ध चलता रहा। चित्तौड़गढ़ का पतन तो दूर रहा, राजपूतों की

परेयानी का भी कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ रहा था। अलाउद्दीन निष्फल क्रोध में गाम्भेरी नदी के किनारे बैठकर पानी में गढ़ की अपराजित छाया देखा करता था। कवियों ने इसका बहुत सरस वर्णन किया है।

वह पद्मिनी जिसके—

शुभ्र समुद्र अस नयन दुई, मानिक भरे तरंग ।

आवहि तीर फिरावहि, काल भँवर तेहि संग ॥

× × ×

अधर सुरंग अमीरस भरे ।

विम्ब सुरंग लागि बनफरे ॥

फूल दुपहरी जानउ राता ।

फूल भरहि जो जो रह वाता ॥

× × ×

अमि अधर रस राजा सब, जस आस करैई ।

कहि कह कमल विगासा को, मधुकर रस लेइ ॥

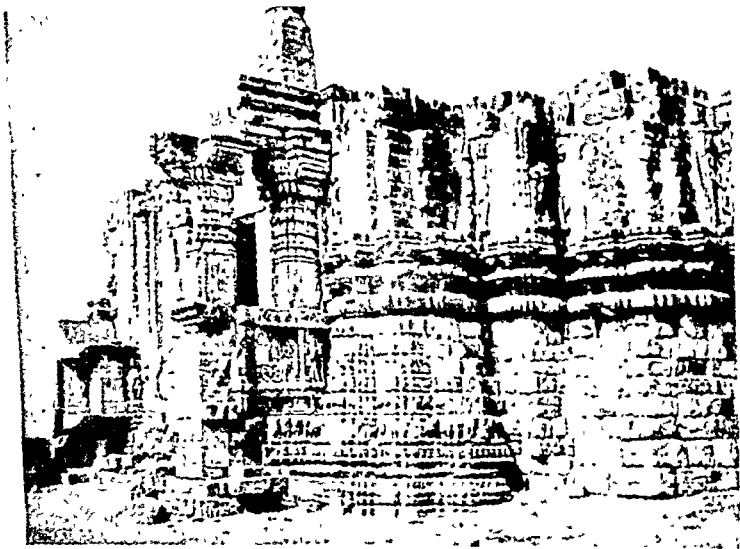
दिन-प्रतिदिन अलाउद्दीन के धैर्य का बांध टूटता जा रहा था। अन्त में उसने धि का प्रस्ताव भेजा कि एक बार दूर से पद्मिनी को देखकर ही वह वापस चला जायगा देश की दशा और भविष्य को देखते हुए पद्मिनी इतनी-सी बात के लिए राजी हो गई।

अलाउद्दीन निरस्त्र होकर चला। वह जानता था कि राजपूतों की बात विश्वास के योग्य होती है। कहते हैं कि वारह दर्पणों के द्वारा प्रतिबिम्बित पद्मिनी का रूप अलाउद्दीन ने देखा—

विहँसि भरोखे आई सरेखी । निरखि साहि दरसन मंहि देखी ॥

होतइ दरस परम भा लोना । धरति सरग भएउ सब सोना ॥

इसके बाद वह बाहर गया। राणा भीमसिंह मेखवान के नाते उन्हें फाटक के बाहर छोड़ने आये। वस, छिपे हुए पठानों ने उनको कैद कर लिया। यह कहा गया कि जब पद्मिनी सौंप दी जायगी, तभी भीमसिंह मुक्त किये जायेंगे। हिन्दू नारी के लिए पति ही सब कुछ है, इसलिए पद्मिनी ने यह सन्देश भेजा कि जब मजबूरी है, तब ऐसा ही किया जायगा। पर रानी रानी की तरह जायगी, बाँदी की तरह नहीं। इसलिए यह तय हुआ कि पद्मिनी सात सौ दासियों को लेकर जायगी। वे पहुँचाकर लौट आयेंगी। अलाउद्दीन खुशी से इस पर राजी हो गया। पद्मिनी इसी ढंग से आई। उन सात सौ पालकियों में प्रत्येक को ढोने के लिए छः कहार थे। यह भी तय हुआ कि पद्मिनी को वादशाह से मिलने के पहले अन्तिम बार राणा भीमसिंह से मिलने दिया जायगा। यह



क्षत-विक्षत सोमनाथ ।



एक प्राचीन मन्दिर ।



पद्मिनी-मठ, चिनाट ।

चिनाट गढ़ ।



तय था कि जो लोग पद्मिनी को छोड़ने आयेंगे, वही राणा भीमसिंह को ले भी जायेंगे।

भीमसिंह से पद्मिनी की भेंट अभी हो ही रही थी कि मेवाड़ के चुने हुए वीर पालकियों से उतर पड़े, और घमासान लड़ाई छिड़ गई। राजपूतों में सारे के सारे खेत रहे, पर भीमसिंह लौट गये। अलाउद्दीन पद्मिनी की कूटनीति के सामने पराजित हुआ।

गढ़ के अन्दर बारह साल के वीर बालक बादल से उसकी चाची ने प्रश्न किया—बताओ तो बेटा ! मैं जब तुम्हारे चाचा से मिलने के लिए जा रही थी, उस समय उन्होंने कैसा युद्ध किया।

बादल ने कहा—वे युद्ध क्षेत्र में ऐसे लग रहे थे मानो धान काटते हुए चल रहे हों। मैं तो सिर्फ इतना ही कर रहा था कि वे तलवार से जिस फसल को काट रहे थे, मैं उसे लादता हुआ उनके पीछे-पीछे चल रहा था। सम्मान के रक्त से सनी गँया पर वे मरे हुए दुश्मन का गलीचा बिछाकर और एक यवन राजकुमार को अपना तकिया बनाकर सो गये हैं।

वीर गोरा की स्त्री ने फिर से प्रश्न किया—बताओ तो बेटा ! तुम्हारे चाचा ने कैसा कार्य किया ?

बादल ने कहा—चाची जी ! मैं कैसे उसका वर्णन करूँ ? बात यह है कि उनसे डरने के लिए या उनकी तारीफ़ करने के लिए भी दुश्मन बाकी नहीं।

हँसकर गोरा की पत्नी ने बादल से विदाई ली, बोली—बेटा ! मैं चली, देर हो जाने पर वे न मालूम क्या सोचेंगे—कहकर वह चिता के लिए रवाना हो गई, और सती की चिता भभककर जल उठी।

मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार अब से ठीक साढ़े छः सौ वर्ष पहले अलाउद्दीन एक नयी सेना लेकर फिर आया। इस बार सेना बहुत बड़ी थी। वह चित्तौड़-विजय की प्रतिज्ञा करके आया था। यह पूछा जा सकता है कि उसके इस जोश के पीछे पद्मिनी की रूपराशि थी, या हार की कड़वी स्मृति।

राजस्थान की यह कहानी एक अमर कहानी है, पर इसके साथ ही एक अलौकिक कहानी यह भी है। राणा एक बड़े परिश्रम के बाद शंया पर लेटे थे। चित्तौड़ का पतन अवश्यम्भावी मालूम हो रहा था। राणा इस कारण चिन्तित थे कि कम से कम एक लड़का तो बच जाय। इतने में देववाणी हुई—मैं भूखी हूँ।

राणा ने चौककर सामने देखा, तो उन्हें चित्तौड़ की अधिष्ठात्री देवी कालिका खम्भों के बीच से दिखाई पड़ी। राणा ने आर्त स्वर में कहा—देवी, आठ हजार वीरों का बलिदान इस युद्ध में हो चुका है, फिर भी तुम्हारी प्यास नहीं बुझी ?

उधर से वाणी आई—मुझे राजस्व चाहिए। चित्तौड़ के राजमुकुटधारी

बारह व्यक्तियों का रक्त मुझे चाहिए, नहीं तो इस वंश के हाथ में राज्य नहीं रहेगा।
 राणा का स्वप्न टूट गया। न तो कही देवी की मूर्ति थी, न कुछ और। पर
 राजरक्त तो चाहिए था, क्योंकि देवी भूखी थी।

जब प्रातःकाल सामन्तों के सामने यह स्वप्न बताया गया, तो उन लोगों ने इस
 स्वप्न की हँसी उड़ाई, पर राणा के मन में यह विश्वास जम गया था कि भले ही यह
 घटना अनहोनी हो, पर भ्रूण नहीं है। यह तय हुआ कि सब सामन्त उस रात को
 राणा के साथ रहेंगे। फिर देवीमूर्ति का आविर्भाव हुआ। फिर देवी ने राजरक्त की
 माँग की। यह सूर्यवंशीय राजा का रक्त चाहती थी। यह तय हुआ कि एक-एक
 व्यक्ति राजा बनता जाय, उसका वाक्यदा अभिषेक हो, और वह युद्ध में जाकर
 प्राण दे दे। राजा के ग्यारह भाई और थे। यह तय हुआ कि सभी भाई युद्धक्षेत्र में
 प्राण दे दें, उसके बाद राणा स्वयं प्राण देंगे—

“निःशेष प्राण जो करे दान

क्षय नहीं उसका क्षय नहीं।”

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

युवराज अपने प्राण देने के लिए तैयार थे, पर राणा ने कहा कि उनका वचना जरूरी
 है। यही हुआ, और युवराज किसी प्रकार शत्रुओं का व्यूह भेदकर चित्तीड़ से चले गये।
 यह सब तो हुआ, पर क्या चित्तीड़ेश्वरी ने अपनी रक्षा की?

हाँ, राजकुमार अजर्यासिंह अरावली के एक दूर कोने में जाकर किसी प्रकार
 आत्मरक्षा करने लगे, पर वहाँ उन पर विपत्ति आई, और एक स्थानीय पहाड़ी सरदार
 ने राजकुमार पर बर्छी चला दी। उनके दो लड़के जो इस समय पन्द्रह और चौदह
 साल के थे, और राजपूती हिसाब से बालिग हो चुके थे, मुँह ताकते रह गये।

इसके भीतर भी एक कहानी है। बहुत दिन पहले अजर्यासिंह का बड़ा भाई
 अर्रिसिंह शिकार के लिए इस इलाके में आया था। एक जंगली सूअर मक्का के खेत
 में छिप गया। शिकारी परेशान थे। इतने में एक वनवाला ने आकर इशारे से यह
 बता दिया कि अमुक स्थान पर सूअर छिपा है। केवल यही नहीं, उसने उस सूअर का
 स्वयं शिकार करके राजकुमार के पास पहुँचा दिया। इसके बाद एक झरने के पास
 यह दल खा-पी रहा था, इतने में एक गुलेल से राजकुमार का घोड़ा घायल हो गया।
 वही वनवाला पक्षियों से अपने खेत की रक्षा कर रही थी, और उसी की गुलेल से
 घोड़ा घायल हुआ था। पर वनवाला तुरन्त ही आई और क्षमा माँगकर चली गई।
 इस प्रकार यह घटना समाप्त हो गई, पर बाद के दिन में कई बार अवसर पड़ा,
 हरवार उस वनवाला की वीरता अर्रिसिंह के सामने आई।

यहाँ तक कि राजकुमार ने वनवाला के पिता को बुलाया। यह ग़रीब राजपूत

आकर बिलकुल राजकुमार की वगल में बैठ गया। इस पर राजकुमार के साथी हँस पड़े। पर राजकुमार ने अपने साथियों को आश्चर्य में डालते हुए उस गरीब राजपूत से कन्यादान माँगा। इससे भी आश्चर्य लोगों को तब हुआ, जब उस व्यक्ति ने राजकुमार की प्रार्थना नामंजूर कर दी।

पर अन्त में शादी हुई, क्योंकि कन्या की माता इस विवाह को चाहती थी। पर राजा दुष्यन्त की तरह राजकुमार अरिसिंह भी अपनी स्त्री को गाँव में ही छोड़ आये। उनका पुत्र गाँव में ही पलने लगा। इसी लड़के हम्मीर ने देवी की प्रतिज्ञा की रक्षा की। जब अजयसिंह के लड़के बिलकुल निराश थे, तब इसी हम्मीर ने उस पहाड़ी सरदार को लड़ाई में मारा। अलाउद्दीन के चित्तौड़-विजय के तेरह वर्ष बाद इसी हम्मीर के द्वारा फिर वप्पा रावल के राजवंश का लाल भंडा फहराया गया। पर यह वाद का इतिहास है। हम फिर अलाउद्दीन की कहानी की ओर लौटते हैं।

अलाउद्दीन करीब-करीब चित्तौड़ को जीत चुका था। अब गढ़ की रक्षा की कोई आशा नहीं थी। पुरुष तो लड़ते हुए जान दे सकते थे। इसलिए मंत्रियों के निमित्त जौहर की तैयारी की गई। पुरनारियों के साथ पद्मिनी विराट् चिता की ओर बढ़ी। वह बोलती जाती थी—

एक जो वाजा भयउ विवाह। अब दूसर है और निवाह ॥

आज सूर्यदिन अथयेउ, आज रैन शशि बूड़।

आज नाथ जिय दीजिये, आज अग्नि हम जूड़ ॥

सात बार चिता की प्रदक्षिणा करके पद्मिनी ने कहा—

यह जगकाह जो अथहि न जाथी। हम तुम नाह दोउ जग साथी ॥

लागी कण्ठ अंग दै होरी। छार भई जरि अंगन मोरी ॥

एक बार हमने इसी प्रकार आग की सप्तपदी प्रदक्षिणा की थी, जब हमारा विवाह हुआ था। आज फिर प्रदक्षिणा करती हैं, क्योंकि अब हम देह न धारण करेंगी। ...विवाह के समय हमारे हृदयों का जो मिलन हुआ था, वह बन्धन कभी न खुले। हमारा मिलन चिरकाल तक अटूट रहेगा। इस संसार में कोई भी चिरकाल नहीं रहता, यही सत्य और नित्य है। मैं इस लोक में तुम्हारे साथ थी, परलोक में भी तुम्हारे साथ रहूँगी। इसके बाद पुरनारियों की भस्ममात्र रह गई।

चित्तौड़ का दुर्ग जल रहा था। आग की लाल शिखाएँ मानो होली के गुलाल से रंगी गई थीं। अलाउद्दीन अपनी जयमाला को लिए हुए पठान-सेनाओं के साथ पद्मिनी के महल की ओर दौड़े। पर कहाँ वह स्वर्गीय कुसुम और कहाँ यह नीच नराधम, वह कुसुम तो स्वर्ग को पहुँच चुका था। प्रेमवाटिका से सिञ्चित वह कुसुम इसको कहाँ मिल सकता था? भुजाओं की शक्ति उसे नहीं जीत सकी।

जोहर-शत की चिताएँ जल रही थी। आग की शिखाएँ क्या केवल पाप और दुःख को जलाकर ही शान्त हो पायेगी ? जलने की व्यथा क्या यूँ ही रह जायगी ? क्या हृदय के गम्भीर स्वर में शान्ति का चिरन्तन प्रदीप नहीं जलेगा ? क्या सृष्टि का मानस-कमल फिर से नहीं खिलेगा ?

उस मन्ध्या समय अस्त होते हुए सूर्य की लालिमा से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो एक और ही चिता जलाई गई हो। विजित होते हुए भी पराजित और व्यर्थता की जजीर से बँधे हुए अलाउद्दीन के देखते-देखते ही सूर्य अस्त हो गया। पर आज, उसी रवि की किरणों से हृदय-मन्दिर में वही रूपकमल फिर प्रस्फुटित हो गया है। हाथ से इसे स्पर्श नहीं कर सकते, हृदय की आँखों से ही देख सकते हैं। रात को अँधेरे में ज्योति का कमल कुहरे के जाल से सारा छिप जाता है। उसकी वेदना में मानो प्रकृति ओस के आँसू बहाती है और भीगुर ऊँचे स्वर में रोते-से प्रतीत होते हैं। पर रूप का पुजारी कवि इसी रूप का ही वर्णन करता है। वाँसुरी बजाकर मानो इसी रूप को जगाता है। अदेही हृदय-मन्दिर के कोने में व्यथा को भूलने के लिए गीत रच रहा है।

अलाउद्दीन जैसे लोग इस संसार में जीतकर ही हारते हैं और प्रेम के पुजारी हारकर ही जीतते हैं। यही ससार की चिरकालीन प्रथा है।

वह पूर्वी बंगाल जिससे ऊपर कि पद्मा नदी बह रही है और जिसकी लहरें किनारों से टकराती रहती हैं—उसी देश से विछुड़े हुए इस कवि के सितार से एकवार और गीत की झुंझार सुनाई रही थी।

रक्षावन्धन

बंगाल से रक्षावन्धन का रिवाज करीब-करीब उठ गया है। फलाने भंडे का दिन, ढेमाके शहीद की सन्ध्या मनाते-मनाते ही हम इतने हाँफ जाते हैं कि रक्षावन्धन की याद ही नहीं पड़ती। ग़नीमत है कि पत्रों में यह अभी तक दिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी लोगों की दूकानों में राखी-पूर्णिमा के दो-एक दिन पहले से राखियाँ विकने लगती हैं।

मारवाड़ियों में अब भी राखी की कद्र है।

पर बंगाल में ही अधिक नहीं, कोई पचास साल पहले ऐसा समय गया है, जब रक्षावन्धन एक राष्ट्रीय त्यौहार हो गया था। अंग्रेज सरकार ने बंगाल को दो हिस्सों में बाँट दिया था, पर बंगालियों ने उसे मानकर एक दूसरे से अलग होना मंजूर नहीं किया। माँ की पुकार पर बंगालियों ने एक दूसरे के हाथ में राखी बाँधकर अपनी एकता घोषित की।

वह एक अलौकिक युग था। भावुकता की बाढ़ आई हुई थी। स्वदेशी यज्ञ के आसन पर बैठकर बंगालियों ने उस समय चुन-चुनकर सभी देशों से स्वतन्त्रता के मंत्रों को एकत्रित कर लिया। जो-जो देश स्वतन्त्र थे, उन देशों की स्वतन्त्रता-प्राप्ति की कहानी सर्वत्र कही जाने लगी। इटली के मैजिनी, गैरेबाल्डी से लेकर राजपूत तथा मराठे वीरों को पूजा के आसन पर बैठाया गया। बंगालियों ने सारे भारतीय इतिहास से वीरों को ढूँढ़ निकाला। तभी से बंगाल में रक्षावन्धन का नया संस्करण चला।

पर राजस्थान में रक्षावन्धन का दूसरा ही अर्थ था।

मनुष्य हमेशा से शिवेलरी (वीरत्व) की पुकार पर आगे बढ़ता रहा है, रक्षावन्धन उसी का एक उदाहरण है। जिस देश में अभी स्त्री-पुरुष में केवल एक सम्बन्ध ही हो सकता था, जिस शास्त्र के अनुसार पुरुष और स्त्री घी और आग की तरह अलग रखने योग्य थे, वहाँ रक्षावन्धन ने एक नये रोमाञ्चकारी सम्बन्ध का सूत्रपात किया। यदि सखा को सखा रूप में स्वीकार करने में समाज बाधक है, तो कम से कम भाई के रूप में स्वीकार कर लिया जाय। विलकुल परोक्ष में रहकर यदि कोई नारी किसी को राखी भेजे, तो उसे बिना किसी प्रकार के संशय के स्वीकार करना वीरधर्म हो गया, और वीर का कर्तव्य हो गया कि वह उस स्त्री की विपत्ति में रक्षा करे, और सम्पत्ति

में सम्मान दे ।

राखी भले ही मामूली सूत की हो, उसमें भले ही कोई उज्ज्वल आभिराज्य न हो, राखीवन्द भाई के निकट उससे मूल्यवान कोई वस्तु नहीं थी । राखी लेकर वहन को एक चोली भेजने का रिवाज था जिसका अर्थ यह था कि तुम्हारे हृदय पर भाई का प्रेम एक जिरहवस्त्र के रूप में रहेगा । मैं तुम्हारा भाई बना, और सब तरह की विपत्तियों से तुम्हारी रक्षा करूँगा ।

यूरोप के मध्ययुग के नाइटों का यह मधुर सम्बन्ध अज्ञात था । बात यह है कि उनकी शिवेलरी में रोमानी इन्द्र-धनुष की रंगीनी थी । उससे शरणागत वहन की राखी का कोई सरोकार न था ।

ऐसी ही एक राखी राजमाता कर्णवती ने दिल्ली के सम्राट् हमायुं के पास भेजी थी ।

उन दिनों चित्तौड़ के दुर्दिन थे । राणा साँगा मर चुके थे, और उनके तृतीय पुत्र रत्नसिंह ने सिंहासन का उत्तराधिकारी होने के पहले ही छिपकर अम्बर की राजकुमारी से प्रेम-विवाह कर लिया था । यह विवाह भी सशरीर करना सम्भव नहीं हुआ था । अपने प्रतिनिधि की हैसियत से रत्नसिंह ने दोनों तरफ धारवाली एक तलवार भेज दी थी, और इसी के साथ गान्धर्व रीति से विवाह हुआ था । किसी को भी इस गुप्त प्रेम और गुप्त विवाह की बात मालूम न थी । सिंहासन पर बैठ जाने के बाद भी रत्नसिंह ने अपनी पत्नी के सम्बन्ध में कोई बात नहीं की और न उसे अपने घर ही लाये । इधर उनके मित्र और साले बूंदी के राजा ने उसी राजकन्या से शादी करनी चाही । अम्बर राजवंश बूंदी के महावीर हरवंश की प्रशंसा में शतमुख होकर राजकन्या देने को उद्यत हो गया । जिसने तलवार भेजी थी, उसका इस समय कहीं पता नहीं था, इसलिए राजकन्या मजबूरी से राखी हो गई और गन्धर्व विवाह की किसी को कानोंकान खबर नहीं हुई । बूंदी के महाराज के साथ शादी हो भी गई ।

पर तलवार इस बात को भूली नहीं । राणा साँगा के सपूत रत्नसिंह ने बाबर को राजस्थान में आने नहीं दिया । शत्रु मेवाड़ की धूल को नहीं पा सका । वही रत्नसिंह अपने साले, बूंदी के राजा, के साथ अहेरिया शिकार के हेतु जंगल में गये, और दोनों में से एक भी जंगल से नहीं लौटा । बात यह है कि तलवार अपनी मर्यादा को भूल नहीं सकी । इसी के बाद चित्तौड़ के दुरे दिन आये । भाई विक्रमजीत ने तो सिंहासन सम्हाल सके, और न सरदारों को वश में रख सके । मौका देखकर गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने हमला बोल दिया । चित्तौड़ ने लड़ाई के बजाय संधि का प्रस्ताव भेजा, और न केवल नजराना बल्कि मालवा देश देने को भी तैयार हो गया । एक मेवाड़ी विभीषण ने बहादुरशाह को मेवाड़ की दुर्दशा की बात बताई थी, इसलिए

वह संधि करने पर राजी नहीं हुआ। वह चित्तौड़ का गढ़ माँग बैठा, और कहला भेजा कि चित्तौड़ पर उसे अधिकार दिया जाय।

सम-सामयिक इतिहास तारीख-ए-बहादुरशाही के अनुसार इसके पहले इतना भयंकर घेरा सम्भव नहीं हुआ था। बहादुरशाह के साथ तोपखाना और पुर्तगाली गोलन्दाज थे (शायद वास्कोडिगामा के कुछ अनुचर हो) और साथ ही उनका सेनापति एशियाई कोचक का रहने वाला रुमी खाँ था। 2014-2015

राजपूतों ने इतिहास से कभी कुछ सीखा नहीं। इसलिए पृथ्वीराज गुरी के ^{तोपखाना} नलगोलों (चन्द बरदाई ने तोप का यह नाम रखा था) के मुकाबले में टिक नहीं पाये। सौ वर्ष बाद अलाउद्दीन ने भी तोपों के बल पर ही चित्तौड़ पर विजय प्राप्त की थी। इसके कोई सवा दो सौ वर्ष बाद बाबर के तोपखाने के सामने राणा सांगा की घुड़सवार सेना ठहर न सकी। इसके आठ साल बाद फिर चित्तौड़ पर गोले दगने लगे। राजपूतों के पास अब भी वही बर्छी और तलवारें थी।

महज वीरता से और खून देने से देश-रक्षा नहीं होती, अब हाइड्रोजन बम के युग में यह बात सत्य है, पर तब भी उतनी ही सत्य थी। विपत्ति देखकर राजमाता कर्णवती ने हुमायूँ के पास राखी भेज दी।

हुमायूँ कवि, सहृदय और दार्शनिक थे। संसार के बुद्धिमान् लोग मुँह पर भले ही न कहें, ऐसे लोगो को पागल समझते हैं। बहुत से लोग हुमायूँ को भी उसी प्रकार निक्ममा समझेंगे। स्वयं उस पर विपत्तियों के पहाड़ टूट रहे थे। आगरे के दरवाजे पर शत्रु धक्के दे रहे थे। बंगाल और बिहार में शेरखाँ ने सिर उठा रखा था। अपने भाई भी वश में नहीं थे। ऐसे समय में एक हिन्दू रानी की ओर से यह राखी आई। अजीब विपत्तियों का संयोग था।

आज हम इतिहास की सुविधाजनक दूरी पर बैठकर सिंगार की राख भाड़ते-भाड़ते यह आलोचना करते हैं कि हुमायूँ ने रानी कर्णवती की राखी की पूरी मर्यादा नहीं रखी, और वे तो केवल ग्वालियर तक गये, और वहाँ दो महीने चुपचाप बैठे रहे। पर उस युग के लोगों की भावना और हुमायूँ की दशा को सामने रखकर ही हम सही निर्णय कर सकते हैं कि उन्होंने ठीक किया या ग़लत। कहीं उनकी नीति ऐसी तो नहीं थी कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे।

मेवाड़ के इतिहास से मालूम होता है कि राजमाता कर्णवती ने हुमायूँ के पास राखी भेजी थी। मुसलमान इतिहासकार इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहते, पर यह तो एक तथ्य है कि ग्वालियर तक हुमायूँ के बढ़ जाने के कारण बहादुरशाह पाँच करोड़ रुपये लेकर घेरा छोड़कर चले जाने को बाध्य हुआ। यह मार्च १५३३ की बात है।

इसी बीच वहादुरशाह और हुमायूँ में चिट्ठी-पत्री हुई। इतिहासकार अब्दुल्ला लिखित गुजरात के अरबी भाषा के इतिहास में, तथा मोरात-सिकन्दरी में ये पत्र मिलते हैं। एक पत्र में वहादुर ने लिखा था (वह स्वयं निरक्षर था, इसलिए उसने मुल्लाओं से पत्र लिखाये थे) — हम लोग ईमान के रक्षक और न्यायदाता हैं। इसलिए पैगम्बर के वचनों के अनुसार—‘यदि तेरे भाई पर अत्याचार हो या वह अत्याचारी भी हो, तो तुझे उसकी मदद करनी चाहिए’ यानी चित्तौड़ पर घेरे के समय इस प्रकार हुमायूँ का वद आना बहुत ग़लत था। अन्त तक वहादुरशाह ने अपने पत्र में एक कविता भी लिख दी थी, जिसका आशय यह था कि अगर तुम्हारी तलवार में दम नहीं है, तो केवल बातों से लड़ाई जीतने की आशा न करो। अगर तलवार में दम नहीं है, तो ख्वामख्वाह यह शंखी न मारो कि हमारे बाप-दादे ऐसे थे, वैसे थे। बौने होकर पैरों में लकड़ियाँ न बाँधो। इस तरह बच्चे ही अपनी लम्बाई बढ़ाने की चेष्टा करते हैं।

फरिश्ते ने यह भी लिखा है कि चित्तौड़ पर हुमायूँ और वहादुरशाह में कविता में पत्र-व्यवहार हुआ था। हुमायूँ ने लिख भेजा था—अरे-अरे, तू चित्तौड़ का दुश्मन, काफिर पर तू कब्जा करने की इच्छा रखता है। तेरे सिर पर एक राजा जम कर बैठा है, फिर भी तू चित्तौड़ चाहता है।

वहादुरशाह ने इसके उत्तर में लिखा था—सच है, हम चित्तौड़ के दुश्मन हैं, और हम अपने पराक्रम से काफिर को पकड़ लेंगे। केवल यही नहीं, जो उसकी रक्षा में आयेगा, उसे भी नीचा दिखलायेंगे।

इस प्रकार काव्य में पत्र-व्यवहार का अन्त होते-होते हुमायूँ चित्तौड़ के पास वहादुरशाह के द्वारा अभी प्राप्त किये मालवा में आ पहुँचे। हुमायूँ भले ही और कुछ सोचें, वहादुरशाह एक हिन्दू राजा को छोड़ने वाला न था, इसलिए बहुत-सा धन, नज़राना और मालवा प्रान्त सन्धि में पा लेने पर भी उसने १६ महीने बाद चित्तौड़ पर धावा बोल दिया।

हुमायूँ ने क्या किया? राधा के सामने यह प्रश्न निरन्तर बना रहता था कि वह अपनी कुल-मर्यादा की रक्षा करें या धनश्याम की रक्षा करें। इसी प्रकार श्रेय और प्रेम का भगड़ा हुमायूँ के मन में भी चलता रहा, पर राजनीति में न तो मन का स्थान है, और न मानवता का, इसलिए हुमायूँ चित्तौड़ की तरफ़ न जाकर मालवा होते हुए वहादुरशाह के राज्य की ओर बढ़ने लगे। वहादुरशाह के बुद्धिमान् मंत्री ने उन्हें यह समझाया कि हुमायूँ चाहे जो कुछ भी करें, वे हिन्दू की तरफ़ से मुसलमान के साथ लड़ेंगे नहीं। यह बात सही प्रमाणित हुई। फिर भी इससे इतना काम तो हो ही गया कि वहादुरशाह गुजरात से नयी फौज या और किसी प्रकार की सहायता न पा सके।



नृत्य की मुद्रा (उदयशंकर) ।

कथक नृत्य मे अनुराधा ।



संगमरमर का हाथी ।



इधर कर्णवती ने क्या किया ? जहाँ राजा निकम्मा निकला, वहाँ राजमाता ने अपने हाथ में सारी जिम्मेदारी ले ली। उन्होंने सब त्रिगड़े हुए सरदारों को समझा-बुझाकर ठीक किया। उन्होंने यह समझाया कि राजा के विरुद्ध शिकायत हो सकती है, पर देश के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं हो सकती। राजा का स्थान सिंहासन में है, पर देश का स्थान हृदय-सिंहासन में है।

उस समय जो राजा थे, उन्हें तथा उनके उत्तराधिकारी उदयसिंह को चित्तौड़ से हटा दिया गया, पर राज्य की रक्षा के लिए एक राजा तो होना चाहिए, इस नाते देवलिया के सामन्त रावत बाघसिंह को राजपद पर नियुक्त किया गया। उनका विधिवत् अभिषेक हुआ, और उनके पीछे चंगी या सोने का सूर्यचक्र रखा गया, जो मेवाड़ का राजचिह्न था, और एक तरह से मृत्यु के लिए प्रेमपगा निमन्त्रण था। क्या सारे संसार में ऐसा कोई उदाहरण है कि केवल मरने के लिए लोग राजा बनें ?

बहादुरशाह की तोपों ने चित्तौड़ की दीवार को कई जगह से तोड़ दिया था। चुपके-चुपके सुरंग बनाकर गढ़ के फाटक के नीचे बाह्य रखी गई, और फाटक उड़ा दिया गया, फिर भी अभी चित्तौड़ की बहादुर सेना तो मौजूद थी।

चित्तौड़ के वीरों के सामने खड़ी होकर राजमाता स्वयं युद्धयात्रा के लिए तैयार थी। उनका पवित्र शरीर जिरहबख्तर से ढका हुआ था, और उनका परलोक धर्म से उज्ज्वल था। राजपूत गाथाओं के अनुसार इस युद्ध में ३२ हजार वीर मारे गये, और १३ हजार स्त्रियों ने जीहर्-व्रत के द्वारा चिता में प्रवेश कर अपने प्राण दे दिये।

हुमायूँ ठोकरें खाते-खाते चलते रहे, और अंत में एक ठोकर में ही इस दुनिया से चल बसे। अन्त में चित्तौड़-पतन के एक मास के अन्दर ही बहादुरशाह से उन्हें लड़ना पड़ा। बहादुरशाह हारकर भाग गया। उसी साल हुमायूँ ने राजा विक्रमजित को चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठाया। अन्त तक राखी की मर्यादा बनी रही।

दिल्ली और चित्तौड़ में बराबर दुश्मनी बनी रहने पर भी राखी की मर्यादा कभी क्षुण्ण नहीं हुई। उन दिनों राजनीति में रोमास और राजाओं में राजसीपन चलता था। इस युग में तो ब्रित्स क्रीग याने एकाएक हमला करके शत्रु को समाप्त कर देने की नीति चलती है। इसमें शिबेलरी का स्थान नहीं। आज हमारे लिए यह समझना कठिन है कि अकबर ने इसके ३२ वर्ष बाद चित्तौड़ को नष्ट (यह तृतीय और अन्तिम बार था) कर दिया, फिर भी वह मेवाड़ के साथ अपने राखीबन्ध सम्बन्ध को मर्यादा देते रहे।

जहाँगीर और शाहजहाँ की मातायें राजपूत ललनायें थीं, इसलिए वे राखी का सम्मान करेंगी, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। यहाँ तक कि औरंगज़ेब ने भी मेवाड़

की राजमाता को प्रिय और मुशीला वहन सम्बोधित करके दो पत्र लिखे थे। पर इन पत्रों में लेखन-कौशल इतना अधिक था कि राखी बहुत कुछ नीचे दब गई थी।

मे चित्तौड़गढ़ के पहले फाटक को पीछे रखकर आगे बढ़ आया। सामने से सारे रजवाड़ों ने हाथ उठाकर मुझे पुकारा। क्रान्तिकारी आन्दोलन के युग में बंगाल और राजस्थान में जो रक्षाबन्धन हुआ था, उसे न तो बंगाल भूल सकता है और न राजस्थान।

मन ही मन यह इच्छा थी कि महाराणा प्रताप के वंशधरों के साथ परिचय प्राप्त करूँ। दरवारी रूप से नहीं, वह तो होता ही, पर घनिष्ठ रूप से। कर्नल टाड जिस प्रकार मेवाड़ के दरवार में पहली बार गये थे, वह तो ऐतिहासिक बात हो गई, मेरा मतलब तो कौतूहल-निवृत्ति तथा दिल खोलकर बात करने तक था।

चित्तौड़ में वह सुविधा एकाएक मिल गई। महाराणा उस समय उदयपुर छोड़कर शिकार के लिए चित्तौड़ इलाके में आये हुए थे, और अपने राजमहल में ठहरे हुए थे। मेने भेंट करने की इच्छा प्रकट की, तो मुझे सन्ध्या का समय दिया गया। यह मेवाड़ के स्वतन्त्र अस्तित्व की सन्ध्या थी, पर इसके साथ भारत के सम्मिलित स्वतन्त्र जीवन का उपाकाल मिलकर एक हो गया था।

पर चित्तौड़ के आकाश में प्रतिदिन सन्ध्या समय उसकी वीरांगनाओं के जौहर-वृत की जो आभा आकाश में फैलती है, उसकी आड़ में यह राजा से मिलन की सन्ध्या न जाने कहाँ विलीन हो गई, जान न पाया। बराबर मेने उस सन्ध्या को देखा है, और मन के अन्दर स्मृति की सी-सी दीपमालाएँ जला रखी हैं, जिनके प्रकाश में आज के अन्धकार को भुला दिया है। आज भी ऐसा ही हुआ।

महाराज के साथ भेंट करने का जो निर्दिष्ट समय था, वह निकल गया, और मन खिन्न हुआ। माफी माँगकर पत्र लिखने ही वाला था कि इतने में दरवाजे पर किसी ने ठकठक किया। दरवाजे के सामने महाराणा के सेनापति जनरल मनोहरसिंह खड़े थे। वेदला के चौहान राव थे। उनके पूर्वजों ने हल्दीघाटी में शोणित-दान दिया था। वे मेवाड़ के पुस्तैनों विश्वासपात्र सामन्त थे। उनकी कुलीनता जागीर की लम्बाई-चौड़ाई पर नहीं, बल्कि उनकी तलवार के जौहर पर निर्भर थी। उन्होंने राजपूती ढंग से अभिवादन करते हुए मुस्कराकर कहा कि महाराणा इस बात को भूले नहीं कि गढ़ देखते-देखते हम लोग इतने विभोर हो जायेंगे कि सुध-बुध खो बैठेंगे और मिलने के समय का पालन न कर सकेंगे। इसलिए उन्होंने कहा—अब आप चाहे, तो महाराणा के साथ भेंट करने चल सकते हैं।

मेने पहले ही महाराणा की बुद्धिमत्ता तथा उनकी सुविवेचना के सम्बन्ध में बहुत सी बातें सुन रखी थी। हाथों-हाथ इसका प्रमाण मिल गया, इससे मुझे खुशी

ही हुई। अब तक यही सुना था कि सिसोदिया कुल के लोग युद्ध में वीर होते हैं, पर महाराणा श्री भूपालसिंह को देखकर ही मे यह समझ गया कि शान्तिकाल में वीरता किसे कहते हैं, और हँसते हुए कैसे जिया जाता है। यौवन के प्रारम्भ में ही उनकी आँखों में पक्षाघात का रोग दिखाई पड़ा, जिससे वे एक हृद तक अपाहिज हो गये। फिर भी उनकी आँखों के सामने उपभोग के सारे उपकरण आते-जाते रहते थे, और वे निर्लिप्त होकर उन्हें देखते रहते थे। उन्हीं के ज़माने में कई राजमुकुट इन उपकरणों की बाढ़ में बह गये थे, पर वे अचल-अटल रहे।

जैसा कि किसी कवि ने कहा है—पूर्वी हवा चल रही है, कोई बाधा नहीं है, यौवन को उमड़ाकर तरंगें बहती हैं। सुख से सुख मिलकर बहुत तेज़ धार में एक दूसरे से टकराते हैं।

साधारण से साधारण व्यक्ति भी यदि इस तरह आँखों के सामने निरन्तर ऐश्वर्य के दृश्य देखता, साथ ही उन्हें उपभोग न कर पाता, तो या तो वह वैराग्य ले लेता, या समाज-विरोधी हो जाता। जब युद्ध चलता रहता है, युद्ध का वाजा बजता है, तब वीरता कोई बड़ी बात नहीं होती; क्योंकि उसमें एक मादक आकर्षण रहता है, पर प्रतिदिन के इस नरक युद्ध में न तो कोई मन लुभाने वाली बात होती है, और न तालियाँ बजती हैं। श्री भूपालसिंह पचास वर्ष से वही नीरव निष्काम वीरता दिखाते आये थे। उनका मस्तिष्क शान्त था, हृदय में कोई द्वन्द्व नहीं था, और बुद्धि उसी प्रकार प्रखर बनी हुई थी। देशी राजाओं के लिए अब युद्ध करने का कोई मौका नहीं था, फिर भी मेवाड़ के राजाओं में युद्ध करने का मनोभाव बाकी था। १६११ में दिल्ली दरबार में सब राजाओं को बुलावा आया कि वे आकर सिर भुकायें। यही इस युग का राजसूय यज्ञ था। सब आये, पर महाराणा फतेहसिंह नहीं आये।

इस पर बड़ा कोहगम मच गया। उन दिनों ब्रिटिश सिंहा का गर्जन बड़े जोरो से दसों दिशाओं में गूँज रहा था। भारत में तो उसका बोलवाला था ही। उसकी दम भी हिल जाती, तो राजाओं के सिर से मुकुट गिर पड़ते थे। फिर भी उदयपुर के महाराणा ने आना अस्वीकार किया। लोग समझे कि बस अब राणा प्रतापसिंह का राजवंश लुप्त हो गया।

रेजिडेंट साहब ने बहुत समझाया। तब फतेहसिंह राजी हुए, और स्पेशल ट्रेन में, जो उनके लिए तैयार थी, सवार हो गये। जब गाड़ी चित्तौड़ के आस आई, तो उसमें एक राजपूत चारण हड़बड़ाकर चढ़ आया। सब लोग चिल्ला पड़े, पर इस रणसज्जा से सज्जित बूढ़े चारण को कौन रोकता? वह बूढ़ा एक कविता सुनाने लगा, जिसका आशय यह था कि हे महाराणा, तुम्हारे पुरखों ने कभी दिल्ली के सामने सिर नहीं झुकाया, और आज तुम उसी ऊँचे सिर को नीचा करने के लिए चल पड़े हो।

तुम इस बात को भूल रहे हो कि जब तुम्हारे पूर्वज अमरसिंह ने जहाँगीर के साथ संधि की थी, तब भी वह दिल्ली नहीं गये, उनके युवराज गये थे । इसीलिए मेवाड़ के युवराज का आसन सोलह सामन्तों के नीचे है । महाराज ! प्राज्ञ तुम इन बातों को भूल रहे हो ।

गाड़ी चित्तौड़ की तरफ बढ़ रही थी । यह वही चित्तौड़ था, जिसे पुरखों ने छोड़ दिया था, पर उन्होंने स्वतन्त्रता नहीं छोड़ी थी । गाड़ी उदयपुर लौट गई, महाराणा दिल्ली नहीं जायेंगे ।

बड़े लाट लांडे हाडिंग भी ज़िद्दी थे । सार्वभौम सम्राट् के दरबार में देश में सबसे सम्मानित मेवाड़ के महाराणा नहीं आयेंगे, यह कैसे हो सकता है ? इतिहास क्या कहेगा ?

अन्त तक यह तय हुआ कि महाराणा आयेंगे, पर वे न तो दरबार में ही आयेंगे, और न दिल्ली में ही आयेंगे । वे दिल्ली के बाहर एक प्लेटफार्म पर भारत सम्राट् पंचम जॉर्ज से मिलेंगे और वही से उल्टे पांव लौटेंगे ।

वही मेवाड़ बिना किसी द्विविधा के आगे बढ़कर बृहत्तर राजस्थान यूनियन में शामिल होकर भारत के साथ एक होने और आत्मविलोप करने के लिए तैयार हो गया । भारत में इस प्रकार अपने को लुप्त कर देना ही मेवाड़ के लिए नये युग की नयी स्वतन्त्रता थी । जब यह हो गया, तो छोटे रजवाड़ों को यूनियन बनाकर पार्ट वी० राज्य बनाने में कोई बाधा नहीं रही । जब यह बात हो गई, तो फिर अन्य रियासतों के लिए भी न तो कोई राजनीतिक बाधा रही, और न मानसिक ही ।

ऐसे वीर पुरुष से मिलने की इच्छा स्वाभाविक थी । उनसे मिलने के लिए कुछ ही मिनट वगल के कमरे में प्रतीक्षा करनी पड़ी । इसके लिए उन्होंने तथा उनके सरदारों ने जिस आज़ीजी से माफ़ी माँगी, उससे यह प्रमाणित हो गया कि जो स्वयं वीर हैं, उनके लिए सिर झुकाना आसान है, और जो कायर तथा गुस्ताख हैं, उन्हीं के लिए यह ज़रूरी है कि वे हमेशा सिर ऊँचा किये रहे ।

श्रीमती जी और मेरे साथ बड़ी देर तक महाराणा की बातचीत होती रही । यहाँ उतनी ही बात लिखूँगा, जितनी प्रासंगिक है । उन्होंने इस बात को स्वयं ही कहा कि कर्नल टाड के अलावा बंगाल के साहित्यकारों ने ही राजस्थान को ऊँचा उठाया है । राजपूतों ने बंगाली साहित्यकारों की दृष्टि से ही अपने को फिर खोजा है । इसीलिए रजवाड़े बंगला साहित्य के कृतज्ञ हैं ।

उन्होंने और भी कहा कि राजस्थान के इतिहास को सामने रखकर पहले बंगाल ने और उसके बाद सारे भारत ने स्वतन्त्रता के लिए जिस प्रकार बलिदान किया है, उसको देखते हुए यह कहना उचित होगा कि बंगाल और राजस्थान में रक्षाबन्धन





पुष्पित-कवरी. दक्षिणी नृत्य ।

राजस्थानी लोक-नृत्य ।



हुआ है । इस रक्षाबन्धन के पीछे किसी प्रकार की आत्मरक्षा का प्रयास अथवा असहायता की पुकार नहीं थी । यह बन्धन उच्चतर सतह पर था । या यों कहना चाहिए कि एक ऊल-जलूल कहानी में जीवन संचार कर मंत्र पढ़ा गया । उस मंत्र से केवल बंगाल ही नहीं, सारे भारत का नवनिर्माण हुआ, और इतिहास के क्षेत्र में हम भारतवासी निहत्थे होकर भी एक नये ढंग की लड़ाई में आगे बढ़े ।

और भारत की जय हुई ।

प्रेमयोगिनी मीरा

प्रसि श्रीर वांसुरी, शक्ति श्रीर शान्ति इन दोनों का एक ही साथ समावेश मुझे चित्तौड़गढ़ में मिला । मेवाड़ की प्राचीन राजधानी पवित्र चित्तौड़गढ़ है । केवल रजवाड़ा ही नहीं, सारे भारत में ऐसी विपरीत लीलाओं का स्थान दूसरा कोई नहीं मिल सकता ।

गुजरात के भीमरूप युद्ध में विजयी होकर राणा कुम्भा ने जो अतुलनीय जयस्तम्भ बनवाया था, उसकी छाया प्रतिदिन सन्ध्या-समय मीराबाई द्वारा प्रतिष्ठित गोपाल मन्दिर पर पड़ती है । दूसरी तरफ़ देखिये, तो राणा कुम्भा द्वारा प्रतिष्ठित शिव मन्दिर के वगल ही में एक ही आंगन के अन्दर मीरा द्वारा प्रतिष्ठित छोटा-सा पर अधिक सुन्दर मीरा का वही मन्दिर है । एक विजयी महाराणा के दम्भ की सृष्टि है, और दूसरा विधवा राजकुलवधू के प्रेम से सँवारा हुआ । पर वे दोनों स्थान ही मन में व्यथा उत्पन्न करते हैं । दोनों ही स्थानों में यही भावना उत्पन्न होती है कि मेरा मन-मन्दिर सूना है ।

मन्दिर से मूर्ति गायब है । मीरा की अश्रुधारा से नहलाई हुई मूर्ति इस समय उदयपुर के जगदीश मन्दिर के किनारे एक छोटे-से मन्दिर में रखी हुई है । पर इससे क्या ?

मीरा ने सारे भारत के मनुष्यों का हृदय-मन्दिर भर दिया है । गीतों और सुरों से गिरिघर गोपाल घट-घटवासी हो चुके हैं । प्रेम के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की व्याकुल लालसा मध्ययुग के मनुष्य के मन में अंगड़ाई लेकर जाग उठी थी, मीरा ने उसी को आनन्द और वेदना, चेतना और स्वप्न से मूर्त्त कर दिया था । उनकी उस साधना के फलस्वरूप राजस्थानी, ब्रजभाषा, गुजराती और हिन्दी को उस समय प्रबल गति प्राप्त हुई । हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनवाने में मीरा के भजनों का दान कितना बड़ा है, यह कूतना सम्भव नहीं । धर्म और साहित्य का यह मिलन बंगाल में भी शून्य पुराण, मनसा मंगल और वैभव-पदावली में मिलता है ।

उस युग में उत्तर भारत में राजाओं की निरन्तर चलने वाली मारकाट से लोग जब बुरी तरह ऊब रहे थे, तब आशा और आनन्द का अशेष भण्डार लेकर समुद्र-मन्यन से लक्ष्मी की तरह प्रगट हो गई मीरा । पर वह अकेली नहीं आई थीं । उस भयंकर सकटकाल में पूर्व दिशा बंगाल में श्री चैतन्य और पश्चिम दिशा पंजाब में

गुरु नानक प्रेम-धर्म की वाणी लेकर आये । शायद इनके बिना साधारण मनुष्य टिक नहीं पाता । गुरु नानक ने पंजाब में विशुद्ध एकेश्वरवाद के गीत गाये—

काहे रे बन खोजन जाई ?

सर्वनिवासी सदा अलेपा तोही संग समाई ॥

बाहर भीतर एक जानौ यह गुरु ज्ञान बताई ।

कह नानक बिन आपहि चीन्हे मिटे न भ्रम की काई ॥

हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान करने के लिए उन्होंने नया सिक्ख समाज बना डाला ।

निरक्षर जुलाहा कबीर ने सृष्टि में एक अपरूप लीला की खोज कर कहा—

जल में वसै कुमुदिनी, चन्दा वसै अकास ।

जैसी जाकी भावना, सो वाही के पास ॥

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ जो कहूँ होय विदेश ।

तन में, मन में, नैन में, ताको कहा सन्देश ॥

दक्षिण में रामानुज ने ज्ञान और भक्ति का एक अपूर्व समन्वय किया । तुलसीदास ने एक ऐसी रामायण की रचना की जिससे हिन्दीभाषियों को प्रतिदिन प्रेरणा और प्रतिरात्रि शान्ति मिलने लगी । उन्हीं दिनों मुसलमान सूफी ईश्वर के रहस्यमय रूप की आराधना कर रहे थे, और चिन्ती प्रेम रूप विश्वपति की कल्पना कर रहे थे । उन्ही दिनों पूर्व में श्री चैतन्य नाच-नाचकर प्रेम और भक्ति की वाढ़ ला रहे थे, यह पहले ही बताया जा चुका है, और पश्चिम में मीरा मरु को हरा-भरा कर रही थीं—

सखी री मैं तो गिरिघर के रंग राती ।

पचरंग मेरा चोला रंग दे मैं भुरमुट खेलन जाती ॥

पर श्री चैतन्य की आवाज पर जैसे सारा बगाल दौड़ आया, उस तरह मीरा की आवाज पर राजस्थान नहीं दौड़ा । इसलिए हम यह देखते हैं कि मीरा के युग के राजस्थान के इतिहास में मीरा का कोई स्थान नहीं था । पर नाभादास रचित भक्तमाल (रचनाकाल १५८५-१६२३ ई०) और उनके शिष्य प्रियादास की टीका में मीरा का स्थान अच्छी तरह स्पष्ट हो चुका था । मेरे निकट मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठकर मीरा का यह गुणगुनाना—‘मीरा व्याकुल विरहिनी, सुध-बुध बिसरानी हो’ सत्य है, इसलिए मैं इन पंक्तियों में नहीं पड़ना चाहता कि मीरा राणा कुम्भा की स्त्री थी या नहीं । अकबर उन्हें भेष बदलकर देख गये थे या नहीं, तुलसीदास के साथ उनका पत्र-व्यवहार हुआ था या नहीं । इतिहास के पुराने पन्ने उलटना मेरा उद्देश्य नहीं । मेरे निकट तो मीरा हैं और हैं उनके अमृत बरसाने वाले भजन।

शायद सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, बहुत सम्भव है १५०४ ई० में, एक परम वैष्णव राठीर वंश में मीरा का जन्म हुआ था। कहा जाता है कि बचपन में मीरा किसी शादी में गई, तो वह पूछ बैठी—यह तो उस लड़की का पति है, पर मेरा पति कौन है ?

पिंड छुड़ाने के लिए माँ ने गृहदेवता की मूर्ति की ओर दिखाकर कहा—‘यह तेरे पति हैं।’

दूसरे, एक दिन की रात है कि एक संन्यासी नारायण की शिलामूर्ति लेकर मीरा के घर में अतिथि हुए। मीरा को वह मूर्ति बहुत पसन्द आई और उन्होंने ज़िद पकड़ी कि यह मूर्ति उन्हें चाहिए। संन्यासी ने जब देखा कि गड़बड़ है तो वे भाग खड़े हुए। मीरा ने उपवास शुरू कर दिया। उधर संन्यासी महोदय को स्वप्न हुआ कि उल्टे पाँव जाकर मूर्ति मीरा के हवाले करे, क्योंकि वह असली भक्त है।

उधर मीरा के रूप की ख्याति फैलते-फैलते मेवाड़ के राणा के कानों तक पहुँची। मेवाड़ के सबसे पराक्रमी राणा ‘हिन्दूपत’ संग्रामसिंह के छोटे लड़के भोज के साथ मीरा की शादी हो गई। मीरा समुराल आई और साथ ही साथ वह मूर्ति आई—‘मीरा के प्रभु जनम जनम के साथी’।

चित्तौड़ के राणा परम शैव थे। वे एकलिंग शिव के प्रतिनिधि के रूप में मेवाड़ पर शासन करते थे। समुराल में प्रवेश करते समय गृहदेवता को प्रणाम करना आवश्यक था, इसलिए शिव मन्दिर में ले जाया गया। वैष्णवों का कहना है कि मीरा ने शिवमूर्ति को प्रणाम करने से इन्कार किया था, पर जिन्होंने यह गाया है—‘तेरे भुवन वृन्दावन में साँवलिया के सुर वाजे ?’—उनके लिए शिव की मूर्ति के अन्दर गिरिधर गोपाल को देखना असम्भव बात नहीं समझी जा सकती।

और साधक के लिए यह परीक्षा न तो नयी थी और न एकमात्र थी। मीरा के गुरु रविदास के शिष्य कवीर भी थे। कवीर कह गये हैं कि साधक की साधना सती की साधना की तरह है। यह बात मीरा के जीवन में बार-बार स्पष्ट होकर सामने आई।

पर मीरा को उनके प्रभु ने अधिक दिनों गृहस्थी के जंजाल में नहीं रखा। शादी के दस वर्ष के अन्दर ही पति की मृत्यु हो गई। पार्थिव दृष्टि से जो उनके स्वामी थे, वे तो चल बसे, पर प्राणों की दृष्टि से जो चिरकाल के स्वामी थे, वह प्रभु गिरिधर नागर रह ही गये। उन्हें कौन ले सकता था ?

आवन आवन कहि गयो हरि, आवन ही की बात।

हरि तो बार-बार आने की बात कह गये, इसलिए मीरा विधवा कब हुई ?

उन दिनों मेवाड़ का आकाश अन्धकाराच्छन्न था। न तो शौर्य-वीर्य था और

न मानसिक ऐश्वर्य ही । राणा संग्रामसिंह की पराजय और मृत्यु के बाद सीसोदियो ने बाहर की सब बड़ी चीजों से दृष्टि हटाकर गृहमुखी दृष्टि अपनायी थी । इसलिए देवर राणा विक्रमजीत को यह बात खटकी कि मीरा भजन-पूजन और साधु-सन्तो में दिन काटती है । वह पग-पग पर रोड़ा अटकाने लगा, पर मीरा जिनकी आश्रित थीं, जिनके 'मिलते बिछुड़न जावे,' उनके चरणों की आश्रिता को कौन दुःख दे सकता था ?

ननद उदयबाई ने आकर समझाया कि भाभी तुम्हारे रंग-ढंग से राजकुल में कलंक लग रहा है, तुम यह सब छोड़ दो । पर मीरा के विचार तो इस प्रकार थे कि 'तुम बिन सब जग खारा', इसलिए उनका उत्तर यह था, 'हम से रहे चित चोरी ।' ननद ने बहुत कुछ समझाया, पर मीरा का उत्तर था, 'ये संसार सकल जग भूठा, भूठा कुल का नाता ।' उनके निकट वे ही केवल 'जनम मरण के साथी' थे, जिनके सम्बन्ध में उनका कहना था कि 'नहिं बिसरूँ दिन राती' । उदयबाई ने फिर भी बहुत कुछ समझाया, भय भी दिखलाया, पर मीरा बोली—

जब से मोहि नन्द-नन्दन दृष्टि परो बाई ।

तब से परलोक लोक कछु न सुहाई ॥

कहते हैं कि इसके बाद राणा ने हरिचरणामृत कहकर मीरा को विष का पात्र भेजा था, पर मीरा के स्पर्श से वह अमृत बन गया । कुछ ही, यों तो वह नीलकण्ठ हो ही चुकी थीं, पर वह नीलापन विरह-वेदना के रंग में रंगा हुआ था । न तो प्रिय के बिना उन्हें होली ही रुचती थी और न घर का आँगन ही अच्छा लगता था । शून्य शैया उन्हें काटने दीड़ती थी । यह जनश्रुति है कि घर के लोगों से परेशान होकर उन्होंने तुलसीदास को एक पत्र लिखा था कि अब मैं क्या करूँ ? इसके उत्तर में गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा—

जाके प्रिय न राम वैदेही ।

तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥

इतिहास की दृष्टि से देखा जाय, तो तुलसी मीरा के बहुत बाद पैदा हुए, पर इतिहास भले ही गलत हो, भक्तों के लिए तत्त्व ही असली बात है । किसी ने अपने गुरु का महात्म्य बढ़ाने के लिए तुलसीदास के इस भजन पर एक कहानी गढ़ दी हो, तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं । सारांश यह है कि मीरा मेवाड़ छोड़कर चली गई । उन्होंने जाकर पितृगृह में आश्रय लिया, पर उनके चचेरे भाई रायमल जो उन्हीं की तरह भक्त थे, चित्तौड़गढ़ पर अकबर के आक्रमण के समय बहादुरी से लड़ते हुए मुगलों के हाथों मारे गये थे । अब तो बस यही सत्य था—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई ।

तात, मात, भ्रात, बन्धु आपन नहिं कोई ॥

और भी दुःख मिले, सोना और भी निखरा, प्राण के अन्दर आग और भी सुलगी ।

मीरा कुं प्रभु सांची दासी बनाओ ।

भूठे घंघा सुं मेरा फदा छुड़ाओ ॥

वह और भी गा उठी—

मन्दिरिया म्हां दीवड़ा विना औंधियारू ।

उन्होने फिर गाया—

हे री मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाणे कोय ।

फिर—

प्यारे दरसन दीज्यो आय ।

तुम विन रह्यो न जाय ॥

जल विन कमल, चन्द विन रजनी ।

ऐसे तुम देखण विन सजनी ॥

आकुल व्याकुल फिलैं रंण दिन-विरह कलेजी खाय ।

मीरा वृन्दावन की ओर चली । रास्ते में राजस्थान की वानस नदी के किनारे एक आश्रम में उन्हें शान्ति मिली । उन्होंने गाया—‘सुनी मैं हरि आवन की बात ।’ उनके लिए ‘धरती रूप नवा नवा धर्या ।’ इसके बाद बादल मँडरा आये, पर यह विरह के काले बादल नहीं थे । मिलन तो हो चुका था, इसलिए उन्होंने प्रार्थना की—

बहुत दिन मैं प्रीतम पायो विछुड़न को मोहि डर रे ।

उन्होने और भी गाया—

सांवरिया के दर्शन पाऊं पहर कुसुम्बी सारी ।

फिर भी भय था —

मीरा के प्रभु गहर गम्भीरा, हृदय रह्यो जी धीरा ।

आधी रातें प्रभु दर्शन दैहें, प्रेम-नदी के तीरा ॥

सब सन्देह दूर करने के लिए मीरा, अगम देश में जाने के लिए प्रस्तुत हो गई । इस अभिसारिका की ओढ़नी तो लज्जा होगी, और वस्त्र होगा धैर्य । राजस्थान में यह रिवाज है कि दूल्हा घोड़े पर आता है, चाहे राजा का घर हो और चाहे रक का । वह लाल या केसरिया रंग के कपड़े पहनता है, माथे पर मुकुट होता है और उस पर पैच और कलगी होती है ।

दुलहिन को उसकी सखियाँ सजाती हैं । उसके शरीर में हल्दी मली जाती है, और हाथों में मेहदी रचाई जाती है । माथे पर विन्दिया और गले में हार होता

है। पैरों में धूँधरू बजते हैं, और चूनरी जिसका नाम कुसुम्बी होता है, रंग-विरंगी होती है। मारवाड़ में यह कपड़ा बहुत सावधानी से कुसुम्बी फूल के रंग से रंगा जाता है। दुलहिन को लहंगा, कुसुम्बी और चोली पहनाई जाती है।

इसके बाद फूलों से कंगन बनाया जाता है। चूड़ा नाम से एक चूड़ी होती है, जो सुहाग का चिह्न समझी जाती है। माथे पर मोती और कुन्द फूल की माला पहनाई जाती है। आँखों में काजल या सुर्मा लगाया जाता है। माथे या छोड़ी पर एक-सा काला तिल बना दिया जाता है।

पाँच सौ साल पहले अंगराग की जो प्रथा थी, वह प्रायः उसी प्रकार चली आ रही है। इस समय आधुनिक राजपूतनी फ्रेंच या अमेरिकन मेकअप इस्तेमाल कर सकती हैं, पर राजपूतों का प्राचीन अंगराग जितना रोमाञ्चकारी है, वह आज के प्रसाधन में कहाँ सम्भव है ?

पहले के प्रसाधन और सोलह किस्म के शृंगारों में राजपूत-ललना को यह स्वतन्त्रता थी कि जब उसकी भावना जैसी हो, उसी के अनुरूप शृंगार करे।

मैं कुछ बहक गया, पर मीरा ने प्रियतम के साथ मिलन के लिए अपने को इसी तरह सजाया। उसमें उन्होंने अपना सारा प्रेम और आन्तरिकता उँडेल दी। मीरा इस प्रकार हरि रंगराती हो गई—

भुरमुट में मोहे पिया मिलेंगे खोल मिलूं तन गात।

सुरति निरति का दीयला संजोले मनसा की करले वाती।

प्रेम हाटि का तेल मँगाले, जला करे दिन-राती ॥

वृन्दावन के जीव गोस्वामी ने मीरा को दर्शन देना स्वीकार नहीं किया, कहला भेजा कि मैं किसी स्त्री को दर्शन नहीं देता। इसके उत्तर में मीरा ने कहला भेजा कि गिरधारीलाल के अलावा और भी कोई पुरुष है, यह तो मुझे आज ही मालूम हुआ। इस पर गोस्वामी जी ने अपनी गलती मानी, और स्वयं मीरा को दर्शन देने आये।

जीवन के अन्त समय मीरा वृन्दावन छोड़ द्वारिका चली आई। उधर जब से मीरा मेवाड़ से आई थी, तब से वहाँ भगड़े, टंटे और गुप्त हत्याएँ हुआ करती थी। बहुत दिनों तक ऐसा होते रहने के बाद मेवाड़ वाले समझ गये कि मीरा के साथ-साथ राजलक्ष्मी भी चली गई, इसलिए कुछ ब्राह्मण उन्हें लौटाने के लिए गये, पर मिल के विछुड़ना कैसा ?

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर मिलि विछुड़न नहिं कीजो हो।

कहते हैं कि इसी प्रकार गाते-गाते एक दिन वह रणछोड़ जी की मूर्ति में समा गई।

मीरा तो गई, पर मीरा की प्रेमगाथा मारवाड़ की मरुभूमि से लेकर शत नदी-नद

निज्जिनन बंगाल तक फेंग गई। एक तर्फ मीराबाई थी—

तेरा कोई नहीं रोकनहार, भगत मीरा बली।

लाज-धरम कुल की भरजादा सिर से दूर करी ॥

दमरी और चडीदास ने गाया—

कलकरे डालि मायाय करिया अनिल भेजाइ धरे।

अर्थात्—कलक की टोकरी सिर पर रखकर लौट आया।

मीरा ने गाया—

आऊँ आऊँ कह गया साँवरा कर गया कौल अनेक।

निश-दिन गिनते गिनते घिस गई मेरी उँगली की रेख ॥

चडीदास ने गाया—

सखि रे मयूरा मंडले पिया।

आसि आसि बोलि पुनः न आसिल कुलिश पापाण हिया ॥

आसिवार आसे लिखिनु दिवसे खोवा इते नखेरछन्द।

उठिते वोसिते, पथ निरखिते दु आँखी हवल अंध ॥

ज्ञानदास ने गाया—

माधव कैसन वचन तोहार।

आजि कालि करि दिवस गँवाइते जीवन भेल अति भार ॥

X X X

पंथ निहारिते नयन अंधावला दिवस लिखिते नख गेल।

गोविन्ददास ने गाया—

पराणपिया सखि हमार पिया,

अवतुं न आवल कुलिश हिया।

नरवर खोसरालु दिवस लिखि लिखि,

नयन अंधावल पिय पथ देखि ॥

पश्चिम भारत की साहित्य-धारा का अनुसरण करता हुआ मैं हिन्दी की आधुनिक कवयित्री महादेवी के काव्य में पहुँच गया। उन्होंने लिखा है—

कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती।

X X X

दुगजल की सितमसि है अक्षय,

मसि प्याली भरते तारक द्वै।

मैथिलीशरण ने भी कुछ ऐसा ही गाया है—इन बातों को सोचते हुए मेवाड़ और बंगाल की दूरी मिट गई। चित्तौड़ के पहाड़ी किले के दरवाजे पर आक्रमणकारी

सेना का कुत्सित चीत्कार डूब गया, और जौहर-व्रत की दीपशिखा वृक्ष गई । रागा कुम्भा के जयस्तम्भ की छाया भी विलीन हो गई । तारों से भरे सारे आकाश में मीरा के गीतों की अनन्त व्याकुलता भनभनाने लगी ।

सारी दुनिया से बढ़कर यही सबसे बड़ा सत्य है ।

महाराणा प्रताप और चारण

मैं नाटक देखने गया था। बहुत दिनों के बाद कुछ दिनों की छुट्टी में कलकत्ता आया था। इरादा यह था कि कलकत्ते में जो कुछ सबसे अधिक उपभोग्य है, और बंगाल में जो भी उत्कृष्ट है उन सबों का फिर से स्वाद लेना है—पुराने को नवीन रूप में अनुभव करना और नूतन को नवीन प्रणय के आवेग से आह्वान करना है।

बचपन में एक सस्ते बँगला दैनिक में मैं यह अक्सर देखता था कि यह तो टूटा हुआ बंगाल का देश है। अब तो सचमुच ही बंगाल टूट चुका है। एक-तिहाई बाकी है, वह किसी तरह टिमटिमा रहा है, पर इस टिमटिमाने से अँधेरा बढ़ता है न कि घटता है ! फिर भी इसी अँधेरे के धूँधट को उठाकर मैंने कलकत्ता देखना चाहा। प्रातःकाल लाखों स्थानों से मँडराते हुए धुएँ के अन्दर से नारियल की कतारों के बीच से मैंने सूर्योदय देखा। मैंने सन्ध्या के समय गंगा के किनारे बैठकर चिमनी की सासों की आड़ में रंगीन सूर्यास्त भी देखा। एक कलाकार की रसना से मैंने हिलसा और दही का सन्देश का रस लिया। साथ ही साथ यह स्मरण हो आया कि उत्तर भारत में बड़ भोगा दिन-ब-दिन दुर्लभ होता जा रहा है।

इस स्वल्प छुट्टी के उपभोग के लिए मैंने यह निश्चय किया कि किसी साहित्य-गोष्ठी में जाने का मौका न लगे, तो कोई बात नहीं कोई बँगला नाटक ही देखा जाय जिससे सन्ध्याकाल सार्थक हो। उत्तर भारत में कहीं पर भी स्थायी रंगमंच नहीं है। पूर्व दिशा में मणिपुर-इम्फाल से पश्चिम में कराची तक एक कलकत्ते में ही नियमित रंगमंच है।

विचारानुसार समय व्यतीत करने के विचार से मैंने नाटक देखने का निश्चय किया, और मैं नाटक देखने गया।

उन दिनों शाहजहाँ नाटक हो रहा था। शाहजहाँ के लड़कों में जो भ्रातृ-युद्ध हो रहा था, मारवाड़ के राणा यशवन्तसिंह उसमें भाग लेने के लिए गये हुए हैं। रानी पति की चिन्ता में कातर है। चारणियाँ गा-गाकर उन्हें तसल्ली और प्रोत्साहन दे रही हैं। वे युद्ध-वर्णन देकर समझा रही हैं कि अमर मरण सिन्धु को मथने के लिए वे वहाँ पर गये हैं। यदि पति युद्ध जीतकर लौटते हैं, तो रानी उनके कीर्तिमय भविष्य का साथ-साथ उपभोग करेगी। यदि वे वीर-मति को प्राप्त होते हैं तो उनकी अक्षय-कीर्ति

अमर हो जायगी। फिर धबराहट किस बात की? युद्ध के नतीजे के लिए सोच क्यों? सघवा हो अथवा विघवा, तुम्हारा सिर ऊँचा रहेगा। वीर-जाया उठो, केश सँभालो, चोटी बाँधो और अश्रुओं को पोंछ डालो।

गीत की मदिरा से रानी को जोश आ जाता है, इतने में खबर आती है कि राजा ने बड़ी वीरता से लड़ाई की, पर जब उनके दस हजार सैनिक मारे गये, तो वे पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए, और अब वे यहाँ किले में दाखिल हो रहे हैं। रानी को यह बात असहनीय मालूम हुई। यदि पति युद्ध में मारे जाते तो, उसका कोई गम न था। यदि वे जीतकर लौटते तो खुशी की सीमा न होती। पर पीठ दिखाकर लौटना ठीक नहीं।

राजपूत पीठ पर ढाल लेकर लड़ाई से लौटे या ढाल उसके मृत शरीर को ले आये। ढाल फेंककर लौटना—ऐसे असम्मान से मरना ही अच्छा। इसलिए रानी ने हुक्म दिया कि किले का दरवाजा बन्द कर दो। राजा तो उनकी आँखों में मर चुके थे। उन्हें किले में दाखिल न होने दिया जाय। मुगल इतिहासकार फरिश्ता ने इसका बड़ा रोचक वर्णन किया है। फ्रांसीसी पर्यटक बर्नियर ने यह लिखा है कि रानी ने इसके बाद सहमरण में जाने के लिए अपने लिए चिता सजाने का भी हुक्म दिया था।

चारणियों ने गाना गा-गाकर वीर-नारी को अनुप्रेरणा दी।

इन्ही चारण और चारणियों ने राजपूताने को अनुप्रेरणा दी। डी० एल० राय के बँगला नाटकों में हमने बार-बार चारणों के दिल मतलाने वाले गाने सुने हैं। जब भी मेवाड़ पतनोन्मुख हुआ और आत्मसमर्पण का प्रलोभन इसके सामने आया, तब चारणों के गीतों ने राजपूतों के मनुष्यत्व को बचाया। इसलिए 'मेवाड़-पतन' नाटक में हम चारणों का यह गीत सुनते आये हैं—

देश गया इसका गम नहीं,

फिर से तुम इन्सान तो बनो।

पराधीन देश के जीवन में इससे बढ़कर कोई बात नहीं हो सकती।

राजस्थानी चारणों के गीतों में ही हिन्दी का जन्म हुआ, ऐसा कहा जा सकता है। चारण काल अथवा वीरगाथा काल हिन्दी साहित्य के चार युगों में से प्रथम युग है।

उत्तर भारत के प्राचीन इतिहास का मसाला भी हमे इन्ही चारणों के गीतों से मिलता है। ये कवि जनसभा के आश्रय में रहते थे और उत्साहवर्द्धक गीतों के अतिरिक्त राजवंशों की प्राचीन कीर्ति का गान भी करते थे। इन गीतों में कल्पना और अत्युक्ति भी है, इसे छोटकर इतिहास बन सकता है। राजपूताने का इतिहास

इसी तरह बना है। टाट साहब की राजस्थान की कहानियाँ मुख्यतः इन्हीं चारणों के गीतों में ही लिखी गई हैं। मम-सामयिक किसी मुसलमान या विदेशी पर्यटक के लेखों में किसी वर्णित आस्थान का उल्लेख न मिले, तो इसी कारण उसे अनैतिहासिक करार देना उचित न होगा। कहा जाता है कि चारणों तथा भाटों का पहले-पहल जन्म इस कारण हुआ कि महादेवी जी को बरधा को चराने के लिए एक व्यक्ति की जरूरत पड़ी और उन्होंने माथे के पत्नीने से उसे उत्पन्न कर लिया। लोककथा इस सम्बन्ध में कुछ भी कहे, पर इन लोगों ने राजस्थान की कहानी प्रस्तुत की, और उसे चालू रखा, इसलिए दुनिया हमेशा उनके प्रति कृतज्ञ रहेगी।

जो अपने अतीत को भूल गया, उसके लिए वर्तमान उदासीन और भविष्य अनिश्चित है। चारणों ने भूतकाल को जीवित रखा और उज्ज्वल कर सामने रखा, चाहे उत्सव हो और चाहे और कोई अवसर हो।

महादेव जी के बरधा को चराते रहने के कारण इनका नाम चारण पड़ा। पर इनको जो सम्मान प्राप्त हुआ है, वह दुनिया में और किसी देश में कवियों को सामूहिक रूप में मिला, ऐसा तो मालूम नहीं पड़ता। देवी भवानी या माता जी का सूत नाम से काला रेशमी सूत गले में डालकर, पीली साड़ी बाँधकर चारणियाँ अभी गाँव-गाँव में इज्जत के साथ गाती रहती हैं, और पुरुष सभाओं तथा दरबारों में गाते हैं।

राजा अत्याचार और अन्याय से इसीलिए बाज आते थे कि कहीं दरबारी चारण उनकी कहानियाँ अगली पीढ़ी के लिए न छोड़ जायें। प्रजा उधार लेकर उसे चुकता करने से मुँह नहीं मोड़ती थी कि कहीं चारण अपने रक्त से उसे चुकता न कर दे। मारवाड़ और जैसलमेर राज्य में कई बार ऐसा हुआ कि चारणों ने सिंहासन के उत्तराधिकारियों की रक्षा की। इस प्रकार वे किसी समय के राजकवि नहीं, बल्कि राजा बनाने वाले भी होते थे।

राजस्थान के सबसे बड़े गौरव और गर्वस्थल महाराणा प्रताप की महान् संकट के समय इन्हीं चारणों की वीरगाथाओं ने बचाया था। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद विपत्ति पर विपत्ति आती रही। हार पर हार होने के कारण वे तिलमिला गये थे, और जंगलों में भटक रहे थे। उन दिनों यह डर था कि वे कम से कम उनका परिवार, भुगलों के हाथ न पड़ जाय। एक बार ऐसे ही समय में वे बहुत विचलित हो गये थे।

पर्वतों की गुफाओं में भटकते हुए भी मेवाड़ राजा का परिवार निश्चिन्त न था। चतुर भुगलों से बचाकर जंगली भील प्रताप के परिवार को बेंत की टोकरी में छिपाकर पेड़ों पर टाँग देते थे। उन्हें जंगली फल-मूल खाने को देते थे। फिर भी निश्चिन्त नहीं थे। कम से कम पाँच दफ़े आपके परिवार

को इस मामूली भोजन को छोड़कर शत्रु से बचने के लिए भागना पड़ा। इस पर भी महाराणा प्रताप इस संकल्प में अटल रहे कि विदेशियों के सामने सर नीचा नहीं झुकायेंगे। पर अंग्रेजी में कहते हैं कि अन्तिम तिनके से ऊँट की पीठ टूटती है वैसे ही महाराणा का हाल हुआ। उनकी प्रतिज्ञा टूटने लगी, सर झुकने लगा।

महारानी और युवरानी ने जंगल में छिपकर घास के बीज के आटे की रोटी बनाई थी। बच्चों के लिए केवल एक रोटी की व्यवस्था थी। इस एक रोटी में से आधी खानी और बचानी थी, क्योंकि पता नहीं कि बाद को कैसी परिस्थिति हो ? महाराणा इसी बात पर विचार कर रहे थे कि इतने में एकाएक उनकी लड़की के चिल्लाने से मन में विघ्न पड़ा। बात यह है कि एक जंगली बिल्ली बेचारी राजकुमारी की रोटी लेकर भाग गई थी। मुगलों की शत्रुता, अपने रिश्तेदारों और लड़कों की रणक्षेत्र में मृत्यु आदि बातों से जो असर पैदा नहीं हो सका था, वह असर राजकुमारी के चिल्लाने से उत्पन्न हुआ। शत्रुता और रणक्षेत्र में अपने साथियों की मृत्यु तो राजपूतों के लिए साधारण बात थी। पर घास की रोटी के लिए लड़की का तरसना, इसे महाराणा सहन न कर सके। उनकी आँखों में आँसू आ गये और उन्होंने अकबर को सन्धि-पत्र लिखा।

अकबर पत्र पाकर बहुत खुश हुए। शीघ्रता से सार्वजनिक खुशी की तैयारियाँ हुईं, और दीवाली मनाई गई, आतशबाजी छूटी और आगरे की सड़कों पर खुशी छा गई। राजपूत शेर अब पकड़ा गया।

खुशी के मारे अकबर ने बीकानेर के राजा के भाई पृथ्वीराज को पत्र दिखाया ! पृथ्वीराज साहसी वीर और रसिक कवि थे। वे असि और मसि दोनों के वीर थे, पर बीकानेर अकबर के हमले से नहीं बचा था, इसलिए पृथ्वीराज को अकबर की सभा में रहना पड़ा था। केवल यही नहीं उनकी स्त्री किरणमयी का अपमान भी हुआ था।

नववर्ष की तरह नौरोज एक त्योहार होता था जो नौ दिन मनाया जाता था। अकबर ने इन्हीं में एक दिन खुशरोज करके मुकर्रर कर दिया था। उस दिन अमीर-उमराह सबका उपस्थित होना जरूरी समझा जाता था। सुलताना भी मंत्रियों तथा दूसरे कई लोगों की स्त्रियों को लेकर दरबार लगाती थी। खुशरोज के दिन केवल स्त्रियाँ ही दुकान सजा सकती थी। किसी अमीर के घर यदि कोई सुन्दरी कन्या होती थी तो उसको भी वहाँ आकर बादशाह तथा वंशजों की दृष्टि आकर्षित करनी पड़ती थी। फ्रांसीसी पर्यटक बर्नियर ने लिखा है कि बादशाह एक-एक पैसे के लिए मोल-भाव करके तमाशा बनाते थे। अन्त तक ऐसा भी होता था कि दुकान वाली सुन्दरी बादशाह से यह भी कह देती थी—जाइये, जहाँपनाह ! यह माल आपके वश का नहीं है। मोल-भाव तो एक-एक कौड़ी का होता था, पर रुपया देते समय बादशाह मानो

ग़लती से चांदी के रूपयो के बदले मोहरें देकर मानो सुन्दरी के रूप के प्रति अपना नज़राना अदा करते थे ।

ससार में हमेशा से ही रूप का सम्मान होता आ रहा है । कवि रूप के पुजारी और कामुक इसके व्यापार माने जाते हैं । मनुष्य अपने आप ही निर्णय करता है कि वह रूप का पुजारी या व्यापारी बनेगा ।

अबुलफजल अकबर के नवरत्नों में से एक बड़े रत्न थे । ऐतिहासिक तथा अकबरनामा के लेखक थे । उन्होंने लिखा है—रूप के इस बाज़ार में किसी को कुछ पता नहीं लगता था कि वह क्या कर रहा है ? स्वयं बादशाह भी इसमें भेप बदलकर हिस्सा लेते थे । इसी तरह वे चीजों की कीमत जान सकते थे । साम्राज्य तथा सरकारी अफ़सरो के चालचलन के सम्बन्ध में लोगों का अभिमत सुन सकते थे ।

ऐसे ही खुशरोज़ के उत्सव के दिन जब पृथ्वीराज की स्त्री किरणमयी उत्सव-स्थान से लौटने लगी तो चांदी ने आकर ख़बर दी कि उनकी पालकी दूसरे फाटक पर खड़ी है । किरणमयी को आश्चर्य हुआ, पर वे चली । कई कमरों के अन्दर से होते हुए एक कमरे में पहुँचकर देखा कि आगे कोई रास्ता नहीं है । और पीछे मुड़ी तो देखा कि शाहशाह अकबर खड़े हैं । इस प्रकार से मेवाड़ के सिसोदिया वंश की एक ललना मुग़ल सम्राट के चंगुल में फँस गई ।

इस समय तक मेवाड़ ने मुग़ल सम्राट के निकट सर नहीं भुकाया था । पर आज मेवाड़ की इज्जत बादशाह के हाथ में थी । महाराणा प्रताप आप किस जंगल में भील, चीता और स्यारों के बीच छुपे हुए हो । आओ, अपने पवित्र तथा उच्च वंश की राजकन्या को बचाओ । इस समय किरणमयी के सीने में छिपा हुआ छुरा उसके रक्षायें निकल आया । सिसोदियावंशी कन्या और राठौर वंश की बधू किरणमयी ने उस छुरे को बिजली के वेग से बादशाह के सीने से छुरा दिया । अकस्मात् वज्रपात होता तो भी अकबर इतने न घबड़ाते । अभी-अभी उन्होंने अपने हाथ से जो दरवाज़ा बन्द किया था वे उससे पीठ लगाकर हाँफने लगे । सामने छुरा तना हुआ था । किरणमयी ने न केवल अपनी इज्जत बचाई बल्कि अकबर से अपने को माता सम्बोधन कराया, साथ ही यह भी प्रतिज्ञा कराई कि वह आगे किसी राजपूतानी का सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा नहीं करेगा । तब जाकर छुरा अपनी जगह पर लौटा ।

उसी किरणमयी के पति पृथ्वीराज को अकबर ने बड़ी खुशी से राजपूतों की अखिरी आशा और गर्वस्थल महाराणा प्रताप की वह चिट्ठी दिखाई जिसमें उन्होंने सन्धि-प्रस्ताव को लिखा था । पृथ्वीराज इसे देखकर बहुत दुखी हुए, पर अन्तिम चाल चलते हुए सरलता का ढोंग भरकर बोले—मुझे तो विश्वास नहीं होता कि यह चिट्ठी सच है । मुग़ल साम्राज्य मिलने पर भी प्रताप सर नहीं भुकायेगा । कहीं ऐसा तो नहीं है कि

किसी ने शत्रुता करने के लिए यह जालसाजी की हो। जो कुछ भी है, मैं प्रताप से इस का पता लेता हूँ।

अकबर मूर्खों पर ताव देकर राजी हो गये।

पृथ्वीराज चारणों से भी बढ़कर कवि थे। चारणों के कवि-सम्मेलन में उन्हें विशेष सम्मान दिया गया था। पर यहाँ दरबार में बैठकर खुल्लमखुल्ला प्रताप से स्वाधीनता के लिए लड़ने को उत्तेजित करना सम्भव नहीं था, इसलिए उन्हें बहुत कुछ घुमा-फिराकर लिखना पड़ा।

अकबर के किसी दरबारी इतिहासकार द्वारा लिखित विवरण में पृथ्वीराज और किरणमयी की कहानी का समर्थन नहीं मिलता, पर पत्र के रूप में लिखी हुई यह कविता सचमुच ऐतिहासिक है। पृथ्वी पर जितने दिन वीरों की पूजा होगी उतने ही दिन यह वीरगाथा जीवित रहेगी। वह कविता यों है—

अकबर समद अथाह, तिहं डूवा हिन्दू तुसक,
मेवाड़ तिड़ माँह, पोयण फूल प्रताप सी।
अकबरिये इकवार, दागल की सारी दुनी,
अण दागल-असवार, चेतक राणा प्रताप सी।
अकबर घोर अंधार, उपीणा हिन्दू अबर,
जागं जगदातार, पोहरे राण प्रताप सी।
हिन्दूपति परताप, पत राखी हिन्दू आण री,
सहो विपत सताप, सत्य सपथ करि आपनी।
चंपा चितोड़ हा, पोरसतणों प्रताप गीं
सौरभ अकबरशाह, अलि यल आमरिया नहीं।
पातल जो पतशाह, बोले मुखहू तो वयण।
मीहर पछिम दिश माँह, उगै कासप रावत।
पटके मुहां पाया, कि पटकूं निज कर तलद,
दोजै लिख दीवाण इन दो महली वात इक।

अर्थात् अकबर रूपी समुद्र में हिन्दू-तुर्क सब डूब गये हैं, किन्तु मेवाड़ के राणा प्रताप उसमें कमल की तरह खिले हुए हैं। अकबर ने सबको पराजित किया है, पर चेतक घोड़े पर सवार राणा प्रताप अभी अपराजित है। अकबर के अंधेरे में सब हिन्दू ढक गये हैं, पर दुनिया का दाता राणा प्रताप अभी उजेलें में खड़ा है। हे हिन्दुओं के राजा प्रताप ! हिन्दुओं की लाज रख। अपनी प्रतिज्ञा के पूर्ण होने के लिए कष्ट सहो। चित्तोड़ चम्पक का फूल है, और प्रताप उसकी सुगन्ध है। अकबर रूपी भ्रमर उस पर बैठ नहीं सकता। यदि प्रताप अकबर को अपना बादशाह माने तो भगवान् कश्यप का

लड़का सूरज पश्चिम में उदय होगा। हे एकलिङ्ग महादेव जी के पुजारी प्रताप यह लिख दो कि मैं वीर बनके रहूँगा या तलवार से अपने को काट डालूँगा।

इस कविता ने दस हजार सेनाओं का काम किया, और प्रताप ने यह उत्तर भेजा—

तुरुक कहाँ सो मुख पतो, इन तरासुं इकलिंग,
उस जासु ऊगसी, प्राची बीच पतंग।

अर्थात् भगवान् एकलिंग जी के नाम से सौगन्ध खाता हूँ कि मैं हमेशा अकबर बादशाह को तुर्की के नाम से ही पुकारूँगा। जिस दिशा से सूरज हमेशा निकलता है उसी पूर्व दिशा से ही वह निकला करेगा।

महाराणा प्रताप की तरह उनके पुत्र महाराणा अमरसिंह भी बार-बार पराजित होकर घबराते हुए सोचने लगे कि वे लड़ेंगे या हार स्वीकार करेंगे। चारणों की कविता से पता चलता है कि उस समय उन्होंने अपने मित्र खानखाना (मिर्खा खाँ) से सलाह माँगी। इस मुसलमान सेनापति की सभा में हिन्दी, फ़ारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के पण्डित तथा कवि रहते थे। इसी सभा में खानखाना ने अमरसिंह की चिट्ठी पढ़ी। उसमें लिखा था कि गीड़, काच्छोया, राठीर में सब आराम कर रहे हैं। मैं तक अकेला जंगल में फिरेगा। इस पर खानखाना ने लिख भेजा—

घर रहसी रहसी घरम, खप जासी खुरसाण,
अमर विसम्भर उपरां, राखो न हचे राण।

अर्थात् हे राणा अमर! तुम भगवान् में भरोसा रखो। संसार में धर्म ही रहेगा और मुग़ल चला जावेगा।

ऐसा जवाब मिलने पर महाराणा अपना कर्तव्य समझ गये।

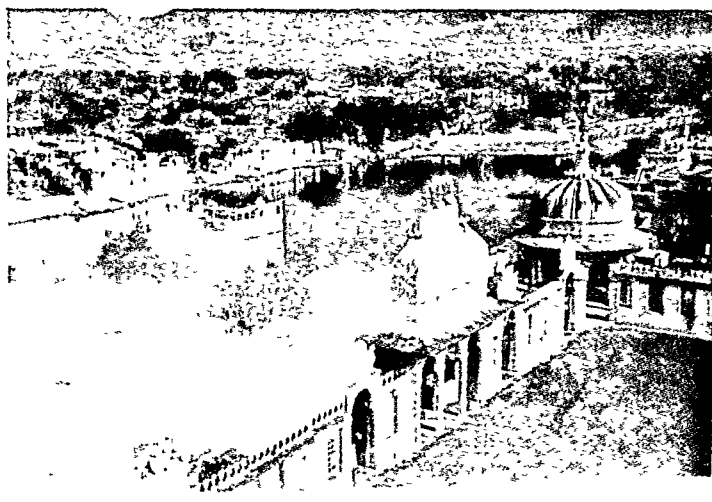
चारण कवि केवल वीरगाथा ही नहीं गीति-कविताओं की भी रचना करते थे। राजा यशवंतसिंह लड़ाई में हारकर आने के कारण अपनी रानी के ही द्वारा किले में दाखिल होने से रोके गये। पर उसी युद्ध में एक सामन्त राजा रत्नसिंह बहुत वीरता दिखाकर मर गये। उनकी रानी जिस समय सहमरण में जा रही थी, उसका वर्णन चारण काव्य वचनिका रा रत्नसिंह जी की महसदासीत रो—में बहुत सुन्दर मिलता है—

कटि सिंह नितम्ब जङ्घा कदली ।
चित नित्य प्रविन्त मराल चली ॥
तन रम्भह खम्भ कनक तिगी ।
जेपे गिरि नगिन्द्र बेणि इगी ॥



नौका-विहार

क्लील श्रीर प्रासाद, उदयपुर ।





राजपथ का दृश्य ।



राजस्थानी राजप्रहरी ।

घनिता मुख पुनिम चन्द बनी ।

भृङ्ग भ्रुन चमा मृग रूप भनी ॥

कण्ठ कोकिल दन्त अनारकली ।

अग्र नक्का अलक्का कला उजली ॥

राजस्थान में जाकर चारण-साहित्य को न सुनना वैसा ही होगा जैसा कोई इंग्लैण्ड जाकर शेक्सपियर का नाटक न देखे या बंगाल जाकर रवीन्द्र का संगीत न सुने ।

विदेशियों ने कहा है कि बंगाल देश कवियों का घर है । ऐसे देश में पैदा होकर राजस्थान के कवियों का परिचय न लेकर मैं कैसे लौट आता ? पर इस बीसवीं सदी में पुराने समय के चारण कहाँ मिल सकते थे ? कौन उनका पता देता ?

अपने कामों में व्यस्त या राजाओं के लोप हो जाने से उत्कण्ठित समाज में कोई भी आजकल चारणों की खोज नहीं रखता है । चारण लोगों ने भी काव्य-चर्चा छोड़ दी है क्योंकि पहले की तरह इस वृत्ति में न तो सम्मान है और न ही इससे जीवन-निर्वाह हो सकता है ।

बंगाल में काव्य-चर्चा अभी तक थी, किन्तु जब देखा जाता है कि इसी समय में कविता के प्रति उदासीनता कहाँ तक बढ़ गई है तब चारणों का दुर्लभ हो जाना कोई अजीब बात नहीं है । बंगालियों की लिखी हुई राजपूताने की भ्रमण-कहानियों में चारणों का कोई उल्लेख ही नहीं मिलता । इनके अस्तित्व का प्रमाण टाड़ साहब ने ही दिया है ।

फिर भी मैं चारणों की तलाश करने लगा । ये कहाँ मिलेंगे ? कौन पता देगा ? लुप्त होने वाले कवियों का पता क्या संसार या सोसाइटी दे सकती है ?

यह सोचकर कि प्रकाशक कवियों का पता दे सकते हैं, मैंने उदयपुर के पुस्तक-विक्रेताओं से चारणों की बात पूछी । वे मेरी बात सुनकर अवाक् ही न हुए बल्कि हतबुद्धि हो गये । प्राचीन चारणों की कविताओं का एक-आध संग्रह कहीं-कहीं छपा था, जो अभी भी स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों में मिल जाता है । पर जीवित चारण कहाँ मिलता ? ऐसा अशास्त्रीय काम यहाँ नहीं होता ।

कई एक प्राचीन पण्डित और नये अफसरों से भी पूछा । वे भी ऐसा असम्भव प्रश्न सुनकर आश्चर्यमय हो गये । हाँ, इतना तो बताया कि गाँव-गाँव में ढूँढ़ना पड़ेगा । फते सागर के उस पार जहाँ सूरज डूबता है वहाँ से ५-६ कोस जाने पर एक गाँव मिलेगा । वहाँ एक चारण-परिवार रहता था । ऐसा प्रतीत होता है । पर यह पता नहीं कि अभी तक वह जीवित है ।

लोटकर मैं राज्य के गेस्ट-हाउस लक्ष्मी विलास भवन में चला आया ।

महाराणा के सेक्रेटरी श्री रामगोपाल त्रिवेदी अतिथियों का विशेष ध्यान रखते थे।

त्रिवेदी जी केवल राजस्थान के बारे में ही विशेषज्ञ नहीं थे, किन्तु बंगाली साहित्य और भारतीय संस्कृति के भी अनुरागी थे। मित्रों के लिए लड़ाई में जान देने की तरह कठिन काम भी आसानी से कर सकते थे। जब त्रिवेदी जी ने सुना कि एक परदेसी राजस्थान के कवि और काव्य के विषय में उत्सुक हैं तब उनकी उज्ज्वल आँखें और भी चमकने लगीं। वे महाराणा के विशिष्ट अतिथियों को पिशीला भील में नौका-विहार को अपने साथ ले जाते, गागोरी उत्सव के समय जलयात्रा को ले जाते, राजभवन दिखलाने को भेज देते, जयसमुद्र देखने का प्रवन्ध कर देते, और किसी-किसी अतिथि को हृदयीघाटी के दुर्गम युद्धक्षेत्र भी दिखा देते; पर त्रिवेदी जी चारणों के गाने कहाँ से सुनावेंगे ?

हाँ, यह सुनने में आया कि महाराणा जब उदयपुर में रहते हैं तो कभी-कभी कवि-दरवार भी बुलाते हैं। तब चारण कवि दूर-दूर गाँवों से आते हैं। राणा उनका आदर करते हैं, उनके भोजन का प्रवन्ध करते हैं। कवि भी अपने पूर्वपुरुष की रचित कविताओं का पाठ करते हैं। अपनी रचना भी सुनाते हैं। वेङ्गिल भापा में रची हुई कविताओं के रीढ़ रस की व्याख्या करते हैं। मानों चारों ओर तलवार ही तलवार चमक रही हो। पर महाराणा तो शिकार को गये हैं, इसलिए चारण कवि भी शहर को नहीं आवेंगे। महाराणा के सिवाय चारणों का सम्मान आजकल और कोई नहीं करता है।

बहुत खोज करने के बाद ठाकुर साहब को एक पता मालूम हुआ। पता मालूम होते ही हम लोग शहर की एक घनी बस्ती के अन्दर चल पड़े। दिल्ली में चाँदनी चौक की चौड़ी सड़क की भीड़ में जैसे एकाएक एक बड़ा लोहे का फाटक दिखाई देता है वैसे ही एक फाटक के सामने हम खड़े हो गये। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि गढ़ के भीतर एक उपगढ़ का फाटक है पर ऐसा नहीं।

यह तो अंग्रेजों के राज्य से पहले का बन्दोबस्त है। एक फाटक के पीछे एक गली, उसके दूसरे तरफ सैकड़ों मकान और बस्तियाँ थी। गड़बड़ के समय फाटक बन्द करके आत्मरक्षा हो सकती थी। गली के दोनों तरफ छोटी-छोटी खिड़कियाँ। उन खिड़कियों से तलवार या बन्दूक की सहायता से एक ही आदमी काफ़ी देर तक दुश्मनों को रोक सकता है। त्रिवेदी साहब के पीछे-पीछे ऐसी ही एक गली में गये। दोनों तरफ पतली नाली और खिड़की थी। राजपूत औरते इस खिड़की से एक परदेसी को देखकर हट गईं।

एक दो सौ वर्ष पुराने मकान के दरवाजे पर बहुत धक्के देने के बाद एक ने आकर दरवाजा खोला। मालूम हुआ कि ऊपर से उसने त्रिवेदी जी की पगड़ी देखी

और तब निरापद जानकर दरवाजा खोला । पता लगा कि कवि जी शहर में नहीं हैं । गांव से कब लौटेंगे, इसकी भी खबर नहीं ।

पर, मुझे तो आज शाम की ही गाड़ी से लौटना था । राजपूताने में यह मेरा आखिरी दिन था । क्या चारण की कविता चारण के मुँह से सुनना रह ही जायगा ?

मैंने शर्म-हया त्यागकर कवि-पुत्र से कहा कि आप ही अपने पिता जी की कोई कविता सुना दीजिये । आपको तो उनकी कोई-न-कोई कविता जरूर आती होगी, चाहे वह प्रकाशित हो, चाहे हस्तलिखित या चाहे सुनी हुई हो । इस पर जो उत्तर मिला, वह राजस्थान की मरुभूमि में हमेशा के लिए डूब जाय । कवि-पुत्र हँस पड़े । सिर पर उनके लम्बे बाल और मूँछें विलकुल साफ थीं । वह हँसकर बोले—कविता ? इस प्रश्न का मतलब मैं नहीं समझा । मैंने कहा—हाँ, कविता ! पुत्र महोदय ने कुछ नटों के ढंग पर कहा—मैं तो घुड़दौड़ों के घोड़ों से ही वास्ता रखता हूँ । कविता से मेरा क्या काम ?

मैं लौट आया । अक्समात् स्मरण हो आया कि राजाधिराज अछड़ोल से क्यों न इस सम्बन्ध में कहा जाय । प्रियदर्शन राजाधिराज महारानी के भाई होने के अतिरिक्त उनके जमाने में उदयपुर के गृहमंत्री भी थे । आशा हुई कि शायद मित्रों के प्यारे राजाधिराज इस बात में सहायता दे सकें ।

उदयपुर में इत्रका अतिथि-सत्कार और सुन्दर व्यवहार देखकर मुझे बहुत ही आनन्द हुआ था । बँगला साहित्य के सम्बन्ध में इनका विशेष ज्ञान तथा उत्साह था । क्या मेरी इच्छा को वह पूरी करने की चेष्टा करेंगे ?

मैंने उनको फ़ोन किया तो वे चेष्टा करने के लिए राजी हो गये । पर मेरे पास समय थोड़ा था । इतने समय में एक कवि को ढूँढना मुश्किल था, पर राजाधिराज एक बंगाली कवि को राजस्थानी कविता सुनाकर खुश होंगे ।

राजाधिराज मुझे कवि कह रहे हैं । मालूम होता है, राजाधिराज इस कार्य में असफल रहे । आशा त्यागकर हमने सारा सामान स्टेशन भेज दिया । मैं स्वयं भी रवाना होने ही वाला था ।

जीवन में कितनी बड़ी-बड़ी आशायें अपूरण रह जाती हैं । यह तो राजस्थान में चारण के मुँह से केवल कविता तथा गाना सुनने की आशा से ही स्पष्ट लक्षित हो जाता है ।

मैं निकल ही रहा था कि सामने के दरवाजे पर एक दीर्घ छाया पड़ी । पहले ही पैरों पर दृष्टि गई, तो वहाँ लकड़ी का बना हुआ सुन्दर चमरीधानुमा जूता था । एक वृद्ध वीर थे, जिनका शरीर लम्बे सफेद आँगूरखे ने ढका हुआ था । कमर में तलवार लटक रही थी और सिर पर उद्धत पगड़ी थी । ऐसा मालूम हुआ कि यों तो दाढ़ी

बैधी रहती होगी, पर इस समय वह दो हिस्सों में बँटकर मुली हालत में दो तरफ जा रही थी। शायद महाराणा के दरबार के कोई सम्मानित व्यक्ति थे।

नहीं, वे कोई दरबारी नहीं थे, उन्होंने बताया कि उनका नाम श्री उज्ज्वल विजयकरण है। उन्हें राजाधिराज ने नारण-नीत मुनाने के लिए भेजा है। विजयकरण जी के पिता श्री उज्ज्वल फत्तेकरण जी मेवाड़ के प्रसिद्ध राष्ट्रीय चारण माने जाते थे। वे केवल कवि ही नहीं थे, उनमें राजपूतों के दूसरे गुण भी थे—घोड़े की सवारी करना, तलवार चलाता तथा भिकार खेनता आदि। विजयकरण जी स्वयं भी कवि थे, पर उन्होंने बताया कि वे अपने पिता की तुलना में कुछ भी नहीं हैं।

रेल की जल्दी की बात भूलकर मैंने कवि का हाथ पकड़ लिया और मैंने उनसे कविता सुनाने के लिए कहा। विजयकरण जी खुश होकर बैठ गये। उन्होंने सोचा होगा कि उस्ताही श्रोता समझदार भी होगा। डिगल भाषा की कविता समझना बहुत कठिन नहीं है। जहाँ भाषा आकर कान में अटक जाती है, वहाँ भाव आकर मन का द्वार खोल देता है। कुछ समझना और कुछ न समझना इस प्रकार के आलोक और अन्धकारपूर्ण वातावरण में वीर रस की कविता हिलोरें लेने लगी।

वीर रस की कविता की आवृत्ति करते समय कवि ने अपनी म्यान से तलवार आधी खींच ली, और गरजकर कहते रहे—

वीर पियो पय मातु को, दियो अघर रसवाम।

अव शोणित अरियन पियत, तो हि पियन को काम॥

अर्थात् हे वीर ! तुमने, माँ के दूध का पान किया है, स्त्री की अघर-सुधा का पान किया है, और अब दुश्मन का खून पी रहे हो। पीना ही तुम्हारा काम है।

मैंने हल्दीघाटी का युद्ध-वर्णन सुनना चाहा, कवि ने उसका भी हिस्सा सुनाया। उस बड़े कमरे की दीवार पर हल्दीघाटी के युद्ध की तसवीर थी—राजशिल्पी ने सारी घटनाओं को रंगीन चित्रों में अंकित किया था। मेरी छोटी लड़की अनुराधा ने इस तसवीर के एक-एक हिस्से को बड़े ध्यान से देखा और कई दिनों तक मेरे से पूछती रही कि यदि हल्दीघाटी के युद्ध में राणा प्रतापसिंह और मानसिंह इकट्ठे देश के लिए लड़ते तो फिर क्या ऐसा हो सकता था ? चारण के मुख से कविता सुनते-सुनते ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो हमारे कमरे में राजपूत वीरों की जो तसवीरें टँगी हुई थी, उनके अन्दर से वे वीर हमारे इर्द-गिर्द उतर आये और गोल चनाकर हमारे साथ खड़े हो गये।

हल्दीघाटी के पहाड़ों के बीच में लड़ते-लड़ते मुंगल और राजपूत हल्दी के रंग की धूल में मिट गये। ऐसा भालूम होने लगा जैसे मानसिंह सलीम के शिविर से निकलकर भूतकाल पर लातें मारकर प्रतापसिंह के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हो गये। यह भी देखने में आया कि चेतक के पास खड़े होकर शक्ति सिंह और प्रतापसिंह शत्रु

होने के बजाय एक-दूसरे के आलिंगन में बँधकर खड़े हैं ।

कविता के कारण जो वातावरण उत्पन्न हुआ, उसमें आँसू से भरी आँखों से मेरे देखने लगा मानो सारा रजवाड़ा एक हो गया हो । एकीभूत भारत में रजवाड़ा भी एक हो गया । जब चारण कवि ने विदाई लेते हुए मुझे याद दिलाया कि मेरी गाड़ी शायद छूटने वाली है तब मैं स्वप्न से जगा ।

वात तो ठीक है कि मन की गाड़ी मुझे न मालूम कितने पीछे कई जन्म पीछे खींच ले गई थी । इतने दिनों के बाद वहाँ से फिर सामने की तरफ़ निष्ठुर और वास्तविक सामने की तरफ़ दिल्ली वाली गाड़ी हमें आगे ले जाने के लिए फुफकारकर गरज रही थी । दिल्ली वाली गाड़ी मुझे आगे की तरफ़ सिर्फ़ आगे की तरफ़ ले जाने वाली थी । क्या यह सम्भव था कि इस समय चारण की कविताओं के कारण अश्रुवाष्प-पूर्ण वातावरण में राजस्थान का जो मानस-चित्र मेरे निकट मूर्त हुआ था । मैं उसमें ज़रा भी किसी तरह का फ़र्क़ या दाग़ न आने देकर दिल्ली की गाड़ी में लें जा सकूँगा ।

कविवर मेरे साथ स्टेशन तक आये । मैंने उत्साह के साथ उनके चेहरे की तरफ़ देखते हुए कहा—आपने मुझे कुछ दिया, उसके आन्तरिक ऐश्वर्य को मैं धन्यवाद देकर मलिन नहीं करना चाहता ।

रोड्रस के वर्णन करने वाला कवि मुस्कराकर धीमे स्वर से बोले—मेरी तृप्ति इसी में है कि मैंने बंगाल के एक साहित्यकार को चारण-गाथा सुनाई । डी० एल० राय की पत्रिका भारतवर्ष में रानी पद्मिनी पर आपकी एक कविता निकली थी—उदयपुर के बंगालियों ने उसका अनुवाद मुझे सुनाया था । आपको कविता सुनाने से चारणों के सम्मेलन में मेरा आसन और ऊपर को उठेगा ।

गाड़ी एक धक्के के साथ आगे बढ़ गई । मेरे मन पर भी एक धक्का पहुँचा । बंगाल और उसके साहित्यकारों के प्रति चारण कवि का ऐसे सम्मान के बदले मैंने कवि को एक संक्षिप्त नमस्कार किया ।

नमस्कार चारण-कवि ! नमस्कार वीरगाथा ! नमस्कार रूप कथा का रजवाड़ा !

